ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ 06 06 1976 पुष्प 31 मन और प्राण की शक्तियाँ.............................4
२ 07 06 1976 पुष्प 31 मन और प्राण के स्वरूप, क्रियाओं और महत्त्व का वर्णन 16
३ 24 10 1976 पुष्प 31 मर्यादा पुरूषोतम राम..................................27
४ 29 11 1976 पुष्प 31 स्थावर, उद्भिज, अण्डज और जरायुज सृष्टि........39
५ 23 02 1977 पुष्प 33 रूढ़ियों की विकृतता....................................50
६ 24 02 1977 पुष्प 33 राष्ट्र सुधार..62
७ 09 03 1977 पुष्प 32 मानव जीवन के पक्ष....................................78
८ 20 03 1977 पुष्प 32 पवित्र आहार...89
९ 25 03 1977 पुष्प 32 संसार धर्म क्षेत्र...99
१० 03 04 1977 पुष्प 32 प्रातः परमात्मा का सन्निधान.........................111
११ 16 03 1978 पुष्प 33 महानन्द जी की प्रेरणा..............................119
१२ 06 04 1978 पुष्प 32 निष्काम कर्तव्य पालन...............................136
१३ 07 04 1978 पुष्प 32 बुद्धि मेधा..145
१४ 09 04 1978 पुष्प 32 देव यज्ञ..155
१५ 12 04 1978 पुष्प 31..168
१६ 14 04 1978 पुष्प 31 मान अपमान की धारा..............................186
१७ 20 05 1978 पुष्प 33 भैतिक तथा आध्यातित्मक विज्ञान...................195
१८ 21 05 1978 पुष्प 33 भैतिक विज्ञान व आध्यात्मिक विज्ञान...............205
१९ अतिथि 010 पुष्प 31 वार्णावत का कुछ पुराना इतिहास......................215
२० अतिथि 011 पुष्प 33 महानन्द जी की प्रेरणा...................................228

१ 06 06 1976 पुष्प 31 मन और प्राण की शक्तियाँ

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रां का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहरवेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा का वर्णन होता है प्रत्येक वेदमन्त्र उसकी प्रतिभा का गान गा रहा है। जब हम एक वेदमन्त्र के उफपर विचार विनिमय प्रारम्भ करने लगते हैं तो प्रायः हमें ऐसा दृष्टिपात होने लगता है जैसे उस महान देव की आभा उसमें निहित है अथवा उसमें ओत प्रोत है।

आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कौन से मार्ग के लिए प्रेरित दे रहा था? क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र मानव को प्रेरणा देता है और ऊर्ध्व गति में जाने वाले उस प्रेरणा को पान करते हुए अपने आनन्दतव को प्राप्त करते हैं। परन्तु मानव के द्वारा मन्थन होना चाहिए। हमारे यहाँ ऋषि मुनि परंपरागतों में अनुसन्धान करते रहते थे और उनका विचार विनिमय होता रहता कि हम कौन से मार्ग को अपनाना चाहते हैं जिस मार्ग को अपनाने के पश्चात् मानव के हृदय में एक मानवीयता छा जाए अथवा मानवीयता की प्रतिभा मानव के हृदय में जागरूक हो जाए। ऐसा वह प्रायः अनुसन्धान करते रहते। उस अनुसन्धान में दो प्रकार की वार्त्ता रहती थी। भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद दोनों को ले करके अपने जीवन, समाज के जीवन और मानवीयता को जागरूक करने का प्रयास करते रहते जिससे मानव अपनी मानवता को दूर न कर सकै। क्योंकि विज्ञान में भी मानवत्व है और आध्यात्मिकवाद में देववत है। तो हमें दोनों प्रकार के मार्गों को अपनाना है।

हमने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि हमारे ऋषि मुनि विचार विनिमय करते अपने शब्दों का शोधन करते रहते थे याज्ञ करते तो साकल्य और चरन को मानो साकल्य जिसको हम चरन भी कहते हैं, उसको एकत्रित करके वह याज्ञ करते थे। याज्ञ का अभिप्राय यह है कि हम याज्ञों में परणित होते चले जाएँ। याज्ञ किसे कहते हैं? अग्नाधान को भी याज्ञ कहा जाता है। परन्तु मानव उदबुद्ध अपने जीवन की जो

पवित्र अग्नि है, अपने जीवन का जो संकल्प है, अपने जीवन में जो महान कार्य हैं उनको उदबुद्ध करने का नाम भी याज्ञ माना है। याज्ञ का अभिप्राय यह है कि सदैव मानव को देववत बनके जागरूक रहना है क्योंकि जो संसार में जागरूक रहता है वही परमात्मा की प्रतिभा को पान करता है। आज जो मानव जागरूक नहीं रहता और अपने आलस्य और प्रमाद में नाना प्रकार के व्यसनों में अपने जीवन को समाप्त करता हुआ जागरूक की घोषणा करता है तो वह मानव नहीं कहलाता। वह जागरूक उस काल में रहता है जबकि वह अपने कर्त्तव्यवाद और विज्ञान के सहित अपने जीवन को सार्थिक बनाने का प्रयास करता है।

मेरे प्यारे! जीवन को कैसे सार्थक किया जाता है? इस मानव क्षेत्र में क्या इस पद्धति के क्षेत्र में, ब्रह्माण्ड में, लोक लोकांतरों के क्षेत्र में पहुँचे तो हम दोनों वस्तुओं को प्रतिपादन करते रहते हैं। दोनों वस्तुओं में एक महानता को दृष्टिपात करते रहते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय किया कि ऋषि मुनियों की उड़ान इतनी ऊँची उड़ान रहती, इतनी दार्शनिक उड़ान है कि उस उड़ान को उड़ता हुआ मानव विज्ञान के क्षेत्र में चला जाता है अथवा विज्ञान जिसको हम परमाणुवाद कहते हैं अथवा अणुवाद कहते हैं, नाना प्रकार की तरंगों को यन्त्रों में वह स्थिर कर लेता है और वह स्थिर हो करके इस भौतिकवाद, अणुवाद, तरंगवाद से उपराम हो जाता है अथवा मोन हो जाता है तो उसके पश्चात वह आध्यात्मिकवाद के मार्ग को प्राप्त करता है।

एक समय महात्मा भुञ्जु और तपेकश्वर ऋषि महाराज दोनों एकंत स्थली पर विराजमान थे, उनका ही मन्तव्य नहीं और भी नाना ऋषियों का मन्तव्य है कि एक समय ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा विराजमान थे, महर्षि हरितत ऋषि बोले कि महाराज! हम यह जानना चाहते हैं कि वृते वृते देवाः हे प्रभु! वह देवता कैसे बनता है। तो महर्षि अथर्वा कहते हैं कि महाराज! संसार में देवता बनने की आकांक्षा है? उन्होंने कहा कि आकांक्षा नहीं है, हमें जानकारी की उत्सुकता है, हम जानना चाहते हैं, जानने के पश्चात हम अपने में देववत की घोषणा कर सकेंगे। ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने यह वाक्य कहा कि हमारे विचार में तो यह आता है कि मानव अपनी आभाओं को, अपनी मानवीयतव को विज्ञान और तरंगों

में ले जाए जिससे उसका मानवीय दर्शन उसके समीप आ जाए और मानवीय दर्शन जब तक मानव के समीप नहीं आता, वह दोनों को एक सूत्र में नहीं लाता तब तक मानव की उड़ान विचित्र किसी भी काल में नहीं बन पाती।

विचित्र उड़ान किसे कहते हैं? विचित्र उड़ान उसे कहते हैं जो मानव सदैव याज्ञ करता है। याज्ञ करने वाले मानव की उड़ान सदैव ऊर्ध्व में रहती है, वह ऊर्ध्वा गति की उड़ान उड़ता हुआ तरंगों में परणित हो जाता है। मानव के द्वारा दो प्रकार की वार्त्ताएँ हैं, एक तो मानव के हृदय में यह आकांक्षा होती है कि मोक्ष को जाना चाहता है, एक मानव की एक कामना होती है कि मैं इस संसार को जानता हुआ विज्ञान के क्षेत्र में जाना चाहता हूँ। दोनों ही विचित्र उड़ान हैं। एक मानव परमाणुवाद की उड़ान उड़ रहा है, एक मानव एकांत स्थली पर विराजमान होकर के याज्ञ कर रहा है, वह विचारों की उड़ान के साथ साथ याज्ञ कर रहा है। याज्ञ का अभिप्राय अभी अभी हमने प्रकट करते हुए कहा कि एक तो अग्न्याघान करने का नाम भी याज्ञ है और अग्नाधान उद्बुद्ध करने के पश्चात् जब उस अग्नि को प्रतीत करता है, उस अग्नि में जो नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं चरन के सहित उत्पन्न होती हैं उन चरन को जानना, उसके असली तव को जानने का नाम भी याज्ञ माना गया है। याज्ञ का जो द्वितीय स्वरूप है वह हमारे यहाँ अपने आंतरिक हृदय की अग्नि को जागरूक करना है अथवा उसे उद्बुद्ध करना है और उद्बुद्ध करके उसमें जो नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं, नाना प्रकार की जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं उन ध्वनियों को विचार विनिमय करता हुआ वह अपने जगत और आंतरिक जगत दोनों में वह अंतर्द्वंद्व स्वीकार नहीं करता, वह दोनों को एक सूत्र में पिरो देता है, एक ही सूत्र में लाने का प्रयास करता है। जब वह एक सूत्र में आ जाते हैं तो अपने मानवीय शरीर में दोनों प्रकार की आभाओं को जानना चाहता है। प्रकृति के पाँचों स्वरूपों को मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि वैज्ञानिकों ने, दार्शनिकों ने, महर्षियों ने यह कहा है कि प्रकृति की पाँच प्रकार की गति हैं। सबसे प्रथम गति का नाम ऊर्ध्वा कहलाता है द्वितीय गति ध्रुवा है और प्रसारण, बहना और आकुंचन यह पाँच प्रकार की गति प्रकृति की मानी जाती हैं। पाँच प्रकार की गतियों में

प्रत्येक वैज्ञानिक उन्हीं गतियों में संलग्न रहता है वह चाहे अन्तरिक्ष में जाने वाले यानों का निर्माण क्यों न करने वाला हो, समुद्र के आँगन में यन्त्रों की आभा में गति करने वाला क्यों न हो, अपने को सूक्ष्म बनाकर के विचरण करने वाला क्यों न हो, और अपराहन गति करने वाला देखो, व नीचे को गति करने वाला यह पाँचों प्रकार की प्रकृति की गतियों में प्रत्येक वैज्ञानिक आभा का आभाहित रहता है। जब योगीजन इस आकुंचन क्रिया को जानने का प्रयास करते हैं, यह विचारते हैं कि हम इस क्रिया को कैसे जानें तो प्रत्येक मानव वैज्ञानिक देखो, जो अंतरक्षि में जो तरंगें तरंगित हो रही हैं जैसे सूर्य के आँगन में तीन प्रकार की किरणें कहलाती हैं, एक प्रभाऊ नाम की किरण होती है, एक इंद्र नाम की होती है और कृतिभा नाम की किरण होती है, कृतिभा और प्रभाऊ दोनों किरणों में संघर्ष होता रहता है, जब दोनों में संघर्ष होकर के वह विभक्त होते हैं, विभाजन होता है, जब उनका विभाजन होता है तो उनमें से तरंगें उत्पन्न होती हैं। वह तरंगें प्राण नाशक तरंगें होती हैं, उनमें शीतलता नहीं होती, वह अग्नि के तथ्यों को लिए होती हैं, जहाँ वह छू जाती हैं वही वह वस्तु को विनाश के क्षेत्र में ले जाती हैं, अपने में ग्रहण कर लेती हैं। वही पृथ्वी पर आकर के प्राण नाशक वायु बनकर के मानो वायु में मिश्रित होकर के वह अग्नि के तथ्य मानव के लिए क्या संसार के नाश के क्षेत्र बन जाते हैं।

पुत्रो! आज तुम्हें मैं विज्ञान के क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ। वह सूरई पृथ्वी के आँगन में एक प्राण नामक अग्नित होती है, पृथ्वी के आँगन में गति करती रहती है उसको हम कृतिभावृतकैतु नाम की रेखा कहा करते हैं जब वह किरण उसमें आती हैं, तो शीतल बनकर के आती हैं, मानव को जन जीवन देती चली जाती हैं। जब वह प्राणी मात्र को जन जीवन देती हैं, उन्हीं किरणों को जान करके वैज्ञानिक नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करते हैं। वह पृथ्वी के परमाणुओं से जल के परमाणुओं से और अग्नि के परमाणुओं से वायु आदि के परमाणुओं को लेकर के नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण कर देते हैं। यदि वह प्राण नाशक जो तरंगें हैं उन तरंगों को जानकर के वैज्ञानिक जब प्राण में वायु प्रधान होता है तो उन परमाणुओं से जब यन्त्र का निर्माण

कर देते हैं तो वह वायुयान दूसरे लोकों में जाने वाले यानों का निर्माण होने लगता है, वायु के तथ्यों को लेकर के, अग्नि के तथ्यों को लेकर के उन तथ्यों को सुगठित करके वायुयान में। मुझे स्मरण है द्वापर का वह काल जब भीम और घटोत्कच्छ दोनों वैज्ञानिक अपनी विज्ञानशाला में विराजमान होते थे और यन्त्रों का निर्माण करके वायु मण्डल में त्याग देते थे और चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष के विभाग में वर्तमान के काल में भी आज वह यन्त्र परिक्रमा कर रहे हैं। चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में गति कररहे हैं। परिणाम क्या कि वह नाना प्रकार के प्राणत्व मनस्तव को जानकर के यन्त्रों का निर्माण कर देते थे, उसमें इतनी प्राणशक्ति को परणित कर देते हैं वह यन्त्र बनकर के करोड़ों करोड़ों वर्षों का यान वैज्ञानिक निर्माणित कर देते हैं।

आज का वेद का ऋषि यही तो कह रहा है कि मानव को ऊँची ऊँची उड़ान उड़नी चाहिए क्योंकि परमात्मा के राष्ट्र में, परमात्मा के जगत में उड़ान उड़ना ही मानव का मुख्य कर्त्तव्य है क्योंकि यहाँ उड़ान उड़ने के लिए प्राणी आता है, यहाँ शान्त विराजमान होने के लिए नहीं आता विचारों की मानो तथ्यों की उड़ान उड़ने के लिए आता है। विचार विनिमय क्या कि मैं द्वापर के वैज्ञानिकों की चर्चा प्रकट कर रहा था। उन्होंने ऐसे ऐसे यन्त्रों का निर्माण किया जो चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में महात्मा ध्रुव ने देव ऋषि नारद मुनि की विज्ञानशाला में एक यन्त्र का निर्माण किया था जिस यन्त्र को ध्रुवकेतु यन्त्र कहते थे। ऐसा कहा जाता है कि उस यन्त्र में उन्होंने वायु तथ्य अपराव्ह अग्नि तथ्य को विशेषता देकरके उसमें प्राणत्व मनस्तव दोनों की विश्वेभानता की ओत प्रोत कराते हुए वह यान वर्तमान काल में भी ध्रुव की परिक्रमा कर रहा है। जब वैज्ञानिक ऊर्ध्वा गति में पहुँचने का प्रयास करता रहेगा, यन्त्रों का समूह प्राप्त होता रहेगा। उस यान की जो आयु है वह एक अरब पैंसठ लाख वर्षों की आयु है जो अन्तरिक्ष में गति करने वाला यान है आयु का अभिप्राय इन तथ्यों से माना जाता है क्योंकि जितने भी सूक्ष्मवाद में पहुँचोगे उतना ही तुम्हें आयु की प्रधानता प्राप्त होती चली जाएगी, आयु का अभिप्राय यह है कि उसमें सीमा है, सीमाबद्ध करने वाले यानों का निर्माण वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों में होता है, वह प्राण के ऊपर होता है, जितनी भी सूक्ष्म

प्राण शक्ति को उसमें श्रोत प्रोत कर दोगे वही तथ्य ऊर्ध्वा गति में रमण करता रहेगा। आज का हमारा वेद का आचार्य क्या कह रहा है? आज मैं तुम्हें विज्ञान के युग की चर्चा प्रकट करने नहीं आया परन्तु विज्ञान के बिना रहा भी नहीं जाता। इतना विशाल इतना महान ज्ञान और विज्ञान है, इतना विशाल यह प्रभु का साम्राज्य है, प्रभु का जगत है कि इसमें दोनों तथ्यों को लेकर के जो मानव अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहता है वह मानव इस संसार सागर से पार हो जाता है, यहाँ नाना प्रकार की उड़ान उड़ने वाला प्राणी ही सफल होता है, वही ऊँचा बनता है, वह ऋषि बनता है, वह महान बनकर के अपने तथ्यों को त्याग देता है उनके वायु मण्डल में शब्द गति करते रहते हैं, शब्द के साथ में उनके चित्र गति करते रहते हैं, वह प्राणियों को छूते रहते हैं, प्राणियों को प्रेरणा प्राप्त होती रहती है। यह प्राणत्व शक्ति मानी जाती है, जितना भी मानव शक्तिशाली होता है, जितना भी मानव तपस्वी होता है, प्राणों को अपने वशीभूत करने लगता है, मन और प्राण दोनों शक्तियों को वह जानने लगता है उतना ही उसका जीवन, उसके शब्द में उसकी इन्द्रियों की जो तरंगें हैं, उन तरंगों में उतनी ही विद्युतशक्ति, महान शक्ति परणित होती हुई सदियों तक मानव को प्रेरणा देती रहती हैं, वह स्थली भी उसको प्रेरित करती रहती हैं और वह प्रेरणा ले ले करके अपने जीवन को महान बनाता है।

मुझे स्मरण है महात्मा भृगु मुनि महाराज जब गान गाते थे तो हिमालय की कन्दराओं में चले जाते जहाँ महात्मा शिव माता पार्वती नृत्य करते रहते थे, नृत्य का अभिप्राय यह है कि जैसे मनस्तव प्राण दोनों मिल करके संसार को नृत्यतव बना रहे हैं, गति प्रदान कर रहे हैं, वह जो गतिशील हो रहा है ब्रह्माण्ड यह मनस्तव प्राणत्व की ही महानता है। यह दोनों का नृत्य है। इसी प्रकार हमारे यहाँ शिव और पार्वती दोनों भयंकर वनों में नृत्य करते रहते थे, उनका जो नृत्य था वह गायत्री और छन्दों का नृत्य होता रहता, वेद के मन्त्रों के सहित नृत्य करते रहते थे। नृत्य का अभिप्राय है कि अपने विचारों में वेद के आश्रय को ले करके ऊँची ऊँची उड़ान उड़ना, महान उड़ान उड़ना उसको नृत्य कहा जाता है। विचारों की उड़ान ले करके ऋषि मुनि भयंकर वनों में जाते

और उन तरंगों को अपने मस्तिष्क में एकत्रित करने का प्रयास करते रहते थे।
मुझे स्मरण है पुत्रों! महर्षि भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में से महात्मा सुकैता यह कहता है कि महाराज! मैं तो कचली वनों में से हिमालय में जा रहा हूँ जहाँ महात्मा शिव और पार्वती नृत्य होता रहता था, मैं उन शब्दों को यन्त्रों में लेना चाहता हूँ, प्राण मनो वृताः क्योंकि मन ही संसार का चित्र लेता है। यह प्रकृति का एक सूक्ष्मतव माना जाता है यह प्रकृति अपराव्ह वह जो मन है यह संसार का चित्रण करता रहता है और चित्रण किसका लेता है जो प्राण के साथ में शब्द विराजमान हैं और शब्द के साथ चित्र विराजमान हैं, सहस्त्रों वषो्रं की वाणियों में मानव का चित्र जो गति कर रहा है उन चित्रों को महात्मा सुकैता, जमदाग्नि भयंकर वनों में जाता है अपने मन्त्रों में उनके चित्रों को लेने का प्रयास कर रहा है।
आज हमें विचारना है कि हम उन महापुरुषों के चित्रों से प्रेरणा लेते हैं और प्रेरणा ले करके अपने जीवन को महान बनाने का यास करें जिससे हमारा जीवन एक महानता में परणित होता हुआ इस सागर से पार हो जाए। वह जो मान अपमान वाला सागर है, यह जो मोह ममता का सागर हैं इससे पार होना हमारा उद्देश्य है इस संसार में आने का तो इसलिए हमें वह प्रयास करना चाहिए।
आज मैं विज्ञान के क्षेत्र में जाने के लिए नहीं आया। विचार विनिमय कैवल यह था कि हम यह जानने वाले बनें कि परमात्मा की प्रतिभा क्या है। परमात्मा की प्रतिभा प्रत्येक अणु परमाणु, प्रत्येक तरंगें प्रभु की गाथा का वर्णन कर रही हैं। मानो उसकी साक्षी दिला रही है और यह निश्चय करा रही है कि हम उस चेतना में बद्ध हो जाएँ जिस चेतना से यह संसार चेतनित हो रहा है और चेतना में बद्ध होता हुआ प्रत्येक प्राणी प्राणी से कटिबद्ध हो रहा है, प्रत्येक लोक लोकांतर लोकों से कटिबद्ध हो रहा है। तो वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव! आज तू ऊँची उड़ान उड़ता हुआ नाना तरंगों में तरंगित होता चल क्योंकि वही तरंगें तेरे जीवन का एक महान और सार्थिक बना करके तुझे इस सागर से पार ले जा सकती हैं।
तो एकांत में विराजमान हो करके वेद का ऋषि यह विचारता है कि यह जो प्रकृति है,

यह जो जगत है यह क्या है, इसमें कौन सी सत्ता है इसको विचार विनिमय करता हुआ वह मन और प्राण को उड़ान उड़ने लगता है। मन औरप्राण की उड़ान उड़ करके मन और प्राण के द्वारा योगाभ्यास अवस्था में विराजमान हो जाता है और विराजमान हो करके मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है।

एक समय महर्षि हरितत् मुनि महाराज अपने आसन पर विराजमान थे तो महर्षि सोमकैतु उनके आश्रम में पहुँचे और सोमकैतु ने कहा कि महाराज! क्या कर रहे हो उन्होंने कहा कि मैं मन और प्राण दोनों का निदान कर रहा हूँ अथवा दोनों को अपने में एक दूसरे का एक दूसरा पूरक बना रहा हूँ जो शरीर में आ करके यह दोनों का विराजमान हो गया है मैं दोनों को एक सूत्र में लाना चाहता हूँ। कहा जाता है कि वह आगे ऋषि से प्रश्न करने लगे कि आप कैसे लाएँगे। उन्होंने कहा कि मन से शक्तिशाली संसार में कोई वस्तु नहीं है यह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तरंग है। मन दो प्रकार का होता है, एक विशेष होता है और एक विश्वेभान होता है। जो मन मानव के शरीर में कार्य कर रहा है, प्राणियों के शरीरों में कार्य कर रहा है मनस्तव के वह विशेष प्राण कहलाता है और जो विश्वेभान प्राण है वह प्रत्येक तथ्यों में पञ्च महाभूतों में अपना कार्य कर रहा है जैसे पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार का रस है उन रसों का जो विभाजन है वह मनस्तव विश्वेभान मन नके द्वारा ज्ञान्तव के द्वारा हो रहा है। वह सबको जो नाना प्रकार का रसो स्वादन उनमें परणित हो रहा हैं वह मन के द्वारा हो रहा है क्योंकि मन ही रसों का विभाजन करने वाला है, मन ही सूर्य की किरणों का विभाजन करता है मन ही मानव के कुटुम्ब का विभाजन करता है, इस शरीर में दस प्राण हैं इनका विभाजन भी यह मन ही कर रहा है।

पुत्रो! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ कैवल विचार विनिमय यह कि यह जो मन है यह ज्ञान का प्रतिनिधि माना गया है और क्रिया का प्रतिनिधि हमारे यहाँ प्राण माना गया है, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। आज कोई भी मानव योग में जाना चाहता है, समाधिष्ट होना चाहता है, इन तरंगों में रमण करना चाहता है तो मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करो। जब तक कोई भी मानव इस मन

और प्राण को सूत्र में लाने का प्रयास नहीं करेगा तब तक वह मानव न साधक कहलाता है न योगी कहलाता है।

अब कैसे कियाजाए यह तो अनुभव का विषय रह जाता है, मैं इसके निरोध की चर्चाएँ तो किसी काल में करूँगा जब वेदमन्त्र आएँगे, जब यह विषय आएगा अब तो केवल इतना उच्चारण किए देते हैं कि इस शरीर में दस प्राण कहलाते हैं, इन दसों प्राणों को जानना, इनके कार्य वाहकों को जानना यह यहाँ तक बुद्धि का विषय रह जाता है इनको जान करके और एकांकी प्राणः जैसे स्वातम् अपप्रताः पिरोणो वृताः अपान और प्राण दोनों का समन्वय होकर के घ्राण के द्वारा श्रीमतत्री वृताः जो भी अपना इष्ट देव होता है, अपना जो देवता होता है मनन करने का वह मन के साथ प्राण के साथ में उसका तारतम्य लग जाता है, जब तारतम्य लग जाता है इसी से एक विमान बन जाता है, ऋषि इस विमान को उत्पन्न करता है जब वह मन और प्राण दोनों का मिलान होकर के एक विमान बन जाता है, इनके ऊपर जो आत्मतत्त्व है वह विराजमान हो जाता है, उस समय मन और प्राण दोनों को रसी कहते हैं मानो उस समय रस में विराजमान होने वाला आत्मा है ब्रह्म रन्द्र से नाना चक्रों में गति करता हुआ गाड़ियों में गति करता हुआ वह ब्रह्मरन्ध्र में गति करने लगता है। जब ब्रह्मरन्ध्र में इस मन और प्राण और आत्मा तीनों की अवराह जाती है मानो वह जो ब्रह्मरन्ध्र है वह चक्र की भांति जब गति करता है तो यह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड है, नाना जो नस नाड़ियाँ हैं, ब्रह्मरन्ध्र में जितनी तरंगें उत्पन्न होती हैं उसके ऊर्ध्वा भाग में एक पिपाद स्थान होता है उस पिपाद स्थान में जितनी प्राणत्व शक्ति होती है उसमें से वह तरंगें बन बन करके चक्रों में गति करती हैं ऐसा ऋषि कहते हैं वह जो ऋषि होते हैं वह ब्रह्मरन्ध्र तक अपने आत्मतत्वे प्राण और मन को दोनों से ब्रह्मरन्ध्र की गति कराते हैं, वह जो अन्तरिक्ष है, यह जो लोक लोकान्तरों का ब्रह्माण्ड है, यह जो नाना आकाश वाला ब्रह्माण्ड है क्योंकि यह मन और प्राण के ही अंतर्गत नाना आकाश गंगाएँ जब गति करती हैं, मन और प्राण के आधार पर ही यह ब्रह्मरन्ध्र अपनी गति करता है और ब्रह्मरन्ध्र जब अपनी गति करता है तो इसमें से पंखुड़ियाँ बनकर के तो ऋषि अपने मस्तिष्क में ही अपने हृदय

में ही इस परमात्मा के हृदय को बाहरीय परमात्मा के हृदय आंतरिक योगी का हृदय दोनों का एक तुल्य होकर के, एक सामान्य होकर के योगी इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में ही अनुभव करने लगता है और जब अनुभव करता है तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड इसमें ओत प्रोत होकर के मन और प्राण की आभा में दोनां में गति करता हुआ, दोनों में आभायित होता हुआ उसमें ही खिलवाड़ करता रहता है, उसमें ही वह योगेश्वर परमात्मा के हृदय से अपने हृदय का मिलान करता हुआ नाना प्रकार के लोक लोकांतर उसके लिए खिलवाड़ बन जाते हैं, अनुभव में करने लगता है।

तो विचार विनिमय क्या कि मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करो। आज तो मानव परमात्मा के ब्रह्माण्ड को, परमात्मा की आभा को जानना चाहता है इस प्राण और मन की आभा को जानना चाहता है तो वह अपने में प्राण और मन दोनों का समन्वय करने का प्रयास करे। जब दोनों का समन्वय हो जाता है तो आत्म तत्त्व इसके ऊपर विश्राम करने लगता है और विश्राम करके गति करता है क्योंकि मानव के जन्म जन्मांतरों का मूल कारण मन और प्राण के दोनों के विभाजन होने का बनता है। जबमन और प्राण एक सूत्र में आ जाते हैं तो वह मृत्यु को विजय करने वाला हो जाता है, अन्धकार नहीं रहता क्योंकि मृत्यु का अभिप्राय मैंने कई काल में तुम्हें प्रकट करते हुए कहा था मृत्यु अज्ञान को कहते हैं जब मन और प्राण दोनों का मिलान हो जाता है तो मानव के हृदय में प्रकाश रहता है, मानव के मस्तिष्क में प्रकाश रहता है, अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहता वह प्रकाश में रहता है। जहाँ प्रकाश होता है वहाँ अन्धकार नहीं आता और जहाँ अन्धकार नहीं आता वहाँ प्राणी मृत्यु भी नहीं होती। इसीलिए हमें विचारना है कि मृत्यु से पार होना है हृदय हमारा प्रकाशित होना चाहिए।

हम परमात्मा की प्रतिभा को जानना चाहते हैं जो परमात्मा की प्रतिभा को जानता है वह मन और प्राण दोनों की आभा को जानता हुआ दोनों को लेकर के क्योंकि जब दोनों एक सूत्र में आ जाते हैं तो गुण से गुणी पृथक नहीं होता। उन दोनों का ही एक सूत्र में आना ही आत्मतत्वे अपनी आभा में परणित हो जाता है। दोनों का सन्निधान हो करके, दोनों का मिलान हो करके उसको मोक्ष भी कहा जाता है। मोक्ष क्यों कहते हैं

क्योंकि दोनों का विभाजन हो गया था दोनों एक सूत्र में आ गए हैं, दोनों का एक सूत्र में आने का नाम चेतना में चेतना जब परणित हो जाती है तो उसका नाम मोक्ष कहलाया जाता है। आज इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ परन्तु संक्षिप्त परिचय देने चला आया हूँ।

परिचय क्या है? इन वाक्यों को उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि अभी अभी दोनों प्रकार की वार्त्ताएँ तुम्हारे समीप नियुक्त की हैं और वह दोनों प्रकार की वार्त्ता यह है कि तरंगों में तरंगित होने जा रहा है, तरंगों में रमण करना चाहता हैं परन्तु जब मन और प्राण दोनों तरंगों को ले करके अपने मानव जीवन को तरंगित करना चाहता है और जब वह तरंगित करता है आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद देखो, आध्यात्मिकवाद में जीवन है और भौतिकवाद में अंतरद्वन्द्व दृष्टिपात होता है। वो कैसे होता है क्योंकि उसमें अभिमान है जब मानव तरंगों में तरंगित होता है नाना प्रकार की तरंगों को जानता है, चित्रावलियों का जानता है। जब नाना प्रकार की चित्रावलियों को मस्तिष्क के द्वारा जानता है, आत्मतव के द्वारा नहीं जानता तो बाहरीय प्राण को दृष्टिपात कर रहा है, बाहरीय प्राण के द्वारा यन्त्रों का निर्माण कर रहा है, बाहरीय जगत को ही जानता हुआ नाना प्रकार की अणु शक्ति को जान रहा है। जो मानव अपने मस्तिष्क हृदय और परमात्मा के हृदय को मिलान करता हुआ इस संसार को जानता है वह आध्यात्मिक वेला में चला जाता है, वहाँ नम्रना है, जीवन है, सार्थिकता है, मानवीयता है यौगिकता है वहाँ परमात्मा की आभा को जानने के लिए तत्पर हो करके उसके द्वारा पर चला जाता है परन्तु जहाँ इन नाना प्रकार की तरंगों को, चित्रावलियों को जानता रहता है वह बाहरीय मन और प्राण के द्वारा जानता है, अपने मस्तिष्क से बाहरीय जगत में ले जाता है मस्तिष्कों की तरंगों को बाहरीय जगत में जो नाना तरंगें जैसे सूर्य से उत्पन्न होती हैं, अग्नि से धारा का जन्म होता और वायु से होता है, उनको एक दूसरे में मिलान करता हुआ यन्त्रों का निर्माण कर रहा है, वह वायुयान बना रहा है, वह चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है, मंगल में जा रहा है।

महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ विज्ञानशाला में एक समय ब्रह्मचारी सुकैता अपने यान

विराजमान हो करके वह पृथ्वी से उड़ान उड़ करके सबसे वह शुक्र में जाता है, शुक्र से चन्द्रमा में जाता है, चन्द्रमा से उड़ान उड़ करके मंगल में जाता है एक ही यान के द्वारा। ऐसा ऋषि कहता है एक यान से बहत्तर लोकों में रमण करके वह यान पृथ्वी पर आ जाता है। तो विचार विनिमय क्या कि ब्रह्मचारी सुकैता जमदाग्नि गोत्र में उनका अवरोह था, ब्रह्मचारी सुकैता यानों का भ्रमण करके मन के द्वारा नाना लोकों का भ्रमण करके ऊँची उड़ान उड़ना यह तो आश्चर्य नहीं परन्तु यह बाहरीय जगत है इसमें क्या है, इसमें राष्ट्रीयता है, इसमें विनाश है, इसमें अन्धकार है क्योंकि एक ही अंग को जाना है प्रभु की प्रथम महान प्रतिभा को नहीं जाना है और प्रतिभा को वह प्राणी जानता है जो बाहरीय और आंतरिक दोनों का समन्वय करता हुआ जो इस संसार को जानता है आध्यात्मिक वादी है और जो बाहरीय जगत को जानता है वह अपनी अंतरात्मा की चेतना से वंचित्त रहता है वह भौतिकवादी कहलाता है इसलिए भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद दोनों का समन्वय हो करके जो प्राणी इस संसार में उड़ान उड़ता है वह उड़ान महान उड़ान होती है और जो एक ही अंग को ले करके उड़ान उड़ता है वह उड़ान ऐसी होती है मानो भौतिकवाद की उड़ान उड़ने वाले प्राणी की जो उड़ान है वह विचित्र तो है परन्तु उस विज्ञान का, उस जानकारी का दुरूपयोग होने का संदेह बना रहता है तो वास्तव में उसका दुरूपयोग हो जाता है, अग्नि के कांड हो जाते हैं, वही विज्ञान अग्नि में परणित हो जाता है, दुरूपयोग हो करके वह राष्ट्र का समाज का घातक बनकर के अग्नि अग्नि बिखर जाते हैं। जो यन्त्रों में स्थिर कर देते हैं और जब आध्यात्मिकवाद भौतिक वाद दोनों को ले करके मानव गति करता है विज्ञान की गति करता है और आंतरिक जगत से ब्रह्माण्ड को जानता है उसमें नम्रता का जीवन होता है, उसमें विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होता वह एक महान् कहलाता है, वह परमात्मा के द्वार पर चला जाता है।

आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ केवल विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की प्रतिभा को जानने का प्रयास करें, वह प्रतिभा कौन जानता है परमात्मा की जो एकंतस्थली पर विराजमान हो करके विचारों की उड़ान उड़ता है,

परमात्मा के राष्ट्र में जसे जागरूक रहता है और अपने हृदय की उदबुद्ध स्वाह अग्नि को उदबुद्ध करता रहता है वह अग्नि कौन सी है? उदबुद्ध करने वाली हृदय की अग्नि है वह बाहरीय नहीं आंतरिक और बाहरीय जगत दोनों की अग्नि को उदबुद्ध करने वाला याज्ञिक कहलाता है और वह जो याज्ञ है उसके द्वारा कोई भी प्रश्न आए जाए उसकी ऊँची उड़ान उड़ती रहेगी।

आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, मन और प्राण की चर्चाएँ तो बेटा! मैं कल ही कर सकूँगा आज का विचार विनिमय अब समाप्त होने जा रहा है। आज के विचार विनिमय का अभिप्राय कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों का समन्वय करते चले जाएँ यह है आज का वाक् अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। अब वेदों का पाठ होगा। स्थान महर्षि दयानंद स्मारक, करणावास समय सायं 4 बजे।

२ 07 06 1976 पुष्प 31 मन और प्राण के स्वरूप, क्रियाओं और महत्त्व का वर्णन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज पूर्व से हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा अथवा महिमा का वर्णन किया जाता है।

हमने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए, अथवा संक्षिप्त परिचय देने के लिए हमारा आशय रहता है कि हम उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा अथवा उसकी महिमा का संक्षिप्त परिचय दे सकें। आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था? हमारे प्रारम्भ के वेद मन्त्रों में उस आनन्दमयी की महिमा का वर्णन आ रहा था, जिसको हमारे यहाँ वसुन्धरा कहा जाता है, वसुन्धरा का अभिप्राय यह है कि जिसके गर्भ स्थल में हम वशीभूत रहते हैं, उस माता का नाम वसुन्धरा कहलाया जाता है। प्रातःकाल में मानव

अपने आसन को त्यागने से ही पूर्व उस प्रभु का चिन्तन करता है प्रातःकाल की अमृत वेला में विराजमान होकर के अपने प्रभु का गुणगान गाता हुआ, अपने देव की महिमा का गुणगान गाता हुआ मानव अपने मस्तिष्क को स्वच्छ बना करके वह ब्रह्म के चिन्तन में संलग्न हो जाता है, वह ब्रह्मयाज्ञी बन जाता है और ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ ब्रह्म की उड़ान उड़ने के लिए तत्पर हो जाता है। आसन पर विराजमान रहता है और ब्रह्म याग करता है। ब्रह्मयाग का अभिप्राय अपने स्वरूप और बाह्य स्वरूप दोनों का समन्वय करना और ब्रह्म की महत्ता को दृष्टिपात करने का नाम ब्रह्मयाग माना है।

मेरे पुत्र! तुम्हें दृष्टिपात होगा, तुम्हें स्मरण भी होगा कि मानव जब ब्रह्मयाग में परणित होता है, ब्रह्म याज्ञी बनने के लिए तत्पर होता है तो वहाँ सबसे प्रथम अपने बाह्य जगत में जाता है, बाह्य जगत के नाना तथ्यों पर विचार विनिमय प्रारम्भ करता है। जैसे अग्नयाधान है, अग्नि होत्र है, अग्नि की धाराओं को विचा विनिमय में प्रारम्भ करता है। अग्नि में कितने प्रकार की धाराएँ हैं? जैसे आध्यात्मिक वेत्ताओं ने हमारे यहाँ अग्नि की धाराएँ कुछ और स्वीकार की हैं। विज्ञान कुछ कह रहा है, आयुर्वेद कुछ कह रहा है, तो अग्नि की नाना धाराओं में उस महान् देव की प्रतिभा को दृष्टिपात करना और उसको अन्तर्रात्मा में ले जाने का नाम मानो ब्रह्म से अपना समन्वय करना है। अथवा उस ब्रह्म की आभा में रमण करना है। क्योंकि प्रत्येक प्राणी जब संसार में आता है तो बाह्य जगत को ही विचारता रहता है और आंतरिक जगत् को न विचारने से प्रत्येक मानव दुःखित रहता है। यदि वह अपने में ही दृष्टिपात करने लगे अपने में ही ब्रह्माण्ड की कल्पना करने लगे, ब्रह्म चिन्तन करने लगे तो यह संसार स्वर्गमय और आनंदमय बन सकता है।

कोई भी मानव इस संसार को आनन्दमय बनाना चाहता है, स्वर्गमय बनाना चाहता है तो अपनी स्थली पर विराजमान हो करके ब्रह्म याज्ञी बनें। ब्रह्मयाग करने वाला प्राणी इस संसार में उदासीन नहीं होता। वह सदैव चैतन्य रहता है, महान रहता है। इसीलिए प्रत्येक मानव, प्रत्येक मेरे प्यारे! ऋषि मण्डल को अपनी मानवता पर और परमात्मा की मानवता पर विचार विनिमय करने वाला बनना चाहिए। जैसा मैंने तुम्हें बहुत पुरातन

काल में निर्णय देते हुए कहा था। आज भी वह प्रसंग आता रहता है। मेरे प्यारे! महानन्द जी भीउच्चारण करते रहते हैं। वेद का मन्त्र भी इस प्रकार की प्रेरणा देता चला जाता है।

हमने बहुत पुरातन काल में मानवीय प्रेरणा के सम्बन्ध में नाना प्रकार के तथ्यों पर विचार विनिमय किया। हमारे यहाँ पूज्यपाद गुरुओं ने क्रियात्मक अपने जीवन को बनाया। जब वेद में यह आया कि मनस्तव, प्राणतत्व, देवतत्व, भ्रष्टताः गिरि वृद्धा देवा हिरण्याः। जब वेद का मन्त्र यह कहता है तो ऋषि मुनियों ने अपने जीवन को क्रियात्मक बनाने का प्रयास किया।

क्रियात्मक जीवन किसे कहते हैं? जो शब्दों में है वह मानव के मन में होना चाहिए, वह मानव की गतियों में होना चाहिए, मानव उसी के आधार पर अपने जीवन में गति लाता है, उसको तन्मय होकर के कार्य करता है तो उसको क्रियात्मक जीवन कहते हैं। हमारे यहाँ मन्त्र द्रष्टा भी कहा जाता है। मन्त्र द्रष्टा वह कहलाता है देखो, जो मन्त्र का उच्चारण किया तो तक एक शब्द का ज्ञान अथवा उसके अन्तरात्मा में परिपूर्ण होता चला जाता है। मन्त्र समीप आया, मन्त्र का जो चित्र है वह मानव के अन्तःकरण में निहित हो जाता है। मन, प्राण दोनों की आभा में मन्त्रणा चली जाती है तो आत्मतत्व उसके समीप आ जाता है। मन्त्र का जो ज्ञान और विज्ञान है वह प्रकृति का चित्रण उसके समीप हो जाता है तो उसको मन्त्र दृष्टा कहा जाता है। तो हमारे यहाँ नाना प्रकार के द्रष्टा हैं।

एक वेद दृष्टा होता है। वेद द्रष्टा किसे कहते हैं? जैसा मैंने कल के वाक्यों में कहा, उद्बुद्ध उद्बुद्ध कह करके अपने हृदय की अग्नि को जागरूक करता है। उद्बुद्ध कह करके वह वेद दृष्ट बनता है। वेद उसे कहते हैं जो प्रकाश में ले जाता है। जैसे माता के गर्भाशय में जरायुज के आने के पश्चात् एक बिंदु के आने के पश्चात् माता अपने बालक की गर्भाशय में किस प्रकार पालना करे? पिता उसकीकैसी सुरक्षा कर सकता है? बाल्यकाल से लेकर के मरण पर्यन्त तक, सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के अंतिम बिंदु तक जिस वेद में ज्ञान और विज्ञान हो, वेद दृष्टा उसे कहते हैं। जो सर्वत्र ज्ञान में पारंगत

होता है। जैसा मैंने बहुत पुरातन काल में कहा, योगीजन वेद दृष्टा, मन्त्र द्रष्टा होते हैं। वे प्रत्येक वस्तु को एक सूत्र में पिरो देते है। जैसे हम ओ३म् का उच्चारण करते हैं मानो उन तीन अक्षरों में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का ज्ञान और विज्ञान ओत प्रोत रहता है। इसके गभग् को जब विचारा जाता है, इस पर जब चिन्तन प्रारम्भ होता है, इसके ऊपर उड़ान उड़ी जाती है तो सूर्य की नाना धाराओं से लेकर के मानवीय विचारधारा तक ओ३म् ध्वनि में निहित रहती है। निहित रहने के कारण वेद का मन्त्र उच्चारण करते हैं। ओ३म् प्रारम्भ में उच्चारण करते हैं क्योंकि ऋचा ओ३म् रूपी धागे में पिरोया हुआ है। जब ओ३म् रूपी धागे में वह ज्ञान और विज्ञान पिरोया जाता है तो यही प्रतीत होता है कि यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है। जब यह ब्रह्माण्ड एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है तो उस सूत्र को क्यों न जानें।

अब मैं तुम्हें एक मानवीय वृक्ष के ऊपर कुछ चिन्तन कराना चाहता हूँ। आओ विराजमान होकर के मानव का जो वक्ष है इसके ऊपर चिन्तन प्रारम्भ किया जाए। जब मानव के इस शरीर में एक बिंदु बन करके माता के गर्भस्थल में एक बिंदु आता है तब उस बिंदु में नाना प्रकार की प्रकृति की तरंगें आती हैं। उसी बिंदु के साथ में चेतनाबद्ध होती है। उसीसे मानव जीवन का माता के गर्भ स्थल में एक बालक के रूप का निर्माण हो जाता है और जब वह निर्माण होता है तो एक पक्ष से द्वितीय पक्ष आता है, एक माह से द्वितीय माह में आता है तो उसमें परिवर्तन आता चला जाता है। ज्यों ज्यों प्रकृति के आवेश बन करके उसको प्रभावित करते हैं, त्यों त्यों प्रभावित होता रहता है।

जब वह माता के बाह्य जगत् में आता है, माता की लोरियों में परणित हो जाता है, माता की लोरियों का पान करता रहता है तो त्यों त्यों माता के विचार, लोरियों में जो तरंगें होती हैं वे तरंगें बालक को छूती रहती हैं। आयु में वर्षों का बन जाता है। वही नाना प्रकार के जगत को जानने लगता है। अपने सुंदर कुटम्ब का निर्माण करने लगता है। गर्भ स्थल से पृथक होकर के माता को भी अच्छी प्रकार नहीं जानता था। परन्तु उसमें से दो धाराओं का जन्म हुआ है। एक को हमारे यहाँ ज्ञान कहते हैं और द्वितीय को प्रयत्न कहते हैं। तो ज्ञान और प्रयत्न का एक बिंदु से निकास है, एक शून्य बिंदु है

उसी शून्य बिंदु से दो धाराओं का निकास होता है। चाहे वह मानव जगत् है, चाहे वह बाह्य ब्रह्माण्ड है। परन्तु एक ही बिंदु से दो धाराओं का जन्म होता है। एक को ज्ञान कहते हैं, द्वितीय को प्रयत्न कहते हैं। ज्यों ज्यों वह संसार में आता है तो मन का एक व्यापार बनता रहता है, मन का एक कुटुम्ब बनता रहता है। प्राण के द्वारा वह तरंगों के द्वारा उसको ग्रहण करता रहता है। उसमें ज्ञान के द्वारा उसे कार्य कराता है। जैसे माता के गर्भस्थल में एक बिंदु पहुँचा, उस बिंदु में से दो धाराओं का जन्म हुआ, एक को ज्ञान कहते हैं। द्वितीय को प्रयत्न कहते हैं। उसमें शनैः शनैः यह जो ज्ञान का माध्यम है इससे क्रिया के दो पात्र विभक्त होते हैं और वह विभाजन पाँच प्राणों के रूप में परणित हो जाता है। एक ही धारा से पाँच धाराओं का निर्माण हो जाता है। मानो प्राण अपान, उदान, समान और ब्यान यह पाँच प्राण बन गए। पाँच प्राण बन जाने से ज्ञान में कोई सूक्ष्मता नहीं आई, ज्ञान की धारा प्रारम्भ रहती है। जब ज्ञान के द्वारा इनको कार्यवाहक परणित कर देता है।

प्राण का कार्य है नाभि केन्द्र से हो करके ब्रह्म रन्ध्र के आँगन को गति करके घ्राण के द्वारा बाह्य जगत् में परणित हो जाना, अरबों खरबों परमाणु बाह्य जगत में लाना है, अरबों खरबों परमाणु दुर्गन्धयुक्त वह वायु मण्डल में त्याग देता है।

जब प्राण को यह कार्य परणित कर दिया तो अपान का कार्य गुरूतव का वह पृथ्वी के आँगन में परणित कर दिया, उसका सम्बंध है पृथ्वी से, पृथ्वी गुरूतव उसको अपने में धारण करती रहती है। अपान के द्वारा ही मानव आधारित रहता है। आज इस अपान के ऊपर जितनी व्याख्या कर सकूँ उतनी वह सूक्ष्म रहती है। पृथ्वी में भी अपान प्राण कार्य कर रहा है, नाना लोक लोकांतरों में अपान कार्य कर रहा है। यह अपान ही है जो मानव को स्थिर किए रहता है। यदि अपान प्राण नहीं होगा तो मानव का जो यह मानवीय शरीर है यह भी नहीं रहेगा। यह सूर्य की किरणों से इनका समन्वय हो सकता है। हमें अपान के ऊपर चिन्तन करना चाहिए।

मुनिवरों! हम जो भी आहार करते हैं वह आहार बन करके सपान सबको विभाजित कर देता है। व्यान सर्वत्र नस नाड़ियों में रक्त का सञ्चार करता हुआ गति करता रहता

है। रसों का वृत करता रहता है और उदान जिस समय प्राणांत होने लगता है, इस शरीर को त्यागने लगता है उस समय चित्त इस उदान से मिलान करता है और उदान उस चेतना से मिलान करके इस शरीर को त्याग दिया जाता है। वह जिसे चित्त कहते हैं, चित्त नाम भूमि का है, चित्त नाम अंकुरों के क्षेत्र का है। जहाँ मानव के शरीर में नाना अंकुर होते हैं, जन्म जन्मांतरों के संस्कार होते हैं, करोड़ों जन्मों के संस्कार मानव के जीवन में निहित होते हैं। वह जो चित्त है वह उदान प्राण से मिलान करता है। उसमें सूक्ष्म शरीर और उसी में कारण शरीर विद्यमान रहते हैं। वही शरीर को त्याग देता है द्वितीय शरीरों को धारण करता रहता है जैसा उसका अंतिम विचार होता है अथवा चिन्तन होता है। इसीलिए वेद के ऋषियों ने कहा है कि हे मानव! अंत में जो भी तेरा विचार होगा, जिस प्रकार का तेरा चिन्तन होगा उसी प्रकार की योनियाँ तुझे प्राप्त होती रहेंगी।

आज मैं इस विशाल दर्शन में जाना नहीं चाहता हूँ यह मानवीय दर्शन की चर्चाएँ प्रारम्भ होने लगीं। जब ज्ञान ने इन सब प्राणों को कार्य कराना प्रारम्भ कर दिया, कार्य प्रारम्भ होने लगा तो इन्हीं प्राणों में से पाँच प्राणों की उत्पत्ति हो गई। (1) नाग, (2) देवदत्त, (3) धनंजय, (4) कूर्म, कृकल और जब इनकी धाराएँ उत्पन्न हो गईं। अब प्राण की सीमा बद्ध हो गई। इन्हीं दस प्राणों में यह संसार गति कर रहा है। मानव गति कर रहा है, लोक लोकांतर गति कर रहे हैं, प्रत्येक परमाणु गति कर रहा है। मेरे पुत्रो! वे जो पाँच प्राण हैं जैसे (1) नाग है नाग कहते हैं जब मानव को अति क्रोध आता है तो नाग प्राण का ऊर्ध्व मुख हो जाता है। ऊर्ध्व मुख होकर के जब अधिक क्रोध आता है तो अमृत भस्म हो जाता है और उसका विषय बन करके नाग प्राण उसको अपने में ग्रहण करने लगता है। नाग कहते हैं जो विष का शोषण करता है। मैंने इसीलिए पूर्व काल में कहा है हे प्राणी मात्र! जितनी भी परमात्मा ने योनिएँ उत्पन्न की हैं वह सर्पराज से लेकर के मानव तक जितनी भी योनियाँ हैं वह सब एक दूसरे की पूरक कहलाती हैं। इसी प्रकार मानव शरीर में जो नाग प्राण है यह भी एक दूसरे का पूरक है, यह उस विष को अपने में ग्रहण करने लगता है, यह विष जब अति बलवान हो जाता है

तो यही विष नाना प्रकार के रोगों के मूल कारणों को उत्पन्न करता है। इसीलिए वेद में ऋषियों ने यह कहा है कि मानव! जो तुम योगी बनना चाहते हो तो क्रोध की मात्रा तुम्हारे समीप नहीं आनी चाहिए। जिससे तुम्हारा शरीर रोगों का कारण न बन जाए, व्याधि तुम्हारे शरीर में न आ जाए, जब व्याधि बलवती हो जाएगी तो तुम योगाभ्यास नहीं कर सकते।

मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें क्या उच्चारण करने चला हूँ? मैं तुम्हें मानवीय दर्शन में ले जाना चाहता हूँ, वह भी संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। देखो,। (2) देवदत्त उसे कहते हैं जब क्रोध नहीं होता, जितना भी नाग प्राण शान्त रहता है, विष नहीं होता उतना ही देवताओं के मार्ग को गति करता रहता है। देवताओं को प्राप्त होता रहता है। इसीलिए उसे देवदत्त कहते हैं। देवदत्ताः विरेह वृत देवाः (3) धनंजय उसे कहते हैं जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड की आभा में रमण करने आई जितना भी पृथ्वी का गर्भ है, जितना भी अन्तरिक्ष का गर्भ है प्रत्येक लोक लोकांतरों का जो गर्भ है उसको जान लेता है, (3) धनंजय प्राण के द्वारा क्योंकि यह देवता ही ऐसा है जो सर्वत्र गर्भों की वार्त्ता को जान लेता है।

मुनिवरों! देखो,! (4) कर्म विरही व्रताः। वह त्यागमय बन जाता है, पृथ्वी के आवेशों को त्याग देता है। यह दस प्राणों का कार्यवाहक जब वह अर्पित कर देता है प्राणों में प्राणतत्व की महत्ता उत्पन्न हो जाती है। तो ज्ञान के माध्यम ने दस प्राणों को कार्य का वाहन प्रारम्भ कर दिया। जब कार्यवाहन प्रारम्भ हो गया तो प्रारम्भ हो जाने के पश्चात दस प्राण बन गए। प्राण की सीमा नहीं हो सकती। मन सीमा बद्ध हो गया। जब मनीराम ने इन्हें कार्य प्रदान कर दिया तो दस इन्द्रियों का निर्माण हो गया। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। यह भी मौन रहकर के इसका बाह्य जगत बन गया। नेत्रों का विषम है रूप, श्रोत्रों का विषम है शब्द, घ्राण का विषम है सुगन्ध को लेना, वाक् का विषय है अपृत्तम विरेह वाकाः शब्दाः। वह शब्द है औरत्वचा इन्द्रिय का विषय स्पर्श है। भुज का विषय देवता है। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय का विषय बाह्य जगत् बन गया। जब बाह्य जगत बन गया तो इनमें कामना की उत्पत्ति आ गई।

इन्हीं इन्द्रियों का जब बाह्य जगत बन गया तो बाह्य जगत में दोषारोपण आ गया (1)

काम (2) क्रोध (3) मद (4) लोभ और (5) मोह की उत्पत्ति हो गई। जब काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आ गया तो इस मानव शरीर में देवासुर संग्राम होने लगा। इस संसार में भी देवासुर संग्राम होता रहता है। मानवीय शरीर में भी देवासुर संग्राम होता रहता है। जब अति कामना बलवती हो जाती है उसका नाम ऋषि मुनियों ने तृष्णा कहा है। अब तृष्णा की उत्पत्ति हो जाती है कि मेरे प्रति (लिए) यह भी कार्य हो जाए, यह भी हो जाए तो जब यह तृष्णा उत्पन्न हो जाती है। तो उससे अभिमान और मृत्यु दोनों उत्पन्न हो जाते हैं।

अभिमान क्या है? मान किसे कहते हैं? आज किसी पिता के चार पुत्र हैं और अपने बालकों को आज्ञा देता है और आज्ञा के अनुसार कार्य हो गया तो उसके गर्भ में, उसके पिछले विभाग में मान विद्यमान है और यदि आज्ञा के अनुसार कार्य नहीं हुआ तो उसमें अपमान विद्यमान है। तो ऋषि मुनियों ने यह कहा है कि हे मानव! यदि तुम साधना में जाना चाहते हो, योग में जाना चाहते हो, तो मान और अपमान दोनों को त्यागने का प्रयास करो। मान अपमान दोनों को त्यागना होगा। दोनों को त्यागने वाला इस संसार में महान बना करता है।

अब यह जितना भी क्रोध आता है, कामना उत्पन्न होकर के यह मान अपमान का कुटुम्ब बन जाता है। एक विशाल कुटुम्ब बन गया। तो ऋषि मुनियों ने जब यह विचारा कि यह तो बलवती हो गई अब क्या करें क्योंकि मोक्ष के लिए आए थे और इस संसार में हम क्या करने लगे, कैसा अमूल्य यह हमारा जगत बन गया, अब ऋषि मुनि इसको समेटने का कार्य करते हैं। संसार को जान लेते हैं कि संसार में क्या रहस्य है? क्या इसकी गतियाँ हैं? क्या विधियाँ हैं? जब गति को दृष्टिपात करने लगते हैं तो ऋषिजन कहते हैं। भाई! शान्त मुद्रा में विराजमान हो जाओ। इस संसार को दृष्टिपात कर लिया, यह संसार स्वार्थमय है, कामना मय है, क्रोधमय है, यह अभिमान युक्त कहलाता है, मान अपमान का यह संसार है। इस संसार में मान होता है तो प्रसन्नता होती है अपमान होता है तो मृत्यु हो जाती है। यह तो मृत्यु और जीवन का क्षेत्र है तो पुनरुक्ति मरणम् पुनरुक्ति जीवन, (पुनरपि ज ननं पुनरपि मरणम्य) में हम क्यों रहें। ऐसा जिससे मोक्ष

को प्राप्त हो जाए, जहाँ से हम आए थे उसकी मार्ग को प्राप्त करने का प्रयास करता है। योगी कहता है कि हे मानव! अब तू साधना में परणित हो जा, इस संसार को समेट ले। सबसे प्रथम काम पर विजयी बनता है, कामना को त्याग देता है, अपने को संयमी बनाता है कि तृष्णा नहीं होनी चाहिए। जब वह तृष्णा को त्यागता है और त्यागने के पश्चात् मानव की इन्द्रियों में संयम होने लगता है। इन्द्रियों का विषय भी जान लिया है, संसार को दृष्टिपात करके इन्द्रियों का जो विषय है नव द्वार हैं, नव देवता हैं, उन देवताओं के समीप जा करके मानो यह मन और प्राण की क्रिया कहलाती है।

मुनिवरों! मैंने बहुत पूर्वकाल में कहा है कि बिंदु होता है और उस शून्य बिंदु में से दो धाराओं का जन्म होता है, एक का नाम मन है और एक का नाम प्राण कहलाया गया है। ज्ञान का साधन मन है और क्रियाओं का माध्यम प्राण कहलाता है। मन और प्राण दोनों का ही यह मानवीय जगत है यह वृक्ष है, यह जो ब्रह्माण्ड है यह मन और प्राण का ही एक अमूल्य वृक्ष उत्पन्न हुआ तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है। बाह्य जगत में भी तुम मन और प्राण को दृष्टिपात करोगे। वेद का ऋषि कहता है कि आत्मा जो बिंदु है उस बिंदु में ज्ञान और प्रयत्न दो धाराओं का जन्म होता है परन्तु बाह्य जगत् में विश्वभान मन और विश्व प्राण का जन्म होता है मानो दो धाराएँ हैं उन धाराओं से बाह्य जगत में संसार रूपी वृक्ष दृष्टिपात आता है। आंतरिक जगत में यह मानवीय वृक्ष दृष्टिपात आने लगता है। यह जो वृक्ष है इसको जानना है और जान करके सबसे प्रथम तृष्णा के ऊपर ऋषि मुनि अपना संयम करते हैं, तृष्णा को संयम करके उसके ऊपर ज्ञान द्वारा विचार विनिमय करते हैं। मान अपमान स्वतः चले जाते हैं। तृष्णा के पश्चात वह दशों इंद्रियों के विषयों के ऊपर चिन्तन करते रहते हैं। जब उनका ज्ञान व्यापक बनकर के उनको आंतरिक जगत में समेट लेते हैं जो बाह्य जगत् में दृष्टिपात आता था, इन्द्रियों को समेट करके वह आंतरिक जगत दृष्टिपात आने लगता है।

मेरे पुत्रो! देखो, इन्द्रियों को इन दस प्राणों में समेट लेते हैं यह जो दस प्राण हैं इनमें इंद्रियों का विषय निहित हो जाता है मानो प्राण के गर्भ में परणित हो जाता है मन उस समय निष्क्रिय बन जाता है। मन को निष्क्रिय बनाना ही बेटा! योग कहलाया

जाता है। आज कोई भी मानव योगी बनना चाहता है तो प्राण को लेकर के मन को निष्क्रिय बना दो, वह ऊँचा और देवता बन जाता है। मनसतम ब्रह्म लोकाः। वह ज्ञान से कार्य नहीं होता, ज्ञान तो इंद्रियों में समाहित हो गया। ज्ञान को प्राण के माध्यम से ही मानो प्राण में रत्त कर दिया जाता है, वह जो बिंदु है, वह इनके साथ साथ रमण कर रहा है। प्राणों की संज्ञा समाप्त होने पर केवल ज्ञान रह जाता है, ज्ञान और प्रयत्न आत्मा के बिंदु हैं, आत्मा की धारा गुण से गुणी कदापि प्रथक नहीं होता। एक ही बिंदु से दोनों का जन्म है इसी आत्म तत्त्व को जानने वालों में दोनों बिंदु निहित रहते हैं। इसलिए दोनों बिंदु मोक्ष में भी आत्मा के दोनों पूरक कहलाए जाते हैं।

आज मैं तुम्हें मानवीय दर्शकों की चर्चा कराने जा रहा था। विचार विनिमय क्या कि कोई भी मानव आज मानवीय दर्शनों में जाना चाहता है तो मानव दर्शन क्या हैं? मानव दर्शन हैं कि संसार रूप को बेटा! इस मानव वृक्ष रूप को जाना जाए। यह एक बिंदु से जैसे वट का वृक्ष होता है उस वृक्ष के वृक्ष में मानो पृथ्वी में ओत प्रोत होते ही उसमें प्राणतत्त्व उद्बुद्ध होने लगता है, एक अंकुर में से एक विशाल वृक्ष बन जाता है। इसी प्रकार यह मन और प्राण का एक विशाल जगत दृष्टिपात आता है, लोक लोकांतरों का दृष्टिपात आता है। नाग, देवदत्त, धनंजय, कूर्म, कृकल इन प्राणों को जानने वाला प्राणी अपने मानव शरीर को आकुंचन कर लेता है, व्यापक से व्यापक बन सकता है, इन्हीं प्राणों को अपने शरीर के किसी एक विभाग में ला सकता है इन प्राणों को। जहाँ प्राण और मन दोनों का सन्निधान हो जाएगा समन्वय हो जाएगा वहीं मानव में गुरुता और ऊर्ध्व बन जाता है।

तुम्हें स्मरण होगा कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि रावण के राज्य में जब भगवान राम ने अंगद से यह कहा था कि जाओ तुम दूत बनकर के रावण के द्वार पर जाओ। जब उन्होंने जाकर के रावण को नाना व्याख्याएँ दीं, राष्ट्रीय विचारधारा प्रकट की तो उस समय उन्होंने कहा कि रावण तुम अपने बलिष्ठ प्राणियों पर इतना अभिमान करते हो तो मेरा जो यह पद है इसको तुम दूसरे आँगन में स्थित कर दो। मैं माता सीता को त्याग करके चला जाऊँगा। जब अंगद ने यह कहा तो वहाँ जितने बलिष्ठ

सेनापति थे और बलिष्ठ थे परन्तु अंगद ने सर्वत्र मन और प्राण की क्रिया की और प्राण की क्रिया करके पद में सर्वत्र प्राण को स्थित कर दिया। उस प्राण को स्थित करने पर जब कोई भी बलवान ऐसा नहीं था जो पग को दूरी कर सके। अंतिम रावण का समय आया तो उन्होंने अपने पग को दूरी कर लिया और यह कहा कि तुम राम के चरणों कोस्पर्श करो, मेरे चरणों को स्पर्श करने में कोई लाभ नहीं है। विचार विनिमय क्या कि प्राणों की क्रियाओं को जानने वाला मानव महान बलिष्ठ होता है। पिता भीष्म इन क्रियाओं को जानता था। जब प्राणायाम करके संग्राम करता था तो जब बाण आते थे तो स्पर्श कर शरीर से दूरी चले जाते थे क्योंकि प्राण में ऐसी महत्ता है। इस प्राण के द्वारा ही वैज्ञानिक अपने यान में प्राण क्रिया को स्थिर करकै, मन विश्वभान क्रिया को स्थिर करके एक यान का निर्माण करके लोक लोकांतरों में गति करते हैं मानो रमण कर जाते हैं।

मुनिवरों! मैं प्राण की विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ, विचार विनिमय केवल क्या कि मन और प्राण की उत्पत्ति हुई जो धाराएँ हैं वे एक बिंदु से मानी हैं और वह जो बिंदु है उस बिंदु को जानने के पश्चात संसार में कुछ शेष नहीं रह पाता। यह है आज का हमारा वाक्य। अब मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ विचार विनिमय केवल यह देने के लिए आया हूँ, संक्षिप्त परिचय देने के लिए आया कि हम परम पिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम स्वतः देवता बनें और देवता बन करके इस संसार सागरसे पार हो जाने का प्रयास करें और पार होने का यदि कोई प्रयास करना चाहता है तो यह आज मैंने मानवीय दर्शन की चर्चाएँ की हैं, मानवीय दर्शन को जाने बिना कोई भी मानव इस संसार से पार नहीं हो सकता। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम मानव दर्शन को जानने का प्रयास करें। मानवता के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करें, जिससे हमारी मानवता पवित्र बन जाए। हम मानव बन करके आत्मा के मार्ग को गति करने वाले बनें। यह है परमपिता परमात्मा की प्रतिभा। आज जो परमात्मा के मार्ग को जानना चाहता है तो उसकी जो प्रतिभा है, उसकी जो रचना है प्राण तत्त्व, ज्ञानतत्व सब रचनाओं को जानना

मानव का कर्त्तव्य है। ऐसा करने से महान मानव बन जाता है। इन वाङ्क्यों को जान करके क्रिया में लाने से मानव महान मानव बन जाता है और महामानव परमात्मा को एक एक कण में दृष्टिपात करता है और कण कण में जहाँ परमात्मा वहाँ प्रकाश है और परमात्मा के राष्ट्र में रात्री नहीं होती। जहाँ परमात्मा के राष्ट्र में रात्री नहीं होती वहाँ प्रकाश ही प्रकाश रे हता है और जहाँ प्रकाश रहता है वहाँ मृत्यु कदापि नहीं होती। यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा। स्थान महर्षि दयानंद स्मारक, करणावास, समय प्रातः 8 बजे।

३ 24 10 1976 पुष्प 31 मर्यादा पुरूषोतम राम

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज जिन वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। हमारे यहाँ परम्परा से कुछ आत्मा को शोधन करने के लिए, विचारों को पवित्र बनाने के लिए, अपने मन की एक साधना की जाती है। उस साधना का नाम परश्चरण कहते हैं मानो उस साधना को अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान उसे कहा जाता है जो संकल्प बद्ध हो करके किया जाता है और उसमें चिन्तन प्रारम्भ रहता है। प्रत्येक मानव अपने कार्यों में व्रती रहता है, व्रती रहने का अभिप्राय यह है जिसको हम अनुष्ठान कहते हैं। वह अनुष्ठान एक व्रती का प्रतीक माना गया है, उस अनुष्ठान में गायात्राणी छन्दों की गोद में जाना जो भी मानव का इष्ट देव है। परम पिता परमात्मा की आभा में रमण करने का नाम अनुष्ठान कहा जाता है।

मुझे वह काल स्मरण है जहाँ वर्षों तक अनुष्ठान चलते रहते थे। क्योंकि अनुष्ठान से मानव का हृदय, अंतरात्मा पवित्र होती है, उसे देवी सम्पदा आती है, मानव में धैर्य की शक्ति आती है। इसी प्रकार मानव अपनी आभा में अनुष्ठान करता रहा है। परम्परा से अनुष्ठान की परम्परा है। देखो,! भगवान राम ने बारह वर्ष तक अनुष्ठान किया। बारह वर्ष का अनुष्ठान करने के पश्चात् देखो, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघन उनके सखा हनुमान चारों प्राणी भ्रमण करते हुए वे नदी के तट पर आकर के राम के समीप आ पहुँचे। राम ने उनका यथोचित्त स्वागत किया और विद्यमान हो गए। भरत कहते हैं कि हे प्रभु!

। अब यह आपका अनुष्ठान भी समाप्त हो गया है। मेरी इच्छा यह है कि अब कोई दिवस ऐसा नियुक्त किया जाए जिस दिवस में आपका राज्याभिषेक हो जाए और राष्ट्र की परम्परा सुचारू रूप से प्रारम्भ हो और कोई न कोई निर्वाचन की नियमावली बना करके राष्ट्र को एक नवीन जीवन देना चाहिए।

मेरे प्यारे! भगवान राम कहते हैं कि हे भरत! तुम्हें यह प्रतीत है कि दर्शनाकार क्या कहते हैं? दर्शनाकार यह कहते हैं कि संसार में राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं होती। राष्ट्र की आवश्यकता उस काल में होती है जिस काल में पापाचार प्राणी, अकर्त्तव्यवादी प्राणियों की विशेषता हो जाती है। उस काल में राजा का निर्वाचन होता है, राजसभा होती हैं, वह सभा नित्य नियमावली को धारण करती हैं और उस नियमावली का अध्यादेश प्रारम्भिक होता हुआ प्रजा को एक अनुशासन में लाने के लिए, बिखरी हुई समाज को मानव को योगाभ्यास की जैसी आवश्यकता होती है। इन्द्रियों का विषय जब बिखर जाता है तो उस समय अनुशासन की आवश्यकता उस काल में होती है जब प्रजा कर्त्तव्य से विरहिणी हो जाती है। जब प्रजा में कर्त्तव्यवाद होता है। प्रजा अनुशासन में होती है तो उस काल में राजा हो अथवा न हो उसका महत्त्व नहीं होता। इसीलिए मेरा विचार तो यह है कि आज तुम राष्ट्र को इसी प्रकार सुचारू रूप से गति करना चाहिए। परन्तु भरत और शत्रुघ्न कहते हैं कि भगवान अब हमारा राष्ट्र बहुत समय हो गया है, आप चौदह वर्ष तक बन में रहे उसके पश्चात् आज यह बारह वर्ष छह माह बाद वह पर्व आ गया है, हमारी इच्छा है कि इस समय शरद ऋतु है, कृष्णपक्ष आ गया है, कृष्णपक्ष भी समाप्त हो रहा है अब शुक्ल पक्ष प्रारम्भ है, दीपावली के पश्चात शुक्ल पक्ष आ जाता है, प्रकाश आ जाता है तो हे प्रभु! आप राष्ट्रीयता को अपनाइए। भगवान राम ने भरत के इन वाक्यों को पान करके अपने अनुष्ठान को पूर्ण करते हुए परश्यरण को पूर्ण करते हुए, उसको समापन करके वह अपनी अयोध्या को गमन करते हैं।

दीपावली को दो दिवस रह गए थे दिवस वह राज्याभिषेक होना था। उस समय भरत ने यह कहा था कि प्रभु कृष्ण पक्ष है और शुक्ल पक्ष में दीपावली आने वाली है। आपका

राज्याभिषेक होगा। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया। एक सभा एकत्रित की जिसमें नाना ऋषिवर और सर्व भूमण्डल के राजा, आज्ञा के अनुसार एक सूचना के अनुसार आना प्रारम्भ हो गए। अपने अपने वैनिक अप्रेत यन्त्रों के द्वारा अयोध्या में आ पहुँचे। पातालपुरी के मकरध्वज आ पहुँचे और लंका में विभीषण और भी उनके साथी थे। और नाना राजा जहाँ भी घोष की आभा रमण करती थी वहाँ से राजा और ऋषि मुन अयोध्या में आने लगे। अयोध्या में एक भव्यसभा हुई, और वह दीपावली का दिवस आया। सब राजा महाराजा एकत्रित हो रहे है। एकत्रित होकर के वहाँ दार्शनिकों का एक समूह भिन्न है, दार्शनिकों ने कहा कि याग होना चाहिए। उस समय राम ने एक सूक्ष्म सा याग किया। याग करने के पश्चात् गायत्री छन्दों का पठन पाठन करने के पश्चात उन्होंने कहा कि अब अपना अपना विचार प्रकट होना चाहिए। क्योंकि मुझे राष्ट्र का जो याग है वह मुझे प्रदान किया जा रहा है। वास्तव में मैं इस योग्य नहीं हूँ। जो मैं अपनी राष्ट्रीयता को अपनाने का प्रयास करूँ। मेरे में इतनी सत्ता कहाँ है? यह तो राष्ट्र प्रजा के आनंद प्रजा के वैभव की सुरक्षा के लिए होता है।

राम ने जब यह वाक्य कहा तो सब ऋषि मुनि आश्चर्य चकित हो गए। उन्होंने कहा कि हे राम! तुम्हें राष्ट्र का अधिकार क्यों नहीं है। उन्होंने कहा कि वास्तव में राष्ट्र के अधिकारी तो प्रभु! ही होते हैं। क्योंकि वह इतने त्याग और तपस्या में रहते हैं। वे ही सर्वत्र ब्रह्माण्ड के नियन्ता हैं, अथवा निर्माण करते हैं, उसका संचालन कर रहे हैं। परन्तु उसके पश्चात भी उसमें लिप्त नहीं होते। वास्तव में सर्वत्र राष्ट्रों का स्वामी तो परम पिता परमात्मा होता है। मुझे भी यह प्रजा का दायित्व दिया जा रहा है। प्रजा को एक कर्त्तव्य में लाने के लिए मुझे कार्य भार दिया जा रहा है। मैं इसको स्वीकार तो कर लँगा। परन्तु मैं इसके योग्य नहीं हूँ। इतना उच्चारण करके वह मौन हो गए।

मुनिवरों! देखो,! मौन हो जाने के पश्चात सभा में वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुणाधति विद्यमान थीं। महर्षि अत्रि और माता अनुसुइया विराजमान थीं। नाना राजा महाराजा एकत्रित थे। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की अध्यक्षता में वह राज सभा एकत्रित हुई। सब ही राज्य महाराजा एक ही आभा में थे, एक ही पंक्ति में थे। वशिष्ठ

मुनि महाराज ने सबसे प्रथम यह कहा कि यदि किसी को विचार व्यक्त करना है तो कर सकता है। यह यज्ञशाला भी है और राष्ट्रीय वेदी भी है। परन्तु अपने अपने विचार व्यक्त कर सकता है। उस समय लंकापति विभीषण उपस्थित हुआ और कहा कि प्रभु मैं कुछ वाक्य प्रकट करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि बहुत प्रिय तुम्हारा जो वाक्य है वह सर्वोपरि है।

विभीषण जी कहते हैं कि आज हम इस अयोध्या में आ पधारे हैं। प्रथम समय लंका से आज हमारा गमन हुआ है। लंका में ही जन्म भी लिया, हमने अपनी लंका में भी प्रवेश किया। परन्तु मैं राम का प्रिय व्रती रहा हूँ। मेरी इच्छा यह है कि अयोध्या का राष्ट्र अपना करके राम संसार के लिए गौरव बनेंगे। क्योंकि संसार उनके आदेश के अनुसार अपनी राष्ट्रीय पद्धति का निर्माण करेंगे। कोई भी राजा हो, वह किसी भी काल में राम के वचनों की अवहेलना नहीं करेंगे। मेरा तो यह संकल्प बन गया है कि मैं अपने जीवन में राम के वाक्यों की अवहेलना नहीं करूँगा। क्योंकि मैं एक राष्ट्रीयता को चाहता हूँ। मेरे विधाता के सम्मुख रावण को महर्षि कुकुट मुनि महाराज ने महात्मा भृंगु जी ने और महात्मा पुलस्त्य ने तीनों ने एक स्वर में एक वाक्य कहा था कि रावण! तुम लंका को अपनाने जा रहे हो, यह लंका बड़ी विदुषी रही है। क्योंकि इसका जो राष्ट्र है वह महान रहा है इसमें जो भी राज्य आया उसने अपने चरित्र की सुगन्धि दे करके और प्रजा को एक नवीन दर्शन दिया है। इसी प्रकार हमारी भी इच्छा है कि आप लंका को अपना रहे हो, कुबेर से उसको विजय कर लिया है। इच्छा यह है कि तुम अपनी लंका को चरित्र और मानवता से दूसरी सुरक्षा करना। विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होने देना है और एक चरित्र की शाला का निर्माण होना है। क्योंकि राजा के राष्ट्र में चार प्रकार की नियमावली होती हैं। एक नियमावली वह होती है जो राष्ट्रीयता को हितकर है। एक विवेकी पुरुष की सभा होती है ब्राह्मण समाज की एक सभा होती है, उस सभा में विवेकी पुरुष रहते हैं, बुद्धिमान रहते हैं संस्कृति का प्रसारण करने के लिए, समाज को शिक्षित बनाने के लिए, एक नियमावली तो यह होती है। द्वितीय नियमावली राजा के राष्ट्र में राष्ट्रीय कोष होता है जो अपने राष्ट्र की सुरक्षा के लिए

होता है और तृतीय जो कोष होता है वह बाह्य और आन्तरिक राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए, मानो कर्त्तव्य में लाने के लिए होता है और चतुर्थ जो हमारे यहाँ राष्ट्रीय कोष होता है वह ऐसा है मानो वह एकत्रित किया जाता है। नित्य प्रति राष्ट्र में शिक्षालय में कार्य में लाया जाता है। राष्ट्र के ये चार नियम होते हैं। विभीषण कहते हैं कि मेरे महापिता ने क्या नाना आचार्यों ने रावण को यही शिक्षा दी। महात्मा भृगु ने क्या पुलस्त्य ने क्या और भी नाना ऋषियों ने इस प्रकार की शिक्षा दी। परन्तु देखो, उन वाक्यों को न मानते हुए आज वह समय है जो राजा रावण ने संसार को विजय किया था, उसमें प्राणी बड़े दुखी हो रहे थे और दुखित होने का कारण यही था कि चरित्र तो था नहीं। अभिमान विशेष आ गयाथा, क्रोध की मात्रा आ गई थी। क्रोध शील को समाप्त कर देता है। कामना समाज के प्राण को हर लेती है। राष्ट्रीयता उसीकाल में नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जब उनेंने यह वाक्य कहा तो वह वाक्य आज तक मुझे स्मरण आ रहा है। मैं इसी लिए आज्ञानुसार आज लंकासे आ पहुँचा हूँ। मेरी इच्छा यही है कि राम जैसा महापुरुष यदि राष्ट्र का नायक बनेगा तो प्रत्येक राष्ट्रों को एक नवीन प्रकाश प्राप्त होगा और नवीन प्रकाश को ले करके राष्ट्र की, समाज की पद्धति ऊँची बनेगी। उन्होंने यह भी कहा था कि मैं सबसे प्रथम राम के वाक्यों का आदर करूँगा सत्कार करूँगा और मैं इनके वाक्यों को अपने जीवन में लाने का प्रयास करूँगा। क्योंकि अपने जीवन में इन वाक्यों को लाना, उस आभा को लाना हमें राष्ट्र के गौरव को ऊँचा बनाना है। यह कह करके विभीषण मौन हो गए।

इतने में हनुमान के पुत्र मकरध्वज ने कहा कि प्रभु मैं भी कुछ वाक्य प्रकट कर सकता हूँ। महर्षि वशिष्ठ बोले कि जो तुम्हारी इच्छा हो प्रकट करो। उस समय मकरध्वज जी कहते हैं कि आज मेरा बड़ा सौभाग्य है, आज मैं अपने पितरों में गति कर रहा हूँ, राम भी मेरे पितर ही हैं और लक्ष्मण भी पिता और मेरे पिता तो पिता हैं ही, और ऋषि मुनि तो महा पितर होते हैं। आज यह मेरा कैसा सौभाग्य है मैं कैसी गोष्ठी में विराजमान हूँ, जहाँ मुझे पितरां के दर्शन हो रहे हैं। मैं इसलिए उपस्थित हुआ हूँ कि मेरी जो इच्छा है, मेरी जो कामना है वह केवल एक ही कामना है, कि हम अपने जीवन में

एक आभा को लाना चाहते हैं, पवित्रता को लाना चाहते हैं, उस पवित्रता के लिए प्रत्येक प्राणी अपने अपने कार्य में रत्त हो रहा है।

तो मेरे प्यारे! । हमें यह विचारना है कि हम अपने जीवन में एक आभा की पद्धति को अपनाना चाहते हैं। परन्तु राष्ट्रपिता का क्या सम्बन्ध है? राम से हमें नव जीवन प्राप्त होगा, त्याग और तपस्या का जीवन हमें सहकारिता से प्राप्त होता रहा है, उन्हीं की देन है। आज मैं इतने बड़े राष्ट्र के स्वामी का भार मुझे प्रदान किया है आज मैं उसको अपनाने के लिए तत्पर हूँ मानो मैं त्याग और तपस्या को अपनाना चाहता हूँ। मेरी यह उत्सुकता बन गई है कि मैं अपने जीवन में राम द्वारा अयोध्या के राष्ट्र की जो भी नियमावली निर्मित होगी मैं उसकी अवहेलना नहीं करूँगा। यह उन्होंने वाक्य कहा था इसी वाक्य के आधार पर मकरध्वज कहते हैं कि यह मुझे मेरे पिता की देन है। मानो मैं तपस्वी बन सकता हूँ। मेरे पिता महान तपस्वी रहे हैं। सूर्य विज्ञान के ज्ञाता रहे हैं। सूर्य विद्या को निगलने वाले रहे हैं। इसीलिए आज मेरा यह बड़ा सौभाग्य है। इस सौभाग्य शाला में मेरा ध्येय तो यह है कि उनके यहाँ धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए। इस प्रकार की राम राज्य की स्थापना होनी चाहिए। राम है तो उसको राम राज्य से कहा जाएगा। जहाँ विष्णु राज्य की स्थापना होती है आज मैं राम राज्य की स्थापना चाहता हूँ। इतना उच्चारण करके वह भी मौन हो गए।

इसके पश्चात महाराजा शिव जो निमन्त्रण के अनुसार हिमालय की कन्दराओं से आ पहुँचे थे, ने सभापति से कहा कि महाराज! मैं भी कोई वाक्य उच्चारण कर सकता हूँ। उन्होंने कहा कि बहुत प्रिय भगवन! । हमारी तो यह इच्छा है कि आप जैसे महापुरुषों के वाक्य हों। महाराज शिव कहते हैं कि आज हमारा बड़ा सौभाग्य है, आज हम इस अयोध्या में विद्यमान हैं जिस अयोध्या का निर्माण भगवान मनु ने किया था। भगवान मनु का जीवन संसार में सर्वोपरि राष्ट्रीय रहा था। उन्होंने राष्ट्र पद्धति का निर्माण किया और राष्ट्र की पद्धति का निर्माण करने के पश्चात् उन्होंने महत्ता की एक आभा को ओत प्रोत किया है, उस अयोध्या का निर्माण किया जो नवद्वारा अष्टचक्रा नगरी कहलाई जाती है, यह अयोध्या है। जिसमें राम विद्यमान हैं, आज हमारा सौभाग्यय है। मुझे वह

काल स्मरण है जिस काल में लंका को विजय करने के लिए एक मेरी ही सम्मति नहीं थी, महर्षि भारद्वाज की भी सम्मति थी कि लंका को विजय किया जाए और लंका में आर्यत्व का प्रसार होना चाहिए।

आर्यत्व किसे कहते हैं? आर्यत्व उसे कहते हैं, जहाँ मानव अपने नियम, धर्म और मानवता को अपनाता है और सत्यता को अपनाता हुआ अपने राष्ट्र की पद्धति को ऊँचा बनाता है। जब समुद्र के तट पर जब मुझे इन्होंने निमन्त्रण दिया, जयंत मुझे निमन्त्रण देने जा पहुँचे, और जैसे ही राम का नामोचरण किया तो मैं अपनी स्थली को त्याग करके पार्वती को साथ ले करके समुद्र के तट पर आ गया। समुद्र के तट पर आकर इन्होंने कहा था कि महाराज! मुझे क्या करना चाहिए। क्योंकि राम परम्परा से ही नीतिज्ञ हैं। मानो यह त्याग और तपस्या में रमण करने वाले हैं। यह ये भी उच्चारण कर सकते थे कि मेरी सहायता करो। परन्तु कदापि नहीं। वह मेरा पूजन करने के पश्चात पूजन का अभिप्राय क्याथा कि मुझे उचित्त आसन दिया और आसन देकर के नाना औषधियों को एकत्रित करके चन्दन आदि का खरल करके जब मुझे शिष्टाचार के साथ आसन दिया तो चरणों में ओत प्रोत हो करके यह कहा कि आप अधिराज हैं अब ऐसे काल में मैं क्या करूँ? मेरी ऐसी इच्छा है मैंने ऐसा संकल्प किया है कि आर्यत्व का प्रसार होना चाहिए, सत्य सनातन होना चाहिए। उस समय मैंने हर्ष ध्वनि करते हुए कहा कि हे राम! तुम्हारी इच्छा यह है कि मैं संग्राम करूँ, इसमें मेरी सम्मति है। जितना भी मेरा द्रव्य कोष है वह मैं तुम्हें प्रदान करूँगा। प्रायः मैं रावण का सखा हूँ, रावण ने मेरे यहाँ अस्त्रों शस्त्रों की विद्या भी पाई है! वह मेरा शिष्य भी कहलाता है परन्तु शिष्य इसलिए होता है कि वह चरित्र की स्थापना करने वाला हो। मानवता को लाने वाला हो, परन्तु वह मानवता नहीं लासकता, सत्यता का प्रसार नहीं कर सकता तो मैं उस प्राणी के साथ रहने वाला जो त्याग और तपस्या में रत्त रहने वाला हो, अपने गृह को गृह नहीं स्वीकार करता वह कैवल त्याग में रहता है। महापुरुषों की सेवा करता रहता है और दूरिता को नष्ट करने की भावना होती है इसलिए मैं राम तुम्हारे समीप हूँ। मेरा जितना भी कोष है अस्त्रो शस्त्रों का यह मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। जब

मैंने यह प्रदान कर दिया तो राम ने हर्ष ध्वनि की। मानो देखो, उसने पूजन किया और पूजन का अभिप्राय यही था कि मुझे मग्न (प्रसन्न) करना था। संसार के जितने भी राष्ट्र लंका से दूरी हो रहे थे उन सर्व राष्ट्रों को अपनाने का प्रयास किया। क्यों किया? क्योंकि राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए त्याग और तपस्या में संसार के राष्ट्र के जीवन को व्यतीत करने के लिए राष्ट्र की पद्धतियों का निर्माण होता है। मानवता ही महत्ता लाती है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि राम जिस भावना से तुमने लंगा को विजय किया है और विजय करके उनके विधाता को प्रदान कर दिया है, वहाँ के प्राणियों को वहाँ का राष्ट्र दे दिया, यह कितना भव्य पाद है, विजय करके तुम इस पर अनुशासन भी कर सकते थे, अधिराज भी बन सकते थे। परन्तु तुम्हारा जो हृदय है वह त्याग और तपस्या में इतना दक्ष था कि मैं आज आर्यतव स्थापना करना चाहता हूँ परन्तु वह स्थापना तुम्हारी संसार में हो गई है अब तुम अयोध्या को अपनाओ। अयोध्या की नियमावली का जो निर्माण होगा उसे प्रत्येक राष्ट्र अपनाने के लिए तत्पर है।

जब महाराजा शिव ने यह कहा शिव कहते हैं कि हे राम! देखो, अयोध्यापुरी एक ऐसी पुरी है जिस अयोध्यापुरी में आने के पश्चात् हमारा हृदय, हमारी मानवता का ऐसा प्रतीक दृष्टिपात होता है इसको ऊँचा बनाना है। यह वाक्य कह करके कि तुम राष्ट्र को अपनाओ और वशिष्ठ जैसे ब्रह्मवेत्ता तुम्हारे राष्ट्र में संरक्षण करने वाले हैं ऐसे महापुरुषों की सेवा में तुम नियुक्त रहो, राष्ट्र का पालन करो यही हमारी इच्छा है। यह वाक्य उच्चारण करके महाराजा शिव मौन हो गए।

इतने में मृद्गुल ऋषि और महर्षि विश्वामित्र उपस्थित थे। महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि मैं ब्रह्मवेत्ता महर्षि वशिष्ठ से प्रार्थना कर रहा हूँ कि मैं भी दो शब्दों की विवेचना करना चाहता हूँ। वशिष्ठ कहते हैं कि हे विश्वामित्र! जो वाक्य तुम उच्चारण करना चाहते हो करो। महर्षि विश्वामित्र कहते हैं कि हे राम! हे उपस्थित महापुरुषो! वास्तव में इतने योग्य हैं नहीं जो तुम्हारी सभा में कोई वाक्य उच्चारण करूँ परन्तु मेरा एक विचार है कि मैंने सदैव अपने राष्ट्र को त्याग करके मैंने ब्रह्मा गुरु आदियों को प्रदान किया है। मैंने नाना गायत्राणी छन्दों के नाना अनुष्ठान कि हैं और अनुष्ठान करने के पश्चात मेरा

मानवत्व ऊँचा रहा है। मेरी इच्छा यह है कि राम ऐसी शक्ति हैं वह महानता हैं कि हमको राष्ट्रों को त्याग करके तपस्वी बने हैं। राम एक ऐसा है जो राष्ट्र का पालन भी कर सकता है और तपस्वी भी बन सकता है क्योंकि मैं इनके हृदय को जानता हूँ। कि कितने गुण हैं। कितने समय यह अपनी निद्रा से जागृत हो जाते हैं। क्रिया कर्म इनका कैसा प्रारम्भ होता है, सदाचार की भावना इनके मनोनीत हृदयों में सदैव ओत प्रोत रहती हैं। विश्वामित्र कहते हैं कि हे राम! अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम जिस लक्ष्य को तुम बाल्यकाल में प्रकट किया करते थे, तुम्हें प्रतीत है जब मैंने तुमको धनुर्याग पूर्ण कराया था। उस समय तुमने क्या कहा था? तुमने यह कहा था कि गुरुदेव! यदि मैं राजा बनँगा तो मैं इन शत्रुओं को समप्त करूँगा। जो धर्म के मर्म को नहीं जानते। उन्हें शिक्षा दूँगा और जो शिक्षा में पारायण नहीं होंगे ऐसे निपात्रों की। ऐसी राष्ट्र की परम्परा बनाई जाएगी। हे राम! आज वह समय आ गया है। आज यह परम्परा आ गई है कि आज तुम्हारा राष्ट्र ऊँचा होना चाहिए, जिससे ब्राह्मणों की पताका रहनी चाहिए। त्याग और तपस्या में मानव का जीवन रहता हुआ, ब्रह्म को जानने वाले पुरुष होने चाहिए। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में ब्रह्मवेत्ता पुरुष होते हैं, दार्शनिक होते हैं, विचारक होते हैं। उतना राष्ट्र में अन्धकार नहीं होता, उतना राष्ट्र में प्रकाश होता है और जब राजा के राष्ट्र में से धार्मिक प्राणी चले जाते हैं, धैर्य के मर्म को जानने वाले प्राणी चले जाते हैं उस समय राजा की कोई पद्धति नहीं होती। समाज में अन्धकार आ जाता है। नाना प्रकार की रूढ़ियाँ आ जाती हैं। इसलिए हे राजन! ऊँचे ऊँचे ब्राह्मण होने चाहिए, वेद के मर्म को जानने वाले होने चाहिए जिससे राष्ट्र में रूढ़ि न बन जाए। जब राजा के राष्ट्र में रूढ़ि बन जाती है तो राजा ऊँचा शासक नहीं होता। राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं होनी चाहिए। धर्म का पूजन होना चाहिए। क्योंकि धर्म के लिए राष्ट्र होता है। क्योंकि राष्ट्र का जो निर्माण होता है, निर्वाचन होता है वह धर्म और मानवता और समाज को ऊँचा बनाने के लिए होता है यदि राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता की स्थापना नहीं दे सके तो ऐसा राजा नहीं होता वह धर्म के मर्म को नहीं जानता। धर्म के मर्म को जानने वाला राजा चाहिए। जिसके साथ में एक महान पद्धति हो और ऊँची

पद्धति हो, वेद का प्रसार हो, ज्ञान का प्रकाश होना चाहिए, ज्ञान का प्रकाश होगातो नाना रूढ़ियाँ नहीं रहेंगी, जितनी रूढ़ियाँ नहीं रहेंगी उतना समाज ऊँचा बनेगा। राजा का राष्ट्र पवित्र बनेगा। यह वाक्य ऋषि विश्वामित्र ने कहा। मैंने अपने जीवन में राष्ट्र को त्याग दिया, कई काल में अनुष्ठान किए। आज मैं ब्रह्म ऋषि बन गया हूँ और मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि तुम्हारे राष्ट्र में एक विवेकी परम्परा होनी चाहिए, विवेकी पुरुष होने चाहिए, जितने भी विवेकी पुरुष होंगे उतना राष्ट्र भव्य बनता चला जाएगा। यह उच्चारण करके वे मौन हो गए।

इसके पश्चात नाना राजाओं ने अपना उपदेश दिया महर्षि वशिष्ठ ने उपसंहार किया, और महर्षि वशिष्ठ बोले कि जो राजा महाराजाओं ने, ऋषि मुनियों ने जो आभा प्रकट की है मानो यहाँ विज्ञान की चर्चाएँ की हैं। अर्थात् विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए इसके पूर्व महर्षि भारद्वाज ने यह कहा था कि हे राम! मैं विज्ञान का बहुत विशेषज्ञ हूँ। तुम्हारे राष्ट्र में जो विज्ञान है मेरी तो इच्छा कैवल यही है कि तुम्हारे राष्ट्र में विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए। विज्ञान के दुरूपयोग होने से राष्ट्र का प्राण चला जाता है। राष्ट्र की तपस्या चली जाती है। वे विवेकी पुरुष नहीं होते, ब्रह्मवेत्ता पुरुष नहीं होते, यह धर्म नाना रूढ़ियों में परणित हो करके भिन्न भिन्न प्रकार की रक्त भरी क्रान्ति आने का संदेह बना रहता है, और अकर्त्तव्य का पालन करने वाले अधिकार चाहते हैं तो कर्त्तव्यवादी प्राणी पालन करने वाले अधिकार चाहते हैं तो कर्त्तव्यवादी प्राणी नहीं रहते, मेरी आकांक्षा यही है कि यह जो अयोध्या है यह परम्परा से दृष्य रही है, यहाँ आदर्श रहा है, अपनी राष्ट्रीयता में विशेष रुचिच रही है इसीलिए हमारी इच्छा यही है कि तुम्हारी जो राष्ट्रीय परम्परा है वह महान और ऊँची बननी चाहिए और विज्ञान का दुरूपयोग न हो और रूढ़ियों का विनाश होना चाहिए। वशिष्ठ मुनि की अध्यक्षता में ये वाक्य उच्चारण करके भारद्वाज मौन हो गए।

अब वशिष्ठ जी उपस्थित होकर कहते हैं हे ब्रह्मवेत्ता! हिरण्यम् देवाः हिरण्यम् पृथ्वी वृधाः देवम् ब्रह्म लोकाः अप्याम् लोकाः। उन्होंने कहा हे भगवन्! आप अपने वाक्यों से अमृत का पान कराइए। उससे पूर्व अरुणागति बोली कि प्रभु! मैं भी तो कुछ उच्चारण करना

चाहती हूँ।

माता अरून्धती को भी आज्ञा दी गई। अरुणागति कहती है कि हे राम! मेरी इच्छा तो यह है कि राष्ट्र में किसी भी प्रकार की निराशा नहीं होनी चाहिए। रावण के राज्य को तुम विजय करके आए हो, वहाँ तुमने यही दृष्टिपात किया होगा कि वहाँ सतियों के सतित्व को हनन किया जाता था परन्तु अयोध्या जो राष्ट्र है यह ऐसा राष्ट्र है कि यहाँ सतियों के सतीत्व की सदैव सुरक्षा रही है और सुरक्षा लाने वाले रहे हैं, मेरी इच्छा है कि तुम्हारे राष्ट्र में याग होने चाहिए और यागों में मेरी पुत्रियों के चरित्र की चर्चा होनी चाहिए क्योंकि चरित्रों की सुरक्षा होना बहुत अनिवार्य है। जिस राजा के राष्ट्र में पुत्रियों का श्रृङ्गार हनन होने लगता है वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अग्नि का काण्ड बन सकता है। इसीलिए मेरी इच्छा यही है कि तुम्हारे राष्ट्र में देवियों का पूजन होना चाहिए। देवियों की सुरक्षा होनी चाहिए। जिससे मानवता का प्रसार हो। और महत्ता की उपलब्धि होती चली जाए। जिससे तुम्हारा जीवन और मेरी पुत्रियों का जीवन ऊँचा बने, जिस राजा के राष्ट्र में पुत्रियाँ अपने सतीत्व को समाप्त करके आप अपने उदर की पूर्ति करती हैं ऐसा राष्ट्र कदापि भी प्रिय नहीं होता। हे राम! राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियाँ अपने श्रृङ्गार को हनन करने वाले मानव हों ऐसा राष्ट्र कोई प्रिय नहीं होता, ऐसे मानव राजा के राष्ट्र में नहीं रहने चाहिए। तह वाक्य माता अरुणागति प्रकट कर रही थीं। माता अरुणागति ने राम को यह शिक्षा दी। राम ने इन वाक्यों को श्रवण किया और श्रवण करके माता अरुणागति के चरणों को स्पर्श किया। चरणों को स्पर्श करने के पश्चात वे मौन हो गईं। मौन होने के पश्चात महर्षि वशिष्ठ उपस्थित हुए।

वशिष्ठ ने यह कहा कि हे राम! आज तुम्हारा राज्याभिषेक होने वाला है। अब तुम राज्याभिषेक के लिए तत्पर हो। मुझे तो कैवल इन वाक्यों का उपसंहार करना है। मुनिवरों! देखो,। उनका राज्याभिषेक किया गया। राजा महाराजाओं ने राम से कहा उन्हें वह स्थली प्राप्त हो गई। राज स्थली प्राप्त हो जाने के पश्चात महर्षि वशिष्ठ मुनि कहते हैं कि हे राजाओ! हे ऋषियो! राम का राज्याभिषेक हुआ। राम आज अपनी

स्थली पर विद्यमान हैं, जितने तुमने वाक्य कहे हैं, वह सब सारगर्भित हैं और वाक्यों के ऊपर इस अयोध्या में पालन किया जाएगा और पालन करने के पश्चात् राम को भी यह सदैव ध्यान रहे कि राजा को वैश्य के वैभव को नहीं अपनाना चाहिए। जब राजा वैश्य की परम्परा को अपना लेता है, वैश्यपन राजा में आ जाता है तो राष्ट्र में महान स्वार्थ आ जाता है और स्वार्स्थ के आ जाने से स्वार्थ ही संसार में मृत्यु है। इसीलिए आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है कि हम प्रत्येक मानवता में अपने जीवन को ऊँचा बनाने के लिए सदैव तत्पर रहे तो यह वाक्य महर्षि वशिष्ठ ने नतमस्तिष्क होकर राम को कहा। सभा में उनका राज्याभिषेक हो गया।

नतमस्तिष्क होकर राम ने कहा हे महापुरुषो! हे राजाओ! आज तुमने यह इतने बड़े राष्ट्र का भार मेरे भुजों में ओत प्रोत करदिया है। आज तुम्हारे विचारों से मेरा अन्तरात्मा गदगद् हो रहा है। मेरा हृदय तो यही चाहता है कि न्यायालयों में न्याय होना चाहिए। कर्त्तव्य का पालन होना चाहिए, कर्त्तव्य की पद्धति को अपनाना यह हमारा कर्त्तव्य है, और यहाँ एक समय विवेक सभा होनी चाहिए, निर्वाचन समय समय पर करते हैं।

देखो, उन्होंने अपने राष्ट्र में नाना प्रकार की आभाओं को प्रकट करके राम ने यह कहा कि मैं सब राजाओं का ऋषि मुनियों का सेवक बन करके रहँगा। उसके पश्चात् सभा का विसर्जन हो गया। राज सभा को अपनाकर के सब ऋषि मुनियों ने अपने अपने आसन को प्रस्थान किया।

आज के इन वाक्यों के उच्चारण करने का परिणाम क्या कि हमारे यहाँ कोई भी मानव किसी भी वस्तु को अपनाना चाहता है तो उसमें नम्रता, त्याग और तपस्या की प्रतिभा होनी चाहिए। यदि त्याग और तपस्या की प्रतिभा नहीं है तो वह राष्ट्र राष्ट्र नहीं रहता, वह समाज समाज नहीं रहता, वह मानवता मानवता नहीं रहती। आज का वाक् अब समापन होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय कि राजा के राष्ट्र में ज्ञान, विज्ञान और विवेक होना चाहिए और धर्म की पद्धति होनी चाहिए। धर्म और धन दोनों को विचार करके अपने राज सभा में अपने नियमों का पालन कराना चाहिए। यह है बेटा! आज का वाक्। अब समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा।

आज का यह वाक्य समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। निवास स्थान श्री हीरानंद जी खट्टर, 21/129, लाजपत नगर, समय रात्रि 8.30 बजे।

४ 29 11 1976 पुष्प 31 स्थावर, उद्भिज, अण्डज और जरायुज सृष्टि

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारेसमक्ष पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रां का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्य रूपों में धारण करने वाला वह इस संसार का नियन्ता कहलाता है। अथवा निर्माण करने वाला भी वही कहलाता है। तो आओ! आज हम उस महान देव की प्रतिभा अथवा उसकी महिमा का वर्णन करते चले जाएँ। उसका जो ज्ञान और विज्ञान है वह इतना नितांत और महान माना गया है कि मुनिवरों! उसको दृष्टिपात करने वाले गम्भीरता से जो अध्ययन करते हैं उन्हें वास्तव में आश्चर्य चकित बना देता है। मानव को कोई मार्ग भी प्राप्त नहीं होता। तो आओ! आज हम उस महान देव की प्रतिभा अथवा उसकी महिमा का गुणगान गाते चले जाएँ। वह हमारे जीवन का सदैव साथी बना हुआ है हमारे जीवन के अंग संग रहने वाला है। हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान अथवा उसकी महत्ता का वर्णन करते चले जाएँ।
प्रातः कालीन बेटा! सूर्य का प्रकाश आता है, संसार को तपाता रहता है। प्रत्येक प्राणी मुनिवरों! सूर्य से प्रकाश को प्राप्त करता है। नाना प्रकार की किरणों को अपने में धारण करता हुआ तेजोमय को प्राप्त होता रहता है। आज हम तेजोमय की उपासना करते चले जाएँ जो तेज मेरे प्यारे! सूर्य से आ रहा है। वही तेज पृथ्वी के गर्भ स्थल में प्रवेश करता हुआ इस संसार, इस प्रकृति चक्र को गतिशील बना रहा है। और भी नाना प्रकार के लोक लोकांतरों को गतिशील बनाने वाला है। तो वह जो प्यारा प्रभु है, वह कैसा अनुपम है? नाना प्रकार की वनस्पतियों में पाणत्व के देने वाला है। तो हम उस

अपने प्यारे प्रभु की प्रतिभा अथवा मनुष्यता की प्रतिभा का वर्णन करते चले जाएँ। माता के गर्भ स्थल में हम जैसे प्यारे पुत्रों! का निर्माण होता है। परन्तु वह निर्माणवेत्ता विश्वकर्मा ने इस मानव के शरीर में बेटा! चित्त नाम की भूमि का निर्माण किया और वह उदान, प्राण और आत्मा का संकलन करते हुए उस मेरे प्यारे! प्रभु ने इस मनस्थल की रचना की है। आज हम उस महान देवतव, जो हमारे जीवन का स्वामी कहलाया जाता है। जिसकी संरक्षणता में यह ब्रह्माण्ड है यह महान और विचित्र माना गया है। हे प्रभु! मानव तेरी उपासना कर रहे हैं और तू हमारा उपास्य देव है। प्रातःकालीन ब्रह्मयज्ञ कर रहे हैं। ब्रह्मयाग का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म की प्रतिभा का वर्णन करना। नाना प्रकार के लोक लोकांतर तेरे गर्भस्थल में हैं। एक मण्डल दूसरे मण्डल की परिक्रमा कर रहा है। एक दूसरा लोक एक दूसरे को आभायित कर रहा है। मेरे पुत्रो! देखो, उस मेरे प्यारे! प्रभु का कितना सुन्दर प्रातःकालीन याग को हम दृष्टिपात कर रहे हैं। कैसा वह याज्ञिक है?

सृष्टि के प्रारम्भ में मेरे प्रभु ने बेटा! चार प्रकार की सृष्टि का सर्जन किया। सबसे प्रथम स्थावर सृष्टि आती है और द्वितीय काल में अण्डज सृष्टि का निर्माण होता है और तृतीय काल में उदिभज सृष्टि का वर्णन होता है। उसके पश्चात जंगम सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। यह चार प्रकार की सृष्टि मानी जाती हैं। स्थावर सृष्टि कितनी विचित्र है? बेटा! कितने प्रकार माने जाते हैं जो स्थिर रहने वाली सृष्टि है मानो जैसे वृक्ष हैं, वज्र हैं, पर्वतों की माला है। बेटा! सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु ने स्थावर सृष्टि का निर्माण किया जो स्थावर रहने वाले हैं। वनस्पतियों में सबसे प्रथम पीपल के वृक्ष में नाना प्रकार के गुणों का गुण गान होता रहता है। वेद के आचार्य जब भी कोई उपमा प्रदान करते हैं तो पीपल के वृक्ष की संसार में कल्पना करते रहते हैं। ऐसा कहते हैं कि यह जो ब्रह्माण्ड है यह पीपल के वृक्ष के सदृश माना जाता है। मानो जैसे तने पृथ्वी की आभा में रमण करते हैं, नदियों के रूप में रमण करते हैं मानो उसके जो पत्ते हैं, वह वैदिक वेद की एक एक ऋचा का गुणगान गाते हैं। ऐसा हमारे आचार्य बेटा! परम्परा से इसका निर्वाचन करते रहते हैं अथवा इसकी कल्पना करते रहते हैं। द्वितीय काल में बेटा! मेरे प्यारे!

प्रभु ने आक को जन्म दिया। मानो उसे सूर्य कृतिभा वेद कैतु भी कहते हैं। परन्तु उसको शुद्ध रूपों में आक (अर्क) कहा जाता है। वह जो आख है उसमें एक सौ गुणों का वर्णन बेटा! महर्षि भास्काचार्य ने किया है। एक सौ गुणों का वर्णन बेटा! अश्विनी कुमारों ने किया है जो वैद्यराज रहे हैं महात्मा भुंजु के पुत्र और महात्मा दधीचि ने बेटा! इसके ऊपर बहुत अध्ययन किया है।

उसके पश्चात बट वृक्ष का जन्म हुआ। वह जो बट वृक्ष है उसका अंकुर बहुत सूक्ष्म है। परन्तु इस वृक्ष का जो विस्तार है वह कितना विशाल है? उसको मापा नहीं जाता। ऐसा मुनिवरों! कहा जाता है कि बट वृक्ष के नीचे विद्यमान हो करके महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज तपस्या किया करते थे। उन्हीं की समिधा ले करके वह अग्न्याधान करते थे। अग्नि होत्र करने को बेटा! उसको देव पूजा कहा जाता है। वेदेव पूजा भी करते थे। महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज के काल में एक बार बट वृक्ष के नीचे जब वह विद्यमान थे तो एक समय जल प्लावन आया और भयंकर जल प्लावन आया तो मुनिवरों! वह बट वृक्ष पर विद्यमान हो गए। ऐसा कहा जाता है कि जल प्लावन ने इस पृथ्वी को अपने नीचे दबा लिया था। क्योंकि हिरण नाम मेरे प्यारे! जल को कहा जाता है। यह जो जल है इसने पृथ्वी को अपने में धारण कर लिया और धारण करके मार्कण्डेय ऋषि महाराज उस बट वृक्ष के नीचे विद्यमान हो गए तो उसके ऊर्ध्व तने पर अपना आसन लगाया। आसन लगाकर ही उपासना करते रहे। मेरे पुत्रों! मैं इस वाक्य को तुम्हें इसलिए प्रकट कर रहा हूँ कि मार्कण्डेय ऋषि महाराज के समय में भी एक जल प्लावन आया था। जल प्लावन समुद्रों से आता है। मानो पृथ्वी के प्राणी समापन को प्राप्त हो जाते हैं। कोई भी उन्हें आहार प्राप्त नहीं हुआ। तो मेरे प्यारे! कहा जाता है कि तन्दुल उन्हें कई प्राप्त हुए। उन तन्दुलों को ले करके उन्होंने उसी बट वृक्ष के ऊपर मुनिवरों! एक पक्षी, एक मानो देखो,! चो प्राणियों में विराजमान होने वाला पुत्र है। मानो स्वांग है, स्वांगिनी भी उसी में थी। उसके दुग्ध को ले करके उन तन्दुलों को उस अग्नि वृतः दोनों का समन्वय करके बेटा! उन्होंने अपने प्राणों की रक्षा की। मानो प्राणों की रक्षा करने वाला उससे यह प्रतीत हुआ कि अभाव में मानव अपने प्राणों की रक्षा चाहता है।

मेरे प्यारे! देखो, प्राणों की रक्षा उसी काल में होती है जब किसी वस्तु का अभाव होता है। मानव प्रिय अप्रिय को दृष्टिपात नहीं करता। प्रिय अप्रिय अनुभव करता है उस काल में जब कि वह अभ्यागतम् ब्रह्मेः व्यापकम् देवः वह अपनी आभा में रमण करता रहता है। मेरे प्यारे! मैं आपातकालीन में विवेचना देने नहीं आया हूँ। आज तुम्हें मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि ये तीनों वृक्ष सृष्टि के प्रारम्भ में सबसे प्रथम उत्पन्न किए।
मुनिवरों! देखो, सृष्टि का जब प्रारम्भ हुआ, प्रादुर्भाव, हुआ तो करोड़ों वर्षों तक बेटा! यह पृथ्वी मानो शीतल होती रही। शीतलता में रमण करते मानो देखो, सूर्य का ताप भी धीमा पड़ गया और मानो पृथ्वी के मध्य की जो रेखा है उस रेखा का भी तेज कुछ सूक्ष्म बना। उसमें प्राण शक्ति आ गई। तो मुनिवरों! देखो,! प्राण शक्ति उस काल में आई जब यहाँ वनस्पतियों का जन्म हो गया था। जो वनस्पति हैं इनसे प्रजनन होता है। इसलिए वनस्पतियों का होना, वृक्षों का होना हमारे आचार्यों ने बेटा! बहुत अनिवार्य माना है। तो कहा है कि वट वृक्ष होने चाहिए, पीपल वृक्ष होने चाहिए, आक होना चाहिए। नाना प्रकार की वनस्पतियों का प्रादुर्भाव होना चाहिए जिससे बेटा! अनुसन्धान किया जाए। मानव की रुग्णता समाप्त हो।
उसके पश्चात् मेरे प्यारे! देव ने, मेरे प्रभु ने, मेरे चैतन्य देव ने बेटा! एक रूपों में बनने के लिए उन्होंने यह विचारा कि मैं अपनी प्रजा में भ्रमण करूँ। वह उस प्रजा में मानो देखो, यह सृष्टि मेरे उस देव की प्रजा है। उस प्रजा में रमण करने के लिए चैतन्यता में परिणत हो गए। मेरे प्यारे! उसके पश्चात यहाँ मानो अण्डज सृष्टि का जन्म हुआ। यह जो अण्डज सृष्टि है। यह प्रतीक है कि मानो जैसे कच्छ है वह समुद्र के आँगन में रहने वाला था। मानो वह जल और पृथ्वी के कणों में एक पिपाद होता है। उस पिपाद स्थल में एक दूरी से अण्ड सृष्टि को तपा रहा है, उसको जीवन दे रहा है। नेत्रों से जीवन देता है। मानो देखो, एक एक अण्डज अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने वाला मेरे प्यारे! । वह अपने ओज को अपने नेत्रों से दृष्टिपात कर रहा है। परन्तु देखो,! इसी प्रकार नाना अण्डज सृष्टि का जन्म हो गया। उस अण्डज सृष्टि में यह सर्पराज भी माने जाते हैं। मेरे प्यारे! ऊर्ध्व में उड़ान उड़ने वाले पक्षी भी माने जाते हैं। मुनिवरों! अण्डज सृष्टि

का विस्तार मैं आज विशेष प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। नाना प्रकार की योनियाँ हैं। उसको मानव गणाना करने में भी असमर्थ हो जाता है। क्योंकि नाना प्रकार की योनियाँ हैं और उसके नाना प्रकार माने गए हैं। जैसे सृष्टि का निर्माण अण्डाकार हुआ है उसी प्रकार अण्डज सृष्टि का जन्म हुआ।

अण्डज सृष्टि के पश्चात मेरे प्यारे! देखो, उद्भिज सृष्टि का जन्म हुआ। उद्भिज उसे कहते हैं जहाँ शीतलता और उष्णता दोनों का मिलान होता है। दोनों का समन्वय होता है। समन्वय होते ही मेरे प्यारे! देखो, मिलान होने के पश्चात योनियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। मानव के शरीर में कि मैं यह उच्चारण करने आया हूँ जब समुद्रों से जलों का उत्थान होता है तो वह शीतलता के रूप में होता है। परन्तु जब उनको ऊष्णता प्राप्त होती है। द्यु लोक की वह जो द्यु लोक में रहने वाली है जो वायु मण्डल में बिखरे हुए परमाणु हैं अथवा कण हैं उन कणों में मिलान होना जब प्रारम्भ होता है तो मेरे पुत्रो! देखो, उद्भिज सृष्टि का जन्म जब ऊष्णता और शीतलता दोनों के मिलान से कुछ योनियाँ उत्पन्न होती हैं उनको उद्भिज कहा जाता है। वह जो उद्भिज सृष्टि है वह कितनी महान है? कितनी विचित्र है? उसके सम्बन्ध में मानव अपनी कल्पना भी नहीं कर सकता। अपना विचार विनिमय भीनहीं कर सकता। तो विचार विनिमय क्या?

उसके पश्चात मेरे प्यारे! यह जंगम सृष्टि का जन्म हुआ। जंगम सृष्टि में मानव भी आता है। जंगम सृष्टि में नाना पशु आते हैं, अश्व भी आता है और उनमें देखो, नाना प्रकार के माने जाते हैं। मानो देखो, वह जंगम सृष्टि कहलाती है। जंगम सृष्टि का अभिप्राय यह जगाम प्रीति अस्तो देवोः लोकः। मानो देखो, जो जंगाम को उत्पन्न करते हैं। उनको जंगम सृष्टि जो गर्भ में रहने वाले हैं। यह गर्भाशय सृष्टि मानी जाती है। मेरे प्यारे! देखो, गर्भस्य जो सृष्टि है उसे जगम कहा जाता है। तो मेरे प्यारे! प्रभु देव ने नाना प्रकार का जंगम सृष्टि का कर्म बनाया। इन कर्म को उत्पन्न करने के पश्चात इसका क्यों ऐसा कर्म है? मानो देखो, अपने अपने अधिकार के अनुसार उसका जन्म होता रहता है। क्योंकि जैसे जैसे पृथ्वी का वातावरण, सृष्टि का वातावरण बनता गया उसी प्रकार योनियों का प्रादुर्भाव होता रहा। ऐसा वेद का आचार्य क्या मुनिवरों! ऋषि मुनियों का

ऐसा कुछ निश्चय किया हुआ है कि करोड़ों वर्षों उसे शान्त होने के लिए लगे। उसके पश्चात दस हजार वर्षों तक मुनिवरों! इस वृक्ष योनियों का, जो स्थावर योनि हैं। क्योंकि यह पृथ्वी सुयोग्य हो गई। उत्पन्न करने के लिए इसमें उपजाऊ जीवनी शक्ति आ गईं क्योंकि यह ऊष्णा थी। वह शीतलता से उसमें उपजाने की शक्ति आ गई। नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म हुआ। वृक्षों का स्थावर सृष्टि का जन्म हुआ। उसके पश्चात् जब वृक्षों की शीतलता समाप्त हुई तो अण्डज सृष्टि बनी। क्योंकि अण्डज सृष्टि भी कुछ पृथ्वी के आँगनों में उनके गर्भ में उनका जन्म होता है। तो अण्डज सृष्टि का भी जब निर्माण हो गया मानो दस हजार वर्षों तक यह सृष्टि इसी प्रकारशान्तता को प्राप्त होती रही। समुद्रों से जल का उत्थान होने लगा। क्योंकि वह जो समुद्र थे करोड़ों वर्षों तक समुद्रों का अपने आँगन में भी स्थावर होने का पर्याप्त समय नहीं हुआ। वह जो स्थावर और नाना प्रकार की जो योनियाँ समुद्रों में जन्म लेने वाली थीं। वे जन्मों को प्राप्त होती रही आँगन से मानो जलाशय में समुद्रों में नाना प्रकार की सृष्टि मानी जाती है।

उसके पश्चात उनकी आभा से, उनकी वेदना से, वह आत्म वेदना थी, उससे जलों का उत्थान होता रहा। जलों का उत्थान हो करके वह मेघ मण्डल बन करके विद्युत का उसमें प्रवाह हुआ। इंद्र देव ने मानो आगमन किया। विद्युत का प्रवाह हो गया। वकासुर का विनाश हो गया और धीमी धीमी सृष्टि प्रारम्भ होने लगी। वह जो धीमी सृष्टि हुई उससे यह उदभिज सृष्टि का जन्म हुआ। उद्भिज सृष्टि भी इस पृथ्वी मण्डल पर हजारों वर्षों तक रेंगती रही, गति करती रही।

उसके पश्चात मेरे प्यारे! जंगम सृष्टि का जन्म होता है जो किसी काल में वेद का पठन पाठन आएगा। मैं इसका वर्णन विस्तार से प्रकट करूँगा कि मानव समाज का कैसे जन्म हुआ। नाना प्रकार की मान्यताएँ इस सम्बन्ध में हैं। ऋषि मुनियों का जो मन्तव्य है वह क्या कहता है? इस वाक्य को किसी काल में प्रकट करूँगा। आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा। आज का विचार विनिमय क्या? मैं यह उच्चारण कर रहा था बेटा! कि कर्म से इस संसार का जन्म हुआ है। क्योंकि उनकी कर्मणः आभ्यादा गतियों में रमण करती रहती है। क्योंकि वह आभा में रमण करने वाला आचार्यों ने ऐसा ही कहा

है।
जब वह जल प्लावन समाप्त हो गया तो कुछ ऋषिवर मार्कण्डेय महाराज के द्वार पर पहुँचे। और महाराज से यह कहा कि हे महाराज! हे भगवन! आपने अपनी लेखनी में यह कहा है कि एक वैतरणी नदी होती है वह पार करनी होती है वह नदी क्या है? तो मेरे प्यारे! मारर्कण्डेय ऋषि कहते हैं कि ऋषियों वह जो वैतरणी नदी है उसमें रक्त काप्रवाह हो रहा है। उष्णता है वह मानव को व्याकुल कर देती है। उस नदी को पार करना होता है। ऐसा आया है। परन्तु इसका अभिप्राय यह है कि माता का जो गर्भाशय है वह वैतरणीय नदी माना जाता है क्योंकि माता के गर्भाशय में जब बालक होता है तो उसके आँगन में नाना प्रकार के स्रोत रमण करते रहते हैं। अहः देखो, वह उष्णता में भी है, तेजोमयी भी है, रक्त की धराएँ रमण कर रही हैं। तो वह वैतरणी नदी कहलाई जाती है। जहाँ तेरा नहीं जाता मानो उनको सहन किया जाता है। शनैः शनैः मानो देखो, उसको पार करना होता है। उसकी जो धाराएँ हैं वैतरणी नदी की। नौ धाराओं को पार करना बहुत अनिवार्य होता है। मानो देखो, माता के गर्भ स्थल में जो आत्मा की आभा को अपार कष्ट होता है। उसका मानव कोई वर्णन नहीं कर सकता। उसका वर्णन इसलिए नहीं कर सकता कि अपार कष्ट हैं इसलिए हमारे आचार्यों ने परम्परा से ही कहा है कि हे मानव! तू आवागमन से पार होने का प्रयत्न कर। तेरा इस संसार में पुनरपि गमन न हो। पुनरपि मरणम, पुनरपि जीवन न हो। ऐसा तू प्रयास कर। ऐसी तू आभा में मरण कर। ऐसा मुझे स्मरण है कि मार्कण्डेय ऋषि महाराज ने अपना मन्तव्य दिया।
उन्होंने कहा पित्री रथः देवतयम् विवेकः। उन्होंने यह कहा है कि पितर याग करना है। मेरे प्यारे! पितर याग का अभिप्राय क्या है जो पित्रों ने महान कार्य किए हैं, कर्म किए हैं, पुत्र को उसे ऊँचा कर्म करना चाहिए। इससे भी ऊर्ध्वा वाला कर्म करना चाहिए। क्योंकि हमारे ऋषि मुनियों की यह शैली रही है, यह विचार धारा रही है कि पिता की पुत्र से उपमा नहीं की जाती। पुत्र की पुत्र से ही उपमा दी जाती है। मानो देखो,! पुत्र की पिता से उपमा नहीं दी जाती। क्योंकि जब एक मानव कहता है कि यह तो पिता

से भी महापिता बन गया तो महापिता का जो वर्णन है, यह जो वाक्य है, यह महानन्द जी ने मुझे प्रकट कराया वह कोई प्रिय नहीं है। परन्तु ऐसा कहना चाहिए कि पिता का यह जो पुत्र है महान पुत्र बन गया। पुत्र का अभिप्राय यह है कि पिता से जो ऊर्ध्व कर्म करता है। वह ही पुत्र कहलाता है। क्योंकि देखा! वह पिता बन गया है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने यह माना है कि जब विद्यालय से ब्रह्मचारी आता है, तो माता पिता उस ब्रह्मचारी का पूजन करते हैं। पूजन का अभिप्राय यह है कि उसका यथोचित्त स्वागत करते हैं। उस स्वागत का अभिप्राय क्या? कि वह पिता से ऊर्ध्व गति का होकर आया है। इसलिए आचार्यों ने कहा है कि पिता से पिता की उपमा न दे करके पिता से पुत्र की उपमा देना। हमारी ऋषि मुनियों की शैली रही है उच्चारण करने की। क्योंकि इसीलिए आचार्यों ने यह कहा है कि ब्रह्मचारी महान होता है। वह देवता होता है। क्योंकि ब्रह्मचारी जब विद्यालय से आता है, तो उस समय वह देववृत को प्राप्त होता है। देवताओं की श्रेणी में होता है। और पितर जो होता है वह पित्रों की श्रेणी में होता है तो उसके लिए देवता समान होता है। तो इसीलिए मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? मैं बहुत सी वार्त्ता प्रकट करता। आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा।

विचार विनिमय केवल यह कि हमारे यहाँ ऊँची ऊँची श्रेणियाँ विचार विनिमय करने की रही हैं। उनको वास्तव में विचित्र ही रहना चाहिए। क्योंकि हमारे यहाँ देवताओं का स्थान विचित्र माना गया है। देवता कौन है? जो अपने जीवन की गति को ऊर्ध्व बनाते हैं। ब्रह्मचार्य को देवताओं के लोक में ले जाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, एक पितर यागी होते हैं एक देव यागी होते हैं। देवयागी वह होते हैं जो पिता से ऊर्ध्व गति को प्राप्त होते रहते हैं और पितर वह होते हैं जो पितर याग करके साधारणता में विराजमान रहते हैं।

आओ मेरे प्यारे! तो वेद का ऋषि क्या कहता है आज का? आचार्य क्या कहता है? हे मानव! तू मेरे उस देव की जिसने इस विद्या को निर्मित्त किया है। नाना प्रकार की विद्याएँ, नाना प्रकार का निर्माण मेरे प्यारे! प्रभु ने किया है। नाना प्रकार की सृष्टि का सर्जन करने वाला वह वेद है। हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। उपास्य देव माना

गया है। आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार विनिमय क्या कह रहा है? आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है? वेद का ऋषि कहता पित्राणि देव ध्यानेवः अस्वतम् ब्रह्मयागः रूद्रोः। वेद का ऋषि कहता है, हे मानव! तू प्रातःकाल याग करने वाला बन। तू ब्रह्मयागी बन, ब्रह्म का चिन्तन करने वाला बन। माता गायत्री की गोद में जाने का प्रयास कर। क्योंकि वह जो माता है वह अपने में तुझे धारण करके तुझे धन्य धन्य कर देगी। हे मानव! तू प्रातःकालीन ब्रह्मयागी बन। क्योंकि ब्रह्मयागी कौन होता है? बेटा! मुझे वह काल स्मरण है। मार्कण्डेय ऋषि महाराज की वार्त्ता चल रही थी। मार्कण्डेय ऋषि महाराज प्रातःकाल ब्रह्मयाग करते थे। ब्रह्मयाग किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! ब्रह्म का चिन्तन करना है, ब्रह्म का अध्ययन करना है। वह ब्रह्म कैसा है? मानो वह चातुष पाद वाला है षोडष कलाओं वाला है, वह जो ब्रह्म है, उस ब्रह्म का चिन्तन करना मानव का एक कर्त्तव्य माना जाता है। आत्मा का चिन्तन करना, आत्मवत् बनना यह मानव का कर्त्तव्य है। आत्मा तो चैतन्य है। मानो यह याग करता है प्रातःकाल में।

मार्कण्डेय ऋषि प्रातःकालीन ब्रह्मयाग करते रहते थे। कि मेरे जो नेत्र हैं, यह नेत्र मानो किसके प्रकाश से दृष्टिपात करते हैं? नेत्रों के पिछले भाग में एक पहला पटल होता है। पटल के पिछले भाग में एक सुकैता नाम की नाड़ी होती है, उस नाड़ी का सम्बन्ध हृदय से होता है। हृदय से जो गति होती है वही चेतन मानव के नेत्रों में आती है तो हे मानव! तू उसका चिन्तन कर जिसके प्रकाश से यह नेत्र तुम्हारे प्रकाशित होते हैं। वह प्रकाशित जिससे होते हैं वह कौन है? मानो वह चैतन्य आत्मा है। वह चैतन्य प्रभु है। उसी को तुम जानो जिसका आयतन यह आत्मा बना हुआ है। मेरे प्यारे! मार्कण्डेय विचार रहा है मानव! जिसकी ध्राण मानो नाना प्रकार की सुगन्ध लेने वाली है, दुर्गन्ध को लेने वाली है। घ्राण के पिछले विभाग में एक यन्त्र है स्वादिष्ट यन्त्र जिसे कहते हैं। उसी यन्त्र के पिछले भाग में नाड़ियों का केंद्र है। उसमें प्राणों का केंद्र है। प्राणों का सम्बन्ध मानव की अन्तरात्मा हृदय से होता है। चैतन्य से होता है। मेरे प्यारे! यह घ्राण जिसकी शक्ति से घ्रणित हो रही है मन्द सुगन्ध को लेती है तू उस शक्ति को जानने

का प्रयास कर। वह चेतन है, वही आयतन है। उसी को जानने का प्रयास कर।

मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक इन्द्रिय में जो क्रिया हो रही है, मानव वाणी से उच्चारण करता है और यह वाक्य की जब रचना होती है तो कण्ठ के द्वारा होती है। रसना जब मानो देखो, तालू से सम्बद्ध होती है उसका समन्वय होता है वही समन्वय होता हुआ अभीहि व्रत देवः। वह अपनी आभा में रमण करता रहता है। वह जो समन्वय होता है मेरे प्यारे! देखो, वाक्य की रचना हो जाती है। अ का सबसे प्रथम उद्बोध होता है। क्योंकि अ की रचना सबसे प्रथम होती है। उसके पश्चात् उ की रचना होती है। उसके पश्चात् म् की रचना होती है, और तीनों ही शब्दों में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड समाहित हो रहा है। बेटा! अ में तो प्रभु! है और उ में जीवात्मा है और म् में जितना यह प्रकृति का क्षेत्र है बेटा! यह रमण कर रहा है। मैं उन शब्दों की व्याख्या करने नहीं आया हूँ। मेरे पुत्रो! देखो, इससे आगे चल करके नाना शब्दों की रचना होती है, लेख इत्यादि की रचना होती है। परन्तु जितने ये शब्द हैं इन्हीं शब्दों में छन्द विद्यमान हैं। इन्हीं शब्दों में व्याकरण विद्यमान है। इन्हीं शब्दों में चारों वेद विद्यमान हैं। नाना ऋचा इन्हीं शब्दों की गाथा गा रहा है। मैं आज तुम्हें पठन पाठन की प्रणाली में नहीं ले जाना चाहता हूँ विचार विनिमय क्या? वेद का आचार्य क्या कहता है? ऋषि क्या कह रहा है? हे मानव! तू ब्रह्मयागी बन। मार्कण्डेय कहता है यह वाणी मानो कण्ठ से इसका निर्माण होता है। शब्दों की रचना होती है। कण्ठ से निचले भाग में क्या है? जहाँ से यह तरंगें चलती हैं। वह हृदय है, हृदय में क्या है? प्राणतत्व हृदय के मध्य में जीवात्मा है मानो चेतना है। उसी चेतना को जानने का तू प्रयास कर। वही आयतन है, वही ब्रह्म है, तू ब्रह्म की उपासना कर। जिससे यह संसार चेतनित हो रहा है।

मेरे पुत्रो! इसी प्रकार प्रत्येक मानव की जो इन्द्रिय है वह उस आयतन मानो ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाश्ति हो रही है, आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हो रही है। तो हे मानव! तू प्रातःकालीन अपने आसन को त्याग करके ब्रह्मयागी बन और ब्रह्मयाग क्या है कि परमात्मा ने जो मानव शरीर की रचना की है, यह एक ब्रह्मयाग है। यहाँ इसमें ब्रह्मयाग हो रहा है उस ब्रह्मयाग में जो तरंगें उत्पन्न हो रही हैं, उन तरंगों को जानने का प्रयास

कर। यह ब्रह्मयाग कहलाता है। संसार की जो रचना हुई है, उस रचना के ऊपर चिन्तन करता हुआ चल महान कर्म करता हुआ चल तो प्रातः कालीन मार्कण्डेय ऋषि महाराज अपने जो सृष्टि के प्रारम्भ में यह संसार रूपी यज्ञ का निर्माण किया था और यह सूक्ष्म सी मानव पिण्ड की रचना की, यह भी ब्रह्माण्ड का मानो सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्ड को जानने के लिए बेटा! ऋषि मुनि परम्परा से बेटा! प्रयास करते रहे हैं। उस अनुसन्धान शैली में, अनुसन्धान की अपनी आभा है। वह पूर्णता को प्राप्त होते रहे हैं।
मार्कण्डेय ऋषि महाराज मानो आदि के ऋषि कहलाए जाते हैं, मानो वे महान ऋषि थे। वेदों का अध्ययन करने वाला पूज्यपाद ऋषियों का जो समूह उनके द्वारा आता उनके मध्य में विराजमान हो करके वे याग करते रहते थे। प्रातःकालीन याग होता रहता। याग को जानना, याग उसे कहते हैं जिसकी प्रक्रिया को मानव जान करके उमसें हुत करता है तो उसको याग कहा जाता है। आओ मेरे प्यारे! आज का यह वाक्य हमारा क्या कह रहा है? कि मैं परम पिता परमात्मा की उपासना करते हुए याग को जानने का प्रयास कर जिसके कारण से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है, इस पृथ्वी की रचना हुई है। पृथ्वी से ग्रीवा की रचना हुई है और चन्द्रमा से मानो उपस्थ की रचना हुई है। यह तो विज्ञान है बेटा! यह तो महान एक कर्म है। विशाल व्यापक वाद में भ्रमण करने वाले ये शब्द हैं। इन क्षेत्रों में मैं अपने विचार देना नहीं चाहता हूँ।
विचार विनिमय केवल यह है कि हम परमपिता की उपासना करते हुए, ब्रह्मयाग को विचारते हुए जैसा याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने कहा है। ऐसा ही मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है। ऐसा ही सोमकेतु ऋषि ने कहा है। ऐसा ही आदि ब्रह्मा ने कहा है, अंगिरा ऋषि ने कहा है। उन्होंने कहा है कि मानव अपनी अपनी गतियों में रमण करता रहा है और विशेष ऋषियों का जन्म हो करके बेटा! नाना प्रकार की विद्या का प्रादुर्भाव होता है। मानो इस वाणी को शब्दों की रचना ही नहीं माना। इसे अग्नि काण्ड भी माना है। अग्नि की प्रतिभा भी माना है। यह तो विज्ञान है। किसी काल में बेटा! मैं प्रकट करूँगा। मार्कण्डेय ऋषि महाराज इस वाणी के ऊपर अध्ययन करते रहे। वाणी को जब शुद्ध रूप से जान लिया तो ऋषिवर महान तपस्वी थे, पर्वतों की गुफाओं में विद्यमान

हो करके वह जब गान गाते थे तो उस गुफा में दीपावली का प्रकाश हो जाता था। वाणी से वह अग्नि का प्रादुर्भाव करते थे। मेरे पुत्रो! देखो, मार्कण्डेय ऋशि महाराज महान तपस्वी थे। मुझे ये विद्याएँ पूर्ण रूपेण स्मरण आती रहती हैं। मैं वेद के मन्त्र के आधार पर बेटा! इन वाक्यों को प्रकट करता रहता हूँ, वाक्य उच्चारण करता रहता हूँ। आज का विचार विनिमय क्या! कि हम परमपिता परमात्मा को अपना आश्रय दाता बना करके, मानव जीवन को जानते हुए, इस संसार चक्र को जानते हुए बेटा! इस संसार सागर से पार होना चाहिए। यवह जो संसार रूपी सागर है, नाना प्रकार की तरंगें वाला है, इन तरंगों में आने वाला जो मानव समाज है इससे पार होना हमारा कर्त्तव्य है। अब मुझे समय मिलेगा बेटा! मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् समाप्त होने जा रहा है। तो आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह, मैंने कुछ मानवीय इन्द्रियों का वर्णन किया है। आयतन का वर्णन किया है। समय मिलेगा मैं शेष चचाएँ कल प्रकट करूँगा। अब वेदों कापाठ होगा। उसके पश्चात यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

५ 23 02 1977 पुष्प 33 रूढ़ियों की विकृतता

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व से उस मनो हर वेदवाणी का प्रसारण होता चला जा रहा था, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह मेरा देव प्रतिभाशाली है। वह अनन्त है और उसकी अनन्तता बेटा! एक एक कण में निहित है। जब एक एक कण में वह व्याप्त रहता है, तो उसकी महत्ता एक एक मानवीय स्वरूप में विद्यमान है।

परन्तु आज का ऋशि वेद का ऋषि क्या कहता है? वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। अथवा गान गा रहा है, और यह कह रहा है कि परमात्मा का यह जो जगत् है यह परमात्मा का काव्य माना जाता है। क्योंकि यह उसकी रचना है। जैसे एक दूसरे शब्द की माला बन जाती है अथवा एक सूत्र में आ जाते हैं। जब एक सूत्र में आ जाते हैं, तो एक माला बन जाती है, और वह जो माला है, ऋषिजन बेटा! गान के रूप में उसका वर्णन करते हैं। इसी प्रकार जितना भी वेदमन्त्र में ज्ञान है अथवा

जितना भी यह जगत् तुम्हें दृष्टिपात आता है यह परमात्मा की रचना है। और वह जो रचना का जो मूल है, रचना की जो आभा है उस परमपिता परमात्मा के काव्य रूप में आचार्यों ने वर्णन किया है, अथवा ऋषियों ने वर्णन किया है, यह संसार सर्वत्र काव्य रूप में विद्यमान रहता है।

एक मानव वेद का मन्त्र उच्चारण कर रहा है और उसको गान रूप में गा रहा है। जब वह उसको गान रूप में गाता है तो उसके जो गान की पवित्रमयी शैली है, पवित्रमयी जो उसकी धारा है बेटा! उसको जो मानव पान करता है, वह गद् गद् हो जाता है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब बेटा! ऋषि मुनि भयंकर वनों में गान गाते थे, तो उनके गानां की स्वर ध्वानियां प्राप्त करने के लिए मृगराज उनके, चरणों को छूते थे। मेरे पुत्रो! जब ऋषि मुनि गान गाते हैं तो बेटा! सिंहराज उनके चरणों में ओत प्रोत हो जाते। तो विचार विनिमय क्या? कि परमात्मा का गान कोई गाना नहीं जानता जब गाना जान लेता है तो उसका जो काव्य है, कौन प्राणी संसार का ऐसा अभागा है जो अपने सखा अपनी उस ममतामयी माँ के गुणों का वर्णन सुनना नहीं चाहता। बेटा! वो वर्णन सुनना चाहता है। पुत्र यह कहता है कि मेरी माता की प्रसन्नता हो रही है।

जीवात्मा यह चाहता है कि मेरा जो सखा है, जिस प्रकार अग्नि यज्ञशाला में ओत प्रोत रहती है और वह नाना प्रकार के साकल्य रूप को लेकर के जब देववत् को प्राप्त होती है। कौन? अग्नि बेटा! जा काष्ठ में रहती है उसका ऊर्ध्व मुख होता है और ऊर्ध्व मुख इसलिए होता है उसका जो सखा हैं ऊर्ध्व में गति कर रहा है। वह ऊर्ध्व में रहने वाला है। जतो जीवात्मा मानो इस प्रकार का है चाहे वह किसी भी योनि में विराजमान क्यों न हो, परन्तु अपने जो सखा जो चैतन्य देव हैं उसकी प्रतिमा का गान गाने में बेटा! उसको अपने में अपनाने में उसे किंचिनमात्र समय प्राप्त नहीं होता। वह उसी को प्राप्त होता रहता है। उसी में ओत प्रोत रहता है।

इसीलिए मुनिवरों! देखो, मैं यौगियों की चर्चा कर रहा था। मैं योगियों की जो प्राणायाम करने वाले, जो नाना कोषां को जानने वाले ऋषि मुनि होते हैं। तुझे तो मेरे पूज्यपाद गुरुओं का काल स्मरण है बेटा! मुझे तो ऋषि मुनियों की जो सभाएं होती थीं बेटा!

वे स्मरण हैं। आओ आज ऐसे क्षेत्र में मैं तुम्हें ले जाना चाहता हूँ जहाँ वेदमन्त्र भी आता है और ऋषि मुनियां का समूह विद्यमान है। ऋषि मुनियों क पंक्तियां लगी हुई हैं। तो ऋषि मुनियां में बेटा! एक प्रश्न उत्पन्न हुआ वेदमन्त्र उसमें स्मरण आने लगा और वेदमन्त्र कह रहा था। सर्वजन्म ब्रही लोकः यशश्च्य बृही लोकः सर्पश्च बृही सिंह् बृहे लो व्रणः आध्याति चरण वृही बन्धना याचिका कृति लोकः। मेरे प्यारे! वेद का ऋषि यह कहता है ऋषि मुनियां की सभा में विद्यमान होकर कि वेद का मन्त्र यह कहता है जो मानव अपने मानवीय स्वरूप में रमण करता है। मानो सर्पराज उसके चरणां में ओत प्रोत हो जाते हैं। मृगराज उसके चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं, क्योंकि वह परमात्मा का अमृतपुत्र बन गया है। अमृत पुत्र जब बन जाता है तो कौन ऐसा है जो अमृत को पान करना नहीं चाहता। हे मेरे भोले पुत्रो! हे ऋषि मुनियो कौन ऐसा अभागा है जो इस अमृत को पान करना नहीं चाहता, अमृत के दर्शन करना भी चाहता है।

ऋषि मुनियों में एक प्रसंग था, प्राण का प्रसंग मेरे प्यारे! प्राणायाम करने वाला जो महापुरुष होता है वह कुम्भक और पूरक करता है। परन्तु और भी इसकी नाना प्रकार की तरंगें होती हैं। परन्तु जो वाणी के स्वरूप में रमण करता है, उनके स्वरूप में यह ओत प्रोत होता है। तो मेरे प्यारे! उसे एक मार्ग प्राप्त होता है। एक उज्ज्वल मार्ग दर्शन होता है और वह दर्शन क्या है? वह दर्शनां की पद्धतियां अहंह वह दर्शनों का जो विचार है। वह प्राणायाम है।

हमारे यहाँ पुत्रो! एक काल ऐसा था जिस काल में यह जितनी चिकित्साएं हैं वो वनस्पतियों को न लेकर के प्राणायाम के द्वारा यह चिकित्सा होती रही। मेरे पुत्रों! प्राणायाम से कैसे चिकित्सा होती है प्राणायाम से ऐसे चिकित्सा होती है मानो रेचक और कुम्भक प्राणायाम किया। सूर्य और चन्द्र प्राणायाम किया। उसी काल में मानव का रोग समाप्त होना प्रारम्भ हो जाता है। प्राणायाम करने के नाना प्रकार हैं। हम सूर्य प्राणायाम कैसे करें? चंद्र प्राणायाम कैसे करें? रेचक और कुम्भक कैसे करें? पूरक कैसे किया जाए? तो मानो प्राणायाम करने की नाना क्रियाएं होती हैं, नाना विधियां होती हैं। साधक के लिए सबसे प्रथम उन प्राणायाम को जानने की आवश्यकता है। जिस

प्राण के द्वारा मानव अपने मानवीय जीवन की चिकित्सा करता है, चिकित्सा करता हुआ उस प्राण को अग्नि के रूप में वह परणित हो जाता है।

वह काल भी मुझे स्मरण आता है। पुत्रो! जिस काल में यहाँ वैज्ञानिकजन विद्यमान होते थे। ऋषि मुनियों की भुजाओं में वेद की पोथी विद्यमान है, और उस वेद की पोथी से ही वह अपना निर्णय दे रहे हैं। वेद की पोथी से ही परमाणु विद्या को अपने में धारण कर रहे हैं। उस प्राण की विद्या को लेते उस वायुमण्डल में उसकी चिकित्सा हो रही है। मानो, वैज्ञानिक उसके चिकित्सक होते हैं।

मेरे पुत्रो! वह काल मुझे स्मरण आता रहता है जिस काल में राजा अपने यान में विद्यमान हो करके विष्णु अपने गरुड़ यान पर विद्यमान हो करके मानो विष्णु नाम का राजा सूर्य लोक में यात्रा कर रहा है। वह सूर्य लोक के प्राणियों से अपनी वार्त्ता प्रकट कर रहा है। मंगल के प्राणियों से वार्त्ता कर रहा है। वह भी एक काल स्मरण आता है। परन्तु मैं उन कालों में जाना नहीं चाहूँगा। केवल यह उच्चारण करना है कि प्रत्येक मानव को अपनी गान विद्या को विचारना है प्रत्येक मानव गान गा रहा है। परमात्मा का गान गा रहा है परमात्मा का जो गान गाने लगता है उसके हृदय में विडम्बना नहीं होती। वह गान गाता रहता है, उदात्त, अनुदात्त मानो माला आदि पाठों में गान गाता रहता है। वह वेद की पवित्र ध्वनियों में गान गाता रहता है और वह जो गायन में वह गानबेटा! गात्राणि माँ की गोद में चला जाता है। प्रातःकाल में बेटा! जब ऋषि मुनि गान गाते है। मानो एक एक शब्द की सन्धि करके गान गाते हैं तो बेटा! पक्षीगण भी मौन हो जाते हैं। मानो मृगराज, हिंसक प्राणी चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं।

मेरे पुत्रो! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल यह वाक्य प्रकट करने के लिए आया हूँ कि वेद का ऋषि कहता है मुनिवरों! देखो, एक राजा गान गा रहा है, एक ऋषि गान गा रहा है एक कर्त्तव्यशील प्राणी याग द्वारा गा रहा है। तो मुनिवरों! वह जब गान गाता है, तब राष्ट्र ऊँचा बनता है। ऋषि मुनि गाते हैं, तो गुरु शिष्य प्रणाली ऊँची बनती है, और एक मानव जो साधरण गान गाता है उससे उसकी विद्वता का प्रसार होता है, तो विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! यह गायन है। और वह

गान किसे कहते हैं? गान को जानने के लिए बहुत परम्परा से गान गा रहा है कौन? एक मानव कहता है मैं अपनी वाणी से गान गाना चाहता हूँ। क्योंकि वाणी को ऋषि मुनियां ने अग्नि माना है। वैदिक आचार्यों ने ऋषि मुनियों ने कहा कि यह वाणी क्या है? यह अग्नि है। यह कैसी अग्नि है जो वाणी रूप में रहती है। वेद का ऋषि कहता है कि यह जो अग्नि है इस वाणी के कारण राष्ट्र का राष्ट्र अग्नि का प्रहार बन जाता है। अग्नि में भस्म हो जाता है। इसी प्रकार अग्नि वेत्ताओं ने कहा है, वाणी के विशेषज्ञों ने कि यह जो वाणी है यह ऐसी विचित्र है वाणी ऐसी महान् है, मानव को देवता बना देती है, मानव को ऋषि बना देती है। यह अग्नि है जो धाराओं पर शब्द विद्यमान होकर के द्यु लोक में गति करता है।

मेरे पुत्रो! वेद के आचार्यों ने बहुत सुन्दर मन्थन किया और विचारा कि वाणी के सम्बन्ध विचार किया जाए। मेरे पुत्रो! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। कौन सा काल? जब महर्षि अत्रि मुनि महाराज, माता अनुसूइया देखो, भयंकर वनां में तप करते थे। वे क्या तप कर रहे थे? वाणी का तप कर रहे थे। वाणी से कोई वाक्य कदापि मिथ्या नहीं होना चाहिए। विद्यालय में बेटा! सात्विक वातावरण छाया हुआ है। विद्यालय में माताएं मानो ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचारिणियों को शिक्षा प्रदान कर रही हैं। तो विचार विनिमय क्या बेटा! वह गान है एक समय जो मध्य रात्रि में ऋग्वेद का अत्रि मुनि ने जो गायन गाया तो उस गान से मेघ मण्डलों से वृष्टि प्रारम्भ होने लगी। मेरे प्यारे! माता अनुसूइया ऐसी विचित्र विदुषी थी कि उसने जो गान गाया तो दीप मालिका जागरूक विचित्र गई। यह वाणी का ही तप।

वाणी से तप कैसे किया जाता है? मेरे प्यारे! यह जो अपान प्राण है, उदान और प्राण इन तीनों की सन्धि करता है जो जब सन्धि करता है तो मुनिवरों! एक शीतल एक चन्द्र एक सूर्य कहलाता है। चन्द्र में शीतलता होती है और उसमें प्रकाश होता है, तेज होता है, ऊष्णता होती है तो जब अग्नि का प्रहार प्रारम्भ होता है वाणी से उच्चारण करता है तो अपान और प्राण दोनों का मिलान करता है। और मिलान करके जब वह गान गाता है, गान गाता हुआ मेरे पुत्रो! ऐसा प्रतीत होता है जो गान गाया तो मस्तिष्क

में एक ललाहट उत्पन्न हुआ और ललाहट क्योंकि वीर्यत्व था जिससे माता के गर्भस्थल में निर्माण किया जाता है। वह वीर्यत्व मानो प्रकाशमय ललाहट में अग्नि प्रदीप्त हो गई। उस अग्नि का परिणाम यह हुआ कि नगर की दीपमालिका जागरूक हो गई। ऋषियों के आश्रमों में दीप मालिका जागरूक हो गई। तो मुनिवरों! देखो, वह उस समय ऋषि कहते हैं अनुसूइया से अग्नि वही लोकः, मानो वष्टि भी प्रारम्भ होने लगी। परिणाम क्या कि मानव गान गाता रहता है गान गाता है। तो जटा पाठ में गान गाता है और गान का स्वरूप है जो वह बड़ा विचित्र माना गया है। आज गान के सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं करूंगा। क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी भी अपनी सूक्ष्म सी चर्चाएं करेंगे।

आज का विचार केवल हमारा यह कि प्रत्येक मानव को गान गाना चाहिए और वह जो गान रूप है उसी से मानव ऊँचा बनता है और गान मानो परमात्मा के सम्बन्ध में हो प्राण सम्बन्ध में हो, विचित्रता के सम्बन्ध में, क्योंकि वह गान कहलाया गया है। इसीलिए आज मैं गानों के स्वरूप में विशेष चर्चा नहीं करूंगा। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने कुछ विचार प्रकट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज हमारे ऊपर एक अनुपम कृपाएं की हैं। इन्होंने कुछ सूक्ष्म सा अपना अमूल्य समय हमें प्रदान किया। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक ऐसे अमूल्य विषय को ले करके अपनी वार्त्ता उद्धृत की है कि जो बहुत गम्भीर और जो क्रिया से सम्बन्धित है। जो मानव के जीवन से सम्बन्धित है। जो वेद की विद्या को ऊँचा बनाने के लिए वह सहायक है। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो ऐसा निर्णय पुनः पुनः देते रहते हैं। आज हम तुम्हें उन्हीं के रूपों की कुछ चर्चाएं करना चाहते हैं। वह वास्तव में तो पूज्यपाद गुरुदेव के समीप हम यदि अपना कोई वाक्य प्रकट करते हैं तो ऐसा है जैसे मानो सूर्य में रात्रि के काल में विचरने वाला एक जुगनू अपना प्रकाश देता है। परन्तु कोई बात नहीं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बारम्बार समय देते रहते हैं, और मैं उस समय का

सदुपयोग करने का प्रयास करता हूँ। यथार्थ विद्या को देने के लिए तत्पर होता हूँ।
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे हृदय में नाना प्रकार की विडम्बना तो यह रहती है कि मैं जब विष्णु राष्ट्र, अश्वमेध और यहाँ नाना राजाओं की मनु सिद्धान्त और मनुजी के राष्ट्र निर्माण की चर्चा करूं तो मेरे लिए इतना शोभनीय नहीं है। आज जो मैं राष्ट्र की चर्चा करूं। राष्ट्र कैसा होना चाहिए? यह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बारम्बार प्रकट करते रहते हैं। विज्ञान कैसा होना चाहिए? आज का वैज्ञानिक समाज यह विचारता रहता है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराना चाहता हूँ। आज का विज्ञान, आज का वैज्ञानिक वर्तमान का वैज्ञानिक यह कहता है कि यह जो काल चल रहा है यह काल यदि इसी प्रकार चलता रहा, इसी प्रकार की विचारधाराओं वाला चलता रहा, इसी प्रकार विज्ञान का दुरूपयोग करने काचलता रहा तो एक समय वह आने वाला है मानव श्वास लेने पर भी मृत्यु को प्राप्त हो सकता है। मानो आज भौतिक वैज्ञानिक, वर्तमान का विज्ञान कहता है। जब वैज्ञानिक यह कहता है कि प्रत्येक श्वास की गति में इतना दूषित परमाणु हो जाएगा तो इस समाज का क्या बनेगा? इस राष्ट्र का क्या बनेगा?

इस सम्बन्ध में मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई वाक्य प्रकट कराए। हमारे यहाँ पुरातन के काल में एक याग होता है, नाना प्रकार की सामग्री एकत्रित होती हैं, और जब सामग्री एकत्रित होती हैं तो उसके पश्चशत् एक याग किया जाता है। याग ब्राह्मण के द्वारा किया जाता है। वह ब्राह्मण कैसा हो? जो मानो घन पाठ, जटा पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त, अनुदात्त मानो किसी भी गान से वह वंचित्त न रहे। ऐसा जब शुद्ध मन्त्र का शब्द का उच्चारण करने वाला होता है तो दूषित जो कण होते हैं, परमाणु होते हैं, वे शब्द के साथ भस्म होते हैं। यह विद्या पुरातन काल में थी। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय तो देना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि पूज्यपाद तो इस विद्या को जानते हैं। इस मधु विद्या को जानते हैं। ऋषि मुनियां की विद्या है। यह ऐसी विद्या है जो शब्द से सम्बन्धित है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव शब्द के ऊपर अपनी विवेचना कर रहे थे। शब्द के ऊपर अपना वाक्य दे रहे थे।

आज मैं यह कह रहा हूँ कि आज का मानव यदि एक दिवस में एक सहस्र यदि मिथ्या

उच्चारण नहीं करता तो मान प्रतिष्ठा में वह मानव ऊँचा नहीं माना जाता। आधुनिक समाज इस प्रकार का बन गया है। तो यह वातावरण दूषित क्यों नहीं होगा? आज के समाज गृह दूषित हैं। मानो माता के गर्भ स्थल में बालक का निर्माण हो रहा है। निर्माण होने वाला बालक भी दूषित हो रहा है। वह क्यों दूषित हो रहा है? क्योंकि माता का आचार सुन्दर नहीं रहा। पिता का विचार सुन्दर नहीं रहा एक मानव जब आहारों से दूषित हो करके जब सन्तान को जन्म दे ना चाहता है तो भविष्य में हम यह विचार सकते हैं कि यह राष्ट्र कैसे ऊँचा बन सकता है? अथवा नहीं बनेगा, यह कैसे विचारा जा सकता है? परन्तु आज की जो माता आधुनिक जगत् की जो माता है, वर्तमान की जो माता है वह जन्म नहीं देती। वह यदि जन्म देने वाली बन जाए तो माता मल्दालसा की भांति माता अनुसूया की भांति मानो माता सीता की भांति यह समाज क्यों नहीं ऊँचा बन सकता। परन्तु आज इस सम्बन्ध में मैं चर्चा नहीं दूंगा। क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा नहीं है। आज का विचार केवल हम यह देना चाहते हैं कि हम विज्ञान के युग में जाना चाहते हैं।

विज्ञान क्या कहता है? आज का विज्ञान यह कहता है वर्तमान का कि वह काल आने वाला है। वह क्यों? आज का वैज्ञानिक कहता है कि यह जो पृथ्वी है यह शक्तिहीन होती चल जा रही है। इसमें शक्तिहीनता का मूल कारण क्या बना? इसका मूल कारण यह बना, क्योंकि समय पर वृष्टि नहीं हो पाती। जब इसे सोम प्राप्त होना चाहिए। तब वह सोम प्राप्त नहीं होता। जब सोम प्राप्त नहीं होता तो नीचे से इसकी शक्ति सोम के द्वारा अपने में धारण की जा रही है। इसको दिया नहीं जाता। क्योंकि जिन साधनों से ऋषि मुनियों ने जिस विज्ञान को जाना है, याग करना है और वह जो नाना प्रकार के याग यज्ञमान करता है उन यागों के द्वारा सुगन्धि के द्वारा यह पृथ्वी के परमाणु सुगन्धित हो जाते हैं, जब ये सुगन्धित हो जाते हैं तो पृथ्वी एक महत्ता में परिणत हो जाती है। तो इसीलिए आज के विज्ञान के प्रश्नां का उत्तर देने में इसलिए आया हूँ।

आज का विज्ञान मानो अणु विद्या में परमाणु विद्या में जाना चाहता है, जा रहा है। परन्तु आज का विज्ञान जहाँ यह कहता है हम बड़े महान् उन्नतिशील हैं नाना प्रकार के

अणु, परमाणुओं का नाना प्रकार के रूपों में उसका परीक्षण, अनुसन्धान करते हैं, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुओं से यह कहा था। एक समय महर्षि विभाण्डक मुनि की सभा में एक प्रसंग आया कि परमाणुओं को विचारा जाए यह परमाणु वाद क्या है? जब वेद का मन्त्र आया तो परमाणुवाद के द्वारा जब नाना यन्त्रों की आभा उत्पन्न होने लगी। ऐसा मुझे स्मरण है। उन्होंने श्वास के द्वारा मानव के क्रोध के द्वारा और क्रोध से जो परमाणु उत्पन्न होते हैं मानव के शरीर से उन परमाणुओं को जब एकत्रित किया गया। एक सहस्र प्राणियों के क्रोध के परमाणु जब एक यन्त्र में स्थित कर लिए उसका जब मानो आक्रमण किया गया तो कहा जाता है कि बीस सहस्र प्राणियों की मृत्यु हो गई यह हमारे यहाँ क्रोधाग्नि के ऊपर विचार आता रहता है मैं क्रोध के सम्बन्ध में कोई विवेचना नहीं देना चाहता हूँ। यह तो इसलिए कि ऋषि मुनि इसका परीक्षण करते रहते हैं। ऋषि मुनि इसके ऊपर विचार विनिमय करते रहते हैं, उसके ऊपर उनका दार्शनिक विचार विनिमय होता रहा है।

आधुनिक काल का जगत् यह कहता है वर्तमान का जगत् यह कहता है कि वैज्ञानिक कहता है कि हमने नाना प्रकार के पृथ्वी के गर्भ में जो ज्वाला उत्पन्न हो रही हैं, मानो अपना प्रकाश दे रही है, पृथ्वी को गतिशील बना रही है उसमें जो नाना प्रकार की तरंगें हैं, उन तरंगों को जानने वाला मानव नाना प्रकार के जो जल के संयोग से जो पाक हैं, इस पृथ्वी की शक्ति है उसे अग्नि के माध्यम में जानकर के उन परमाणुओं को ऊर्ध्व गति में प्रदान किया जा रहा है। मुझे वह काल स्मरण है, मेरे पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा विभाण्डक आदि ऋषि मुनियों के द्वारा यन्त्रों का निर्माण होता रहा है।

एक यन्त्र का निर्माण राजा रावण की सभा में उत्पन्न हुआ था। रावण के विधाता कुम्भकरण ने एक यान का निर्माण किया था। उस यान का नाम था पुष्प विमान। और वह विमान कैसा था? देखो, वैज्ञानिक विद्यमान है। जहाँ विमान को चाहते हैं यह धीमा होना चाहिए वहाँ धीमा हो रहा है जहाँ गतिशील वहाँ गतिशील हो रहा है। जहाँ उसको नीचे जाना है वहाँ नीचा हो रहा है। ऊर्ध्व गति को जा रहा है। हे पुत्रो! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा था कि संसार को ऊँचा बनाना है तो इस प्रकार का विज्ञान होना

चाहिए। परन्तु एक यान का निर्माण महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज के द्वारा हुआ था। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज ने, हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आपका तो प्रतीत है वह यान कैसा था। देवर्षि नारद मुनि की विज्ञानशाला में उसका निर्माण हुआ था। मानो पादुका के रूप में नारद जी विद्यमान हो करके अपने यान के द्वारा वह सूर्य लोक की यात्रा करके आ रहे हैं। विष्णु लोक की यात्रा करके वह अपने आसन पर अपनी सभा में आ रहे हैं।

विचारना क्या है कि एक यान बनाया किसने? एक यान का निर्माण किया था महर्षि याज्ञवल्वय मुनि महाराज ने। याज्ञवल्वय मुनि महाराज ने जब यान का निर्माण किया तो वह संकल्प से गति कर रहा है। उसमें संकल्प मात्र है। क्योंकि परमाणुओं का भी संकल्प होता है मानव का जैसे संकल्प बद्ध हो करके जीवन चलता है इसी प्रकार एक यान का निर्माभा किया और वह यान अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। मानो देखो, संकल्प शक्ति से ही यान ऊर्ध्व को जा रहा है। वो यान चन्द्रमा को छूकर के बुद्ध मण्डल को होता हुआ शुक्र की गति को प्राप्त हो रहा है, और उसी संकल्प शक्ति के द्वारा वह पृथ्वी मण्डल पर पुनः आ रहा है। उसमें कोई मानव विद्यमान नहीं है। क्योंकि वह संकल्प शक्ति का यान बना हुआ है ऋषि ने यान का निर्माण किया है और अपनी संकल्प शक्ति उसमें प्रदान की है।

विचार विनिमय क्या? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह उच्चारण करना चाहता हूँ मेरी यह मनोनीत यह इच्छा रहती है कि आधुनिक काल में वर्तमान का जगत् रूढ़ियों से परणित हो रहा है, रूढ़ियों में आभायित हो रहा है। हमारे यहाँ राजा को चाहिए कि वह रूढ़ियां में परणित न हो। जब तक यह समाज राष्ट्रीय रूढ़ियां में विचारधारा में परणित रहेगा न तो विज्ञान पनपेगा, न मानवता पनपेगी और न अनुशासन आ सकेगा। रक्त भरी क्रान्ति का यह संसार रक्तमय बन जाएगा। परन्तु देखो, यह विचार क्या? यहाँ मुझे वह काल स्मरण है। जब मैं अपने पूज्यपाद ऋषि मुनियों के द्वारा विराजमान होता था आज से लाखों वर्षों पूर्व की वार्त्ता प्रकट रहा हूँ। प्रत्येक राष्ट्र का प्राणी आता और वह प्राणी मानवता की चर्चा करता है वह आत्मा की चर्चा कर रहा है, मानवीय दर्शन

की चर्चा कर रहा है प्रभु के गान की चर्चा कर रहा है। परन्तु देखो, वह गान गाने वाला वो दार्शनिक बन रहा है वह विचारधारा में ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो रहा है। प्राणायाम की शिक्षा को पान करने के लिए आ रहा है।

परन्तु आज का समाज, वर्तमान का जगत् कहाँ चला गया। अरे, ऋषि मुनियों की जो मानवता है वह कहाँ चली गई। जब मैं इस विचारधारा को मानवीय जगत् में दृष्टिपात करता हूँ तो मुझे दुःख होता है। कारण उसका यह है कि राष्ट रूढ़िवाद में परणित हो रहा है। अरे, रूढ़ियों को जब तक नहीं त्यागोंगे तो मानवता और विद्या नहीं आ सकेगी। मानवता के जीवन में रूढ़ि नहीं होनी चाहिए। यह रूढ़ि ही मानव का विनाश करने वाली है। रूढ़ि ही राष्ट्र को निचली स्थली में ले जाती है। यह रूढ़ि ही मेरी प्यारी माताओं के श्रृङ्गार को हनन करा देती है। अरे, यह रूढ़ि है, इसे त्यागने का प्रयास किया जाए। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करने के लिए आया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो गान की चर्चाएं कीं।

आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि गान की सुरक्षा कैसे होगी? अरे, गान को कैसे ऊँचा बनाया जा सकेगा। गान उस रूप में ऊँचा बनेगा जब यहाँ शिक्षण ऊँचा होगा, विचारधारा में आचार्यों की पद्धतियां ऊँची होंगी मानव तपश्चर होगा। आज जब तपश्चर की मैं चर्चा करता हूँ तो यह उच्चारण करता है समाज कि यह तो पुरातन की वार्त्ता हो गई है। आज मेरी प्यारी माता अपने पुत्रों! को गर्भ स्थल में मानो वह एक स्थली है, वेदी है, माया का जो गर्भाशय है, वह वेदी है, और वह कैसी वेदी है? कि उस वेदी पर माता गाना गा रही है। और बालक उसको श्रवण कर रहा है। नस नाड़ियां के द्वारा पान कर रहा है। मानो वही विचार उसके बन जाते हैं, पनप जाते हैं। उन्हीं विचारों से माता के गर्भाशय को ऊँचा बना देता है।

अरे, मानव! यह तो विचारा भी जा सकता है। राम का जीवन, माता कौशल्या गान गाती थी जब माता कौशल्या गान गा रही है वह मधु विद्या का गान गा रही है। जो गर्भाशय में भगवान् राम विद्यमान हैं। नौ लाख वर्षों से भी विशेष वषर्ज्ञ हो गए अब तक, माता कौशल्या को माता ही कहा जाता है। माता क्यों कह रहा है? पुत्र के कारण

ही तो माता कह रहा है। यदि माता कौशल्या के पुत्र नहीं होता तो कौन माता कह सकता? परन्तु माता गान नहीं गाती, तो राम कैसे जन्म लेते राम जैसी पुण्य आत्मा कैसे आती इस संसार में। उसका परिणाम यह हुआ कि उसको माता ही कहा जाता। हे मात तेरी जो स्थली है वह कितनी ऊँची है तेरी जो स्थली है वह कितनी महान् है? परन्तु देखो, उस महत्ता से दूर चले गए। कहाँ चले गए देखो, शिक्षण ऊँचा नहीं रहा। रूढ़ियां में शिक्षण चला गया अरे,। जब रूढ़ियों में शिक्षण चला जाता है तो वेद की विद्या की रक्षा कैसे हो सकती है? वेद की विद्या की रक्षा करनी है। प्रकाश को लाना है, अन्धकार को समाप्त करना है। यह अन्धकार कैसे समाप्त होगा? यह अन्धकार उस काल में समाप्त हो सकता है जब यह रूढ़ि नहीं रहेगी संसार में।

राष्ट्र के दार्शनिकों को भी यह चिन्तन लगा रहता है, राष्ट्र में जो विचार होते हैं निर्णय होते हैं मानो जो विचाराधरा होती है उसमें भी रूढ़ियां को विचार में लिया जाता है तो वह दार्शनिकता राष्ट्रीयता नहीं होती। राष्ट्रीयता से वह मानव बहुत दूर रहता है क्योंकि वह तत्पश्चर नहीं होता। इसीलिए तपश्चर की आवश्यकता है इस संसार में आज का यह हमारा विचार क्या कह रहा है? आज तो मैंने अपनी भूमिका बनाई है विचारों की। कल मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे समय प्रदान करेंगे तो मैं अपनी विचारधारा कल विशेष प्रकट करूंगा। आज तो केवल मैंने भूमिका बनाई हैं वह भूमिका क्या है? कि विज्ञान कैसे पनपता है संसार में? विज्ञान कैसे आता है? रूढ़ियां विज्ञान को कैसे समाप्त करती हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे समय देंगे तो मैं इसके ऊपर अपना कोई विचार प्रकट करूंगा। मैं इस समाज को बहुत समय से दृष्टिपात करता चला आ रहा हूँ। अपने विचार पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा देता चला जाता हूँ। अपने विचार पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा देता चला जाता हूँ। कल मैं अपनी भूमिका जो आज बनाई है, रचना जो आज मैंने की है उस रचना का, उस अंकुर का वृक्ष कल मैं उत्पन्न कर सकूँगा। आज का विचार विनिमय क्या? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह प्रकट कर रहे थे कि संसार में गान होना चाहिए। गान कौन कौन गाते हैं? यह चर्चा मैं कल कर सकूँगा। आज की विचारधारा यह है कि हम अपने जीवन को ऊँचा बनाएं। जीवन को सार्थक बनाकर के

अपनी मानवता का प्रसार कर सकें। यह आज का हमारा विचार है। कल भविष्य का क्या, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वन्दनीय बना करके कल मुझे समय अवश्य प्रदान करेंगे। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से इतना उच्चारण करके शान्ति को प्राप्त हो रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य .... धन्य हो। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्दजी ने कुछ सूक्ष्म से विचार दिए। उन विचारों में महान् तथ्य थे। रूढ़ियों की विशेषता, रूढ़ियों की चर्चाएं। मेरे प्यारे! यह अपनी वार्त्ता प्रकट करते रहते हैं। यह आज कोई नवीन वाक्य नहीं है, इनके हृदय में विडम्बना रहती है। उस विडम्बना का जो स्रोत है वह उनके हृदयों में प्रदीप्त रहता है। अब कल मेरे प्यारे! महानन्द जी अपनी भूमिका का वृत्त बना करके तुम्हारे समीप नियुक्त कर सकेंगे। आज का विचार विनिमय क्या कि हमें गान गाना चाहिए। हम गान के रूप में विचित्र अपनी भूमिका और विचारधार ाएक महत्ता में परणित कर सकें। ऐसा हमें अपने अपने जीवन को बनाना चाहिए। हम परमात्मा का गान गाते हुए अपने मानव जीवन को ऊँचा बनाएं। यह वाक्य आज का हमारा समाप्त। कल समय मिलेगा तो सूक्ष्म सी चर्चाएं करेंगे और मेरे प्यारे! महानन्द जी अपना विचार प्रकट कर सकेंगे। आज का वाक् समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पाठ होगा। अच्छा भगवन्! आज्ञा, लाक्षागृह बरनावा समय : दोपहर 3.00 बजे।

६ 24 02 1977 पुष्प 33 राष्ट्र सुधार

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रें का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रें का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परम पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परम पिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। अथवा उसी की प्रतिभा का वर्णन हमारे दार्शनिक सूत्रें में आता रहा है।

जिस भी काल में दार्शनिक पुरुषों का उड़ान उड़ने की प्रबल इच्छा होती है। तो वह

अपने विचारों को विज्ञान की तरंगों पर ओत प्रोत करता हुआ ऊर्ध्व गति को वह प्राप्त होता रहता है। आज मैं ऊर्ध्व गति की चर्चा विशेष नहीं करूंगा। आज नाना प्रकार के विचार, नाना प्रकार की धाराएं वायुमण्डल में ओत प्रोत हैं, और वायुमण्डल उन आभाओं में निहित रहता है, जिनमें नाना प्रकार के परमाणु और मानवीय धारा उसमें निहित रहती हैं। परन्तु जहाँ हम यह विचारते रहते हैं। कि हमारा जो मानवीय दर्शन है, मानवीय जो अमूल्य ज्योति हैं वो हमें एक ऐसे मार्ग के लिए प्रेरित करती रहती है जिस मार्ग में जाने के पश्चात् मानव के जीवन में एक महत्ता की ज्योति जागरूक हो जाती है, और वह महत्ता की जो ज्योति है वह एक मानवीय दर्शन कहलाता है, और वह मानवता कहलाती है।

परन्तु आज का हमारा वेद का ऋषि नाना प्रकार की वार्त्ता प्रकट कर रहा है। नाना प्रकार की विचारधारा मानवीय धाराओं में निहित होती है और उन तरंगों से ओत प्रोत होता हुआ मानव इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करता रहा है। आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल आज हम तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आए हैं कि हम अपने जीवन में एक महत्ता को धारण करते चले जाएं। ऐसा हमारा मानवीय मन्तव्य रहता है।

प्रत्येक मानव यह कहता है, हे मानव! तू गान गाने वाला बन और तू उस गान को गा जिस गान को गाने से तेरी मानवता विचित्र बनती चली जाए और दर्शनों की मीमांसा में दर्शनों की परिक्रियाओं में तेरा मानवीय दर्शन होना चाहिए परन्तु मैं दर्शनों की चर्चा नहीं करूंगा। क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने कुछ विचार व्यक्त करेंगे। इससे पूर्वकाल में बेटा! कुछ विचारों की भूमिका बनाई और उस भूमिका में जो आता है जो अंकुर रूपों में उसका वृक्ष कैसे बनता है? उन विचार धाराओं में मनुष्य कैसे ऊँचा बनता है? अब मैं अपने विचारों को बेटा! समापन कर रहा हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने विचारों को प्रकट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषिमण्डल! मेरे ऋषि समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कुछ मानवता की चर्चा करते चले जा रहे थे। वेद का जो मन्तव्य है

उस सम्बन्ध में ये अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। परन्तु आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह उच्चारण कराने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव के हृदय में, प्रत्येक मेरी पुत्री के हृदय में और मानव समाज में और जितना भी विज्ञान और दार्शनिक क्षेत्र है, उसमें नाना प्रकार की उड़ान उड़ी जा रही है और उस नाना प्रकार की उड़ान उड़ने वालों में नाना प्रकार के विचार मानव दर्शनों में, परिभाषा में मानव यह उच्चारण करता चला आया है। परम्परा से हमारा राष्ट्रीयवाद अर्थात् मानव अनुशासन में रहना चाहिए। तो एक मानव अनुशासन की चर्चा कर रहा है। राष्ट्र भी यह कहता है कि हमारा जीवन अनुशासन में रहना चाहिए जिससे हम संसार का जो एक राष्ट्रीय विधान है, संसार की राष्ट्रीय जो एक विचारधारा है उसमें हमारे राष्ट्र का जीवन ऊँचा रहे। राष्ट्र का यश होता रहे। परन्तु देखो, यह वाक्य तो यथार्थ है कि मानव को अनुशासन में रहना चाहिए। राष्ट्रवाद का अनुशासन में रहना चाहिए। परन्तु यह भी वाक्य यथार्थ है हमारे राष्ट्र, राष्ट्रीयकरण और यश उस काल में ऊँचा बनेगा। जबकि हमारा अनुशासन, हमारी मानवता पवित्र बनती रहेगी।

अब विचार विनिमय यह करना है कि यह मानव समाज कैसे ऊँचा बनता है? राष्ट्र का यह अनुशासन कैसे बना रहे और कैसे यह अनुशासन आ सकता है? इसके ऊपर मानव को विचार करना है। इसके ऊपर मानव को अपने जीवन में क्या, यहाँ शान्त हृदय से, शान्त मस्तिष्क से निष्पक्ष होकर के यह विचारना होगा प्रत्येक प्राणी को कि हमारा राष्ट्र और मानव समाज कैसे अनुशासन में रहे? यह प्रत्येक मानव को विचारना होगा। मैं इस वाक्य की पुनरुक्ति कर रहा हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण कराना चाहता रहता हूँ कि जो मानव प्रश्न करता वह दार्शनिक धाराओं में, यौगिक धाराओं में उसका निराकरण होता रहे। मैं आज भी अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा भ्रमण कर रहा था। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव आज मुझे वह सुखद समय स्मरण आ रहा है, आज मैं उस काल को स्मरण कर रहा था, जब पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा नाना ऋषियों का समाज जाता था, नाना मृगराजों का झुण्ड जाता था। परन्तु विचारधारा के साथ साथ उनकी प्रश्नों की उत्तरावलियां चला करती थीं, और तपे हुए मानवता के विचार

मानो ये प्रकट किया करते थे, और आज मैं उन वाक्यों को स्मरण कर रहा हूँ। दार्शनिक समाज यौगिक साधनाओं की चर्चा में यह कहा जाए प्रावीनता में योग का क्या साधन है? योग का कौन सा साधन है जिस साधन को ले करके हम अपने जीवन का उत्थान कर सकें। परन्तु आज मैं इस वाक्य को श्रवण करके आश्चर्य चकित हो रहा था और अपने में अनुभव कर रहा था, हे मेरे देव! यह कैसी तेरी विचित्र गति है, एक मानव वह है जो दार्शनिक क्षेत्र में और यौगिक क्षेत्र में विद्यमान हो करके सूर्य के प्रकाश की भांति मानो प्रकाशमान रहता हो यशस्वी होता रहे। परन्तु देखो, विचित्र गति में क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ? यह देव की गति है, यह ब्रह्मा की गति है। मानो उस गति के ऊपर मैं कोई अपना विचार नहीं देने आया हूँ। कि प्रत्येक पूज्यपाद गुरुदेव को यह विचार देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव अनुशासन की चर्चा कर रहा है। अनुशासन में आना चाहता है। वैश्य को कहा जाता है, अनुशासन में रहो, कृषक समाज को कहा जाता है, अनुशासन में रहो, कृषक समाज को कहा जाता है अनुशासन में रहो, कुल देवियों को, क्षत्रियों को कहा जाता है अनुशासन में रहो।

प्रत्येक मानव अनुशासन की चर्चा कर रहा है, वह चर्चा किससे कर रहा है? वह लेखनी में चर्चा कर रहा है परन्तु आत्मिक यदि विचारधारा उच्चारण करने वालों का अनुशासन, राष्ट्रीय विचारधारा वालों का यदि अनुशासन उनका बन जाए तो यह समाज है इसका अनुशासन साथ ही साथ बनता चला जाएगा। परन्तु यह मैं विचित्र जगत् को दृष्टिपात कर रहा हूँ कि यहाँ ठग मानो दूसरे से कहता है कि तुम ठगी न करो तो यह समाज कैसे ऊँचा बनेगा? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करना चाहता हूँ, निर्णय देना चाहता हूँ कि मैं यह कैसे स्वीकार करूं। एक मानव कहता है तुम अनुशासन में रहो, चरित्रवान रहो। परन्तु उसके चरित्र को हम उसके चित्रण को दृष्टिपात करते हैं तो वह उससे दूर प्राप्त होता है तो मानो वह कैसे घोषणा कर रहा है? यह कैसी विचित्र घोषणा है? इस घोषणा के लिए मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हे मानव! तू घोषणा न कर। हे राजन! तू घोषणा न कर। तू स्वयं चरित्रवान बनता चला जाए। तेरे जीवन से सुगन्धि यह समाज लेता चला जाए। परन्तु वह सुगन्धि तेरे जीवन में

उत्पन्न होती रहेगी। आज तू अनुशासन की घोषणा न कर। घोषणा से कोई समाज ऊँचा नहीं बनता। क्रिया से ऊँचा बनता है यह समाज। जो राष्ट्रीय अनुशासन है यह वैसे ऊँचा नहीं बनता। परन्तु आओ मैं परम्परा में आज तुम्हें ले जाना चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बहुत सी वार्त्ता प्रकट करते रहते थे।

परन्तु मैं नाना विचारधारा, राष्ट्रीय विचारधारा में ले जाना चाहता हूँ। जब राष्ट्र का निर्माण होता है, सबसे प्रथम तो यह दोष आ गया है इस वर्तमान के जगत् में, इस राष्ट्रीय जगत् में यह दोष आ गया है। अपठित समाज एक राजा को निर्वाचन करना चाहता है। सबसे प्रथम दोष तो यह है समाज में आज जो यह नहीं जानता कि राष्ट्र किसे कहते हैं? राष्ट्र की मीमांसा नहीं जानता। एक मानव वेद का पण्डित है एक वेद की मीमांसा कर रहा है परन्तु जब वह और एक अपठित एक ही स्थली पर आ जाते हैं। तो समाज में रक्त भरी क्रान्ति आए बिना रह नहीं सकती। क्योंकि मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने नाना राष्ट्रों का निर्वाचन किया है, नाना राष्ट्रों के ऊपर अधिपथ्य रहा है। अरे, राष्ट्र तो विवेकी पुरुषों से ऊँचा बनता है राष्ट्र तो ब्रह्मचर्य से ऊँचा बनता है परन्तु जो ब्रह्मचर्य की महत्ता को नहीं जानता उसको समाज राजा क्यों निर्वाचन कर रहा है। आज उसके निर्वाचन का क्या अधिकार है। अरे, मानव के शरीर से प्राण ही चला गया तो मानव का अस्तित्व कहाँ रह गया। राष्ट्र से चरित्र का विनाश होता चला जा रहा है। तो उसको अनुशासन में उच्चारण करने का क्या अधिकार रह गया है? परन्तु आज मैं इन विचारधाराओं में विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। वेद दर्शनों की भाषा में मानो अनुशासन की भाषा में ले जाना चाहता हूँ। जो अनुशासन का एक वाक्य कहा जाता है परम्परा से हमारे यहाँ राजाओं का निर्वाचन होता है, राष्ट्र का निर्वाचन होता है तो समाज में एक ऐसे निर्वाचन की आभाओं में रमण किया जाता है कि जैसे परमात्मा को भक्तजन विद्यमान होकर के घोषणा करते हैं। आह्वान करते हैं, ऐसे एक राजा का आह्वान होता है और वह आह्वान हो करके साथ में पण्डित, ऊँचे ब्राह्मण और विवेकी पुरुष एकत्रित हो करके मानो उस राजा का निर्वाचन कर रहे हैं। और राजा को विशिष्ट चुनौती प्रदान

कर रहे हैं, उसका निर्वाचन हो जाता है।
राजा के राष्ट्र में पांच विभाग होते हैं। सबसे प्रथम विभाग होता है विज्ञान का, द्वितीय विभाग होता है पाण्डित्य का, दर्शनों का, विज्ञानवेत्ताओं का और तृतीय विभाग होता है रक्षा करने वालों का, चतुर्थ विभाग होता है मेरे पुत्रो! जो योनिक होते हैं, धाराओं में रमण करने वाले होते हैं और मुनिवरों! पञ्चम जो भाग होता है वह विभाग ऐसा होता है। जिसमें विद्यमान हो करके मानो निरीक्षण विभाग होता है। ये विभाग होते हैं राजा के राष्ट्र में। सबसे प्रथम विभाग बुद्धिमानों का होता है। बुद्धिमान कौन होते हैं? जो पण्डित होते हैं और पण्डित की भाषा में विद्यमान हो करके वह निर्माण कर रहे हैं। वेद की भाषा में वेद के विज्ञान को लेकर के वो ज्ञान को ऊँचा बना रहे हैं। मानो तप कर रहे हैं। तपस्या कर रहे हैं, आत्मा का उत्थान हो रहा है। आत्मा के उत्थान की चर्चा कर रहे हैं योगेश्वर बन रहे हैं। प्राणायाम कर रहे हैं! साधना कर रहे हैं क्योंकि राष्ट्र का सबसे बड़ा जो अंग है वो यह यौगिक अंग कहलाता है। क्योंकि दर्शन और योग की प्रक्रिया राजा के द्वारा होनी चाहिए क्योंकि राजा यदि यौगिकवाद में नहीं जाएगा तो उसमें निष्पक्षता नहीं आएगी और जब निष्पक्षता नहीं आएगी तो राष्ट्र को वह अनुशासन में नहीं ला सकता। इसीलिए हमारे यहाँ ऐसा कहा जाता है।
मैं उस काल में जाना चाहता हूँ महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में, महाराजा ज्ञानश्रुति के राष्ट्र में जाना चाहता हूँ। मनु वंश में महाराजा ज्ञानश्रुति हुए हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो मुझे कई काल में वह वाक्य प्रकट कराया है। महाराजा ज्ञानश्रुति अपने आसन पर विद्यमान हैं। वे ब्रह्मवेत्ताओं के लिए अपने मन्त्रियों से कहते हैं जाओ! और एक ब्रह्मवेत्ता को लाओ ऐसे ब्रह्मवेत्ता कहाँ, पर्वतों में प्राप्त होते हैं। गाड़ी के नीचे 101 वर्ष तक के तपस्वी प्राप्त हो रहे हैं। वे उनके द्वारा शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। राष्ट्र की क्या, विवेक की क्या। मैं जब यह वाक्य तुम्हें उच्चारण करने लगता हूँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेवने कई काल में मुझे वर्णन कराते हुए कहा, सबसे प्रथम जो ऊँचा भाग है राष्ट्र का वह पाण्डित्य का है। मानो वह विवेकी पुरुषों का है जिससे राजा का निर्वाचन कर सकें। राष्ट्र की पद्धति ऊँची बन सके। राष्ट्र में एक मानवता आ सके। इस प्रकार का एक विभाग राजा के

राष्ट्र में होता है।

द्वितीय जो विभाग है वह विज्ञान का कहा जाता है। वैज्ञानिक होने चाहिए जिस विज्ञान की उड़ान उड़ता हुआ मानव एक पृथ्वी मण्डल से ले करके सूर्य लोक की यात्रा कर रहा है, और यह विचार रहा है कि मेरे राष्ट्र का अहित तो नहीं हो रहा है। वह परमाणुओं का वायु मण्डल में से एकत्रित करता है। परमाणुओं को एकत्रित करके ऐसे यानों का निर्माण कर रहा है, ऐसे यानों का संचालन कर रहा है जो वायुमण्डल को दूषित नहीं करने वाला। वह केवल परमाणु विद्या से गति कर रहा है। एक ऋषि ऐसा होता है जो संकल्प से गति कर रहा है। उन्हीं पण्डितों में एक वैज्ञानिक ऐसा होता है जो वाणी को और बाह्य जगत् दोनों को जान करके अग्नि का अनुसन्धान कर रहा है। अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करता हुआ वह अपनी मानवीय विचारधारा श्वासों के द्वारा अग्नि के परमाणुओं को एकत्रित करके मानो उसी से यान का निर्माण हो रहा है। इसी प्रकार के वैज्ञानिक होने चाहिए। उन वैज्ञानिकों को आचार्यों ने कहा है कि वह गो मेध, अजय मेध याग करने वाले हैं। याग कहते हैं जानने को, गो कहते हैं प्रकाश को, जो जान करके प्रकाश किया जाता है उसको गो मेध याग कहते हैं। अजय कहते हैं ऊँचा बनाने को और अजय मेध ऐसे ऐसे याज्ञिक होने चाहिए, वैज्ञानिक हों, जो मानो यहाँ से उड़ान उड़े, उड़ते हुए ध्रुव मण्डल की यात्र करते चले जाएं। ध्रुव लोक में प्रवेश हो जाएं। यह विभाग है, हमारे यहाँ वैज्ञानिकों का वैज्ञानिक होने चाहिए।

एक विभाग हमारे यहाँ वैश्य का होना चाहिए। हे राष्ट्र के वैश्य! तू ऊँचा बन। परन्तु तेरी प्रवृत्ति संग्रह की नहीं होनी चाहिए। जिस राजा के राष्ट्र में वैश्य संग्रह करने वाला बन जाता है, वह राष्ट्र भी विनाश को प्राप्त हो जाता है और वह वैश्य भी विनाश को प्राप्त हो जाता है। वैश्य का कार्य है वह अपने व्यापार को, अपनी कृषि को ऊँचे रूप से मानो उसका निर्माण करता हुआ, उसका निर्वाचन करता हुआ ऊँचे रूपों में ले जाता हुआ वह ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो जाता है और वह जो ऊर्ध्व गति वाला मानो वैश्य वर्ग है वैश्य समाज है, वह इस समाज को ऊँचा बनाता है। क्योंकि उसके द्वारा नियम है,

अनुशासन है, उसी के ऊपर राष्ट्र का कार्य रहता है।

क्षत्रणि ब्रह्मलोकः क्षत्रिय कैसे हों? वैज्ञानिकों के मध्य में एक महानता होती है जिसको क्षत्रिय कहते हैं। क्षत्रिय उसे कहते हैं राजा के राष्ट्र में कोइ भी शत्रु ऐसा न होना चाहिए जो आन्तरिक शत्रु ऐसा हो जो बाह्य जगत् में राष्ट्र की वार्त्ता को ले जाने वाला हो, विचारों को द्वितीय राष्ट्र को परणित करने वाला हो। ऐसा कोई भी क्षत्रिय नहीं होना चाहिए। उसे ज्ञान से, विचार से नष्ट्र करना चाहिए। इसी प्रकार यदि विचारों से शुद्ध न हो तो गदा का प्रहार करना चाहिए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में मुझे वर्णन करते हुए कहा था। आज मैं उस वर्णन में तो जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु केवल यह वाक्य प्रकट करने के लिए आया हूँ कि ऐसा जो समाज है, ऐसे राष्ट्र की प्रजा मानो दुःखी नहीं होती। वह सदैव सुखमय अनुभव करती है। राजा के राष्ट्र में ज्ञान होता है, विज्ञान होता है।

परन्तु देखो, वह राष्ट्र खण्डित हो जाता है जिस राजा के राष्ट्र में नाना प्रकार की रूढ़ियां होती हैं। मानो एक मानव कहता है मैं परमात्मा की साधना करना चाहता हूँ। वह साधना कर रहा है, परन्तु देखो, ऋषि मुनियों की सभा में, ऋषि मुनियों के विचारों में जा रहा है। वह पण्डित कहलाता है। वह राष्ट्रीय संस्कृति कहलाती है। वह राजा को भी ऊँचा बनाता हैं उसी में धर्म, उसी में दार्शनिकता और उसी में साधना निहित रहती है। राजा भी उसी साधना को कर रहा है। पण्डित भी उसी साधना को कर रहा है। परन्तु उसका राष्ट्रीय दृष्टिकोण ऊँचा होना चाहिए। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से यह मानो जो धर्म और दर्शन से और विज्ञान से जो धर्म स्थिति हो जाए राजा को उसका पालन करना चाहिए। राजा को उसको पनपाना चाहिए। परन्तु वह राष्ट्र किस काल तक जीवित रह सकेगा जिस काल में दार्शनिक व्यक्तियों में, दर्शनों में नाना प्रकार के भेद न हों। नाना प्रकार का भेद न तो तर्क वितर्क परम्परा से ही माना गया है। यह अरबों वर्षों से चल रहा है तर्क वितर्क। परन्तु जब तर्क नहीं रहता, दर्शन नहीं रहता। वह रूढ़ि कहलाती है। धार्मिकता किसे कहते हैं? दर्शन में ही तो धर्म है। मानव की इन्द्रियों में ही तो धर्म है। इन्द्रियों का जो धर्म है वह धर्म है और जो इन्द्रियों से बाह्य धर्म है जो

मानवीय पद्धति है वह राष्ट्रीय पद्धति कहलाती है। वह देश और काल की पद्धति कहलाती है। वह पद्धति मानो परिवर्तनशील होती है। उनका कोई महत्व नहीं होता संसार में। अपनी स्थलियों पर महत्व तो होता है परन्तु राष्ट्रीय जो परमात्मा का दिया हुआ धर्म है वह सर्वत्र एक ही तुल्य रहता है। इसीलिए राजा को चाहिए कि राजा अपने राष्ट्र में बुद्धिमानों का सम्मेलन करता रहे और उन बुद्धिमानों के सम्मेलन में प्रजा को यह बुद्धि मान, पण्डित दार्शनिक समाज अपना यह निर्णय देते रहें। तर्क में अंकित हो करके कि हमारा यह धर्म है, ये पद्धतियां हैं, उन पद्धतियों के आधार पर राष्ट्र का निर्माण होना चाहिए। राष्ट्रीय महत्ता होनी चाहिए।

परन्तु जब धार्मिक पुरुषों में नाना प्रकार के भेदन होते हैं, कैसे भेदन होते हैं? कोई दर्शन को नहीं स्वीकार कर रहा है। कोई कहता है हमारे यहाँ बुद्धि को कोई महत्व नहीं दिया जाता। कोई कहता है मैं आवागमन को स्वीकार नहीं कर रहा हूँ। कोई कहता है कि मैं यज्ञ जैसे शुभ कर्म को स्वीकार नहीं कर रहा हूँ। ये सब अग्निपरस्त प्राणी हैं। यह सब क्यों कहा जाता है इस प्रकार का? मानो राष्ट्र की सूक्ष्म संकीर्ण बुद्धि का एक परिणाम है। यदि राजा में संकीर्णता न आए, संकीर्णता क्या है? संकीर्णता उस काल में राजा में आती है जब बुद्धिमानों का पूजन नहीं होता। जब वेदों का पूजन नहीं होता। ज्ञान का पूजन नहीं होता। उस समय देखो, अज्ञानी जो पुरुष हैं वो एक राजा का निर्वाचन करते हैं तो राजा धर्म का निर्णय नहीं दे सकता।

इसीलिए बहुत पुरातनकाल में मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय कराते हुए कहा था कि यह दोष है। यह समाज का ढांचा है इस वर्तमान के जगत में जहाँ बुद्धिमानों के आश्रित होकर के राजा का निर्वाचन नहीं होता। अपठित समाज अपने अपने स्वार्थ के वलिए धर्मों का अवलम्बन करते हैं। उसको स्वीकार करते हैं। बुद्धि की कसौटी जब आती है। बुद्धि का विचार आता है तो मानव यह कहता है कि हम बुद्धि को स्वीकार नहीं करते। परन्तु जब यह वाक्य आता है। यह राष्ट्र का, यह समाज का दुर्भाग्य है जब मानो देखो, शिक्षित समाज विद्यमान होकर के राजा के राष्ट्र में अनायास रसना के स्वादन में लगा हुआ है। दूसरे प्राणियों के रक्त को अपना आहार बना रहा है

अरे, यह क्या समाज पठित कहलाएगा? परन्तु जब मैं यह उच्चारण करने लगता हूँ तो मेरा हृदय भी दुखित होने लगता है। मैं यह कहा करता हूँ कि वह राष्ट्र दुर्भाग्यशाली है जिस राजा के राष्ट्र में धर्म के ऊपर रक्त को बहाया जाता हो। वह राष्ट्र कितना दुर्भागी है? धर्म कहता है यह धर्म है ईश्वर, परमात्मा का और धर्म का और हिंसा का आपस में मिलान हो ही नहीं सकता।

आज कोई मानव यह कहता है कि हमारा धर्म है। यह तुम्हारा धर्म नहीं है, यह तुम्हारी रसना का धर्म बन गया है। यह तुम्हारे उदर का धर्म बन गया है। आज इस उदर के धर्म को धर्म में क्यों लाना चाहते हो? अरे, मानव! तूने अपने उदर को प्राणियों का क्षेत्र बना लिया है। दूसरे के रक्त को पान करने से हमारे हृदय की विचारधारा अशुद्ध बन गई है। उस अशुद्ध विचारधारा से परिणाम यह कि यह समाज रुग्ण होता जा रहा है। नाना प्रकार के रुग्ण हैं। कहीं आयुर्वेद में जाते हैं, आयुर्वेद की नाना प्रकार की शाखाएं बन गई हैं। चिकित्सालय बन गए हैं। परन्तु जितनी चिकित्सालाएं बनती हैं उतना ही मानव में नाना प्रकार के रुग्ण बलवान होते जा रहे हैं। यह समाज कैसे ऊँचा बनेगा आज, जब मैं इन विचारधाराओं को उच्चारण करता हूँ तो मेरे हृदय में एक बिडम्बना सी जागरूक होती है। कोई कहता है कि हमारे तो मोहम्मद ने यह कहा है कि यहाँ दूसरे प्राणियों को हनन कर सकें यह हमारा अधिकार है। परन्तु उन महापुरुषों के लिए आज कोई मानव यह कह रहा है अरे, मानव तेरे में बुद्धि भी तो होनी चाहिए। आज तू बुद्धि से क्यों नहीं विचारता। जहाँ तू धर्म को लेता है, मानवता को लेता है, अरे, वहाँ यह तो विचार लो कि तुम जहाँ धर्म और मानवता को लेते हो वहाँ हिंसा कैसे आ सकती है? हिंसक प्राणी तो धर्म से एक दूर चला जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश में एक उल्लूक नाम का प्राणी होता है। वह दिवस से दूर रहता है, वह अन्धकार में ही मग्न रहता है।

इसी प्रकार आज मैं विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। विचारधारा केवल यह कि आज की यदि इस राष्ट्र को ऊँचा बनाना है, समाज को ऊँचा बनाना है तो हे राजाओ! तुम्हारा पृथ्वी मण्डल के प्राणियों से तुम्हारा एक सम्मेलन होना चाहिए और भिन्न भिन्न

प्रकार के रूढ़िवादी प्राणी एकत्रित हो जाएं और विज्ञान ईश्वरीय धर्म और वेद के ऊपर अंकित जो मानवता हो जाए, उसी को अपनाने का प्रयास करते रहो। वही तुम्हारा धर्म है। वही तुम्हारी मानवता है वही तुम्हारी संस्कृति है।

नाना प्रकार की रूढ़ियों में संस्कृति का दमन होता जा रहा है। दमन क्यों हो रहा है? क्योंकि राजा में स्वार्थ भावना है। राष्ट्र में स्वार्थ भावना है। एक मानव धर्म की चर्चा कर रहा है, वेद के मन्त्र उच्चारण कर रहा है। परन्तु जब वह राष्ट्रीय क्षेत्र में जाता है और जब निर्वाचन का समय आता है तो उस समय वह वेद के मन्त्र को दूर कर देता है। उसके प्रति स्वार्थ है। अरे, यह समाज! राष्ट्र स्वार्थ से कदापि ऊँचा नहीं बनता। अरे, राष्ट्र ऊँचा उस काल में बनता है जब मानव में निष्पक्षता आ जाती है। मानो निर्वाचन बुद्धिमान मानव के द्वारा होता है। वेद का ऋषि यह कहता है जब राजा का निर्वाचन हो, एक करोड़ प्राणी मानो एक स्थली में हो और एक बुद्धिमान जो वेद का प्रकाण्ड पण्डित हो, योगी हो, जो अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने वाला हो। आत्मा परमात्मा से वार्त्ता करने वाला हो तो एक करोड़ प्राणी और वह प्राणी एक ही तुल्य होते हैं मानो वह जो एक करोड़ प्राणी हैं वह सूक्ष्म बन जाएंगे उस महापुरुष के आगे।

इसी प्रकार क्योंकि राम का समय आज नहीं हुआ। मानो लाखों वर्ष हो गए हैं राम का नामोच्चारण हो रहा है। राम के काल में प्रजा भी थी और कौन किसको जानता है? राम को संसार का प्रत्येक व्यक्ति जानता है। क्यों जानता है? क्योंकि वे बुद्धिमान थे। वे अपने जीवन में अनुशासित थे। अनुशासन करना जानते थे। आज राजा यह कहे, कितना दुर्भाग्य है यह समाज का दुर्भाग्य है। अरे, जो मानव अनुशासन में रहना नहीं चाहता वह मानो कह रहा है, अरे, मानव तू अनुशासन में रहने वाला बन। एक राजा बना हुआ है। एक प्रजा बनी हुई है। परन्तु अनुशासनहीन राजा कहता है कि अनुशासन में रहो। आज कोई मानव यह कहे कि ब्रह्मचर्य को दूषित करने के पश्चात् आज मैं समाज को अनुशासन में लाना चाहता हूँ। मानो वह यह वाक्य मिथ्या उच्चारण कर रहा है। वह कोई सुन्दर वाक्य नहीं कह रहा है।

विद्यालय में जब प्रवेश करते हैं तो गुरु मानो शिष्यों पर मोहित हो रहा है, और शिष्य

गुरु पर मोहित हो रहे हैं। परन्तु विद्यालय में क्या हो रहा है? मानो विद्यालय में एक बिडम्बना हो रही है। एक खिलवाड़ हो रहा है। परन्तु देखो, पोथी की पोथी विद्यमान हैं। उन पोथियों में क्या है? यह कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु जब पोथियों में अनुशासन की शिक्षा नहीं है, अनुशासन में रहने वाला आचार्य नहीं है, तो कैसे विद्यालय ऊँचे बनेंगे? कैसे ब्रह्मचारी ऊँचे बनेंगे। आज जब आहार व्यवहार में सूक्ष्मता आ गई है, तो मानव समाज कैसे ऊँचा बनेगा? आज हम कैसे कल्पना कर सकते हैं।

परन्तु कल्पना उसी काल में की जा सकेगी। स्वयं वह काल मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव स्मरण कराते रहते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज जब तप करने के लिए चले गए। वे बारह वर्ष का तप करके दर्शनों का अध्ययन करके मन को अनुशासन में लाने के पश्चात् ब्रह्मचारियों को शिक्षा दे रहे हैं। वे ब्रह्मचारी ज्ञान और विज्ञान में पाण्डित्य में विचित्र हैं। आज का ब्रह्मचारी कैसे ऊँचा बने? आज का वैज्ञानिक यह कहता है हम गो घृत भी पान नहीं करते, हम चन्द्रमा में चले गए हैं, आज का मानव कहता है। अरे, चन्द्रमा से तुम्हारे राष्ट्र का अनुशासन बन गया। आज जब मैं यह प्रश्न करूंगा तो मानो कुछ भी नहीं प्राप्त होगा। एक मानव चन्द्रमा में चला गया कोई वाक्य नहीं। मंगल में चला गया। वह आश्चर्य का विषय नहीं है। यह तो मानव की प्रवृत्ति है। एक मानव शान्त रूप से विद्यमान हैं। यह मन के ऊपर कल्पना कर रहा है, सूर्य मण्डल है, सूर्य मण्डल प्रकाश वाला है। वो मन की गति इतनी विचित्र है, इतनी महान् है कि एक क्षण समय में चन्द्रमा में चली जाती है। परमात्मा का यह जो विज्ञान है यह कितना महान् है? क्या इस विज्ञान का कोई छोर पा सकता है? आज का मानव कहता है, मैं चन्द्रमा में चला गया कोई आश्चर्य नहीं है। अरे, पूर्व का वैज्ञानिक तो अनुशासन में रह करके, ब्रह्मचर्य का पालन करके मानो वह छह छह माह तक मंगल में, चन्द्रमा में नाना लोकों में भ्रमण करके पृथ्वी मण्डल पर भी आ गए। आज का विज्ञान तो केवल प्रारम्भिक शिक्षा है। प्रारम्भिकता है, आज तो प्रारम्भ हुआ है विज्ञान का। परन्तु देखो, यह विज्ञान कितना विचित्र है? सूर्य को किरणों से जो यान चलने वाला था वह नारद मुनि की विज्ञानशाला में था। नारद मुनि महाराज देखो, सूर्य की किरणों के साथ वह अपने यान को ले जाते

थे और सूर्य की किरणों के साथ वह सूर्य मण्डल की यात्रा करके प्रातःकाल वह सूर्य की किरणों के साथ पृथ्वी मण्डल पर आते थे। परन्तु जब इस प्रकार का विज्ञान यहाँ रहा है तो मैं कैसे उच्चारण करूं कि यह विज्ञान भी कोई विज्ञान है। मैं यह नहीं कहता हूँ कि विज्ञान नहीं है, विज्ञान है। परन्तु देखो, वह विज्ञान कितना महान् था जिस विज्ञान में विज्ञान हो, पाण्डित्य हो, दर्शन हो और यौगिकता हो, वह विज्ञानों से ऊँचा बनेगा। उस विज्ञान में बिडम्बना नहीं रहेगी। उस विज्ञान में महत्ता रहेगी।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य प्रकट कराने आया हूँ, आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि राजा को अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है और राजा का राष्ट्र उस काल में ऊँचा बनेगा जिस काल में नाना प्रकार की रूढ़ियों के आचार्य एक स्थली पर विद्यमान हो करके और एक धर्म एक विज्ञान मानो एक ही पद्धति में रमण करने वाला होगा। वह राजा समाज को अनुशासन में वला सकता है। अन्यथा राष्ट्र की विडम्बना रहेगी। परन्तु यह वाक्य मैं विशेष चर्चाओं में ले जाना नहीं चाहता हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की यह प्रकट कराने आया हूँ कि सामाजिक उन्नति राष्ट्रीय उन्नति उस काल में हो सकती है, जब यहाँ बुद्धिमान होंगे, विवेकी पुरुष हांगे, और यह राष्ट्र और मानव समाज रूढ़ियों में परणित नहीं होगा। एक वैदिक प्रकाश होगा, वैदिक पद्धति हो। यज्ञ जैसे ऊँचे कर्म हो। यज्ञ जो सुगन्धि देने वाला हो। यज्ञ में ऊँचे कर्म भी आते हैं। अहा! यहाँ शुभ कर्मों का नाम याग माना गया है। सब जितने भी शुभ कर्म हैं, सुगन्धि देना चाहे, वह विचारों से सुगन्धि दे रहा हो, चाहे वह साकल्य से दे रहा है, चाहे वह अग्न्याधान करके दे रहा है। चाहे मानो वह अपने पाण्डित्य से दे रहा हो। वह अपने जीवन से सुगन्धि दे रहा है। और दुर्गन्धि देने वाला चाहे कोई भी हो वही मानव देखो, धर्म को नहीं जानता। वह याज्ञ जैसे कर्मों को नहीं जानता।

मैं विशेष चर्चा तो प्रकट नहीं करूंगा। विशेष चर्चा तो कल मेरे पूज्यपाद गुरुदेव समय देंगे तो मैं विचारधारा दूंगा कि राष्ट्र की पद्धतियां राष्ट्र का जो नित्यकर्म होता है वह कैसा होना चाहिए? यह मैं कल उच्चारण करूंगा। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह

प्रार्थना करूंगा कि बाल्यकाल में जो उन्हें प्राणायाम करने की शिक्षा मेरे गुरुदेव दिया करते थे और जो साधना में परणित रहते थे, उस साधना के आहार को व्यवहार को, साधना की प्राणायाम की पद्धति और पञ्च कोषों का प्राणों से क्या सम्बन्ध है? यह वाक्य इसकी मीमांसा करने की हमारे ऊपर कृपा करेंगे। मेरी यह इच्छाएं हैं और मुझे समय देंगे तो मैं राष्ट्र की नियमावली को उच्चारण कर सकूँगा। आज का यह वाक्य अब समापन होने जा रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य ... ... धन्य हो। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने एक राजकीय विचारधारा को प्रकट किया। एक वाक्य हमें बहुत ही प्रिय लगा और वह वाक्य यह था कि जो अनुशासन करने वाला प्राणी है वह स्वयं जब अनुशासन नहीं करता तो प्रजा को अनुशासन के लिए कहता हैं। यह वास्तव में विचारणीय विषय है। यह एक मार्मिक वाक्य है। परन्तु आज हम उन विचारों में, महानन्द जी के विचारों पर नाना प्रकार की टिप्पणियां की जा सकती हैं। परन्तु आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा। आज का विचार क्या? मेरे पुत्र यह प्रकट कर रहे थे कि राजा को ऊँचा बनाना है तो रूढ़ियों में परिवर्तन लाना होगा। क्योंकि रूढ़ियों से तो समाज बनता है। रूढ़ि न हो तो समाज का निर्माण नहीं होगा। परन्तु अति का नाम रूढ़ि कहलाता है और वह अति जिसमें हो जाती है। वह बुद्धि का विनाश कर देता है और जब वह बुद्धि का विनाश करता है तो बुद्धि के विनाश होने पर समाज की पद्धतियां नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं। तो यह मेरे पुत्र ने बहुत ऊँचा एक वाक्य प्रकट किया। आज हम उन विचारधाराओं में तो जाना नहीं चाहते।

कल मेरे पुत्र ने एक प्रश्न ऐसा किया है जो बहुत गम्भीर प्रश्न है कि साधना के क्षेत्र में जाना। मेरे पुत्र! मैं यह जानना चाहता हूँ जब तुम साधना से अपने जीवन की विचारधारा को ऊँचा बनाओगे। यह एक हमारे लिए एक विचार मानो वृत्तियों का एक विषय बन जाता है। कल हम उसका कुछ सूक्ष्म रूपां में प्रयत्न करेंगे। विशेष रूप से तो नहीं परन्तु उसकी सूक्ष्म सी चर्चाएं करेंगे। इसके पश्चात् आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने विचार पाण्डित्य की दृष्टि से, पाण्डित्य की भाषा में, पाण्डित्य की मीमांसा करते

हुए उन्होंने अपने विचार विज्ञान में रमण कराते हुए दिए हैं। तो उन विचारों में एक माधुर्यता मानो एक विडम्बना हैं विडम्बना में मानव को परणित नहीं होना चाहिए। यह समाज परम्परा से चल रहा है। चलता रहेगा। इस समाज में नाना प्रकार की विचारधाराएं होती रहती हैं। चलता रहता है यह जगत् तो उसमें हमें विशेष बिडम्बित नहीं होना चाहिए। यह वास्तव में विचार है कि मानव की रक्षा करना, मेरी पुत्रियों के श्रृंगारों की रक्षा करना यह उसी काल में होता है जब कि वास्तव में विशेष रूढ़ि नहीं होती। क्योंकि अति जो रूढ़ि होती हैं यह माताओं के श्रृंगारों को समय समय पर नष्ट कराती रहती है। पुत्रियों को पतिहीन बनाती रहती है। समाज को हीन बनाती रहती है। राजा को राष्ट्रहीन बनाती रहती है। पाण्डित्य को पाण्डित्यहीन बनाती रहती है। तो इसीलिए यह विचारधारा एक ऐसी है जिन विचारों को ले करके मानव में बहुत विचारधारा और संशोधन का विषय बन जाता है। राजा के राष्ट्र में नाना पण्डित होने चाहिए। वह पाण्डित्य यौगिकता से पूर्ण भी हों। प्राण के शोधन करने वाले हों। क्योंकि यह जगत् प्राणों से चल रहा है। यह जगत् प्राणों से आदान प्रदान कर रहा है। यह मानसिक क्रियाएं इनके द्वारा विचारों में विभक्तता आती हैं। क्योंकि जो विभक्तता है वही समाज को, राष्ट्र को, योगी जनों को ऊँचा बनाती है। सांसारिक बना देती है। इसीलिए आज मैं यह विचारधारा देने के लिए आया हूँ कि जिस धर्म पर महानन्द जी का वाक्य बहुत प्रिय लगा। जिस धर्म के कारण मेरी पुत्रियां पतिहीन हो जाएं। समाज समाजहीन हो जाए। वह कोई धर्म नहीं कहलाता। उसके गर्भ में स्वार्थ होता है। ऊपर से लेपन धर्म का होता है और नीचे स्वार्थ की अग्नि विद्यमान रहती है। तो इसीलिए वह अग्नि नहीं होनी चाहिए। राष्ट्र में राजा का यह कर्त्तव्य है कि राजा स्वयं इसका निरीक्षण करे। इसके ऊपर मानो निर्वाचन करे। क्योंकि राजा का जो निर्वाचन होता है। राष्ट्र का जो निर्माण होता है वह इसलिए नहीं होता कि वह स्वार्थ की पूर्ति करे या समाज को विकृत करता रहे। इसलिए राजा का निर्वाचन होता है कि समाज को वह अनुशासन में ले जाता रहे और स्वयं अपने जीवन को अनुशासन में बनाता रहे। यदि स्वयं नहीं बनेगा तो समाज ऊँचा नहीं बनेगा। इसीलिए समाज को ऊँचा बनाना मानवता को

महत्ता में ले जाना यह प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या का कर्त्तव्य हैं समाज का कर्त्तव्य है। मेरे प्यारे! महानन्द जी की वार्त्ता मुझे बहुत प्रिय लगी।

उसके पश्चात् उनका एक वाक्य था कि वैज्ञानिक होने चाहिए। वैज्ञानिक वास्तव में होने चाहिए। परन्तु वैज्ञानिकों द्वारा ऊर्ध्व गति में नाना चित्रवलियों के दुरूपयोग नहीं होने चाहिए। छात्रें का जो समाज है वह इससे दूषित हो जाता है। छात्रों को शिक्षा से द्वितीय कार्य प्राप्त हो जाता है तो उन का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। आहार से, व्यवहार से मानो नाना प्रकार की विद्याओं के दुरूपयोग से छात्रत्व मानो उसका समाप्त हो जाता है। ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। ब्रह्मचर्य के दूषित हो जाने पर आलस्य और प्रमाद की प्रवृत्ति हो जाती है। आलस्य और प्रमाद आने पर मानव कर्त्तव्यवादी नहीं रहता। जब कर्त्तव्य वादी नहीं रहता तो उसका परिणाम यह होता है कि राजा के राष्ट्र में छात्र में छात्र प्रवृत्ति न रह करके एक रक्त के शोधन की एक अकर्त्तव्य की पुकार हती है। कर्त्तव्य वह करे या न करे परन्तु इससे राष्ट्र की हानियां हुआ करती हैं। इसीलिए राजा को चाहिए वह विज्ञान का दुरूपयोग न होने दे। जब मुनिवरों! विज्ञान का दुरूपयोग उस काल में हो जाता है जिस राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियां सतीत्व को समाप्त करके यदि वह अपने उदर की पूर्ति करती हों तो उससे विशेष राष्ट्र में कोई दुर्भाग्य नहीं होगा। क्योंकि जितना यह दुर्भाग्य होता है विज्ञान का उसमें चित्रकला आती है। मानो चित्रवलियों में मेरी पुत्रियों के नृत्य आते हैं और वह जो नृत्यता है वहाँ कदापि भी सुदृष्टि नहीं रहती। क्योंकि उसमें चरित्र नहीं होता तो सुदृष्टि नहीं होती। जब सुदृष्टि नहीं होती वह तो उदर पूर्ति का साधन है तो छात्रें की प्रवृत्तियां नष्ट हो जाती हैं। छात्रों का ब्रह्मचर्य समाप्त हो जाता है।

कर्त्तव्य जहाँ नहीं रहेगा तो चरित्र भी नहीं रहेगा। समाज भी नहीं रहेगा। गृह भी न हीं रहेंगे। यह मुझे अपने पुत्र की वार्त्ता बहुत प्रिय लगी। इसीलिए प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है कि वह अपने कर्त्तव्यवाद की वेदी पर चला जाए। कर्त्तव्य किसे कहते हैं? कर्त्तव्य उसे कहते हैं कि संग्रह करने की प्रवृत्ति न हो। मानवत्व की प्रवृत्ति हो मानवत्व सदैव अपनी विचारधारा में प्रबल बना रहे। पण्डित वेद का अध्ययन यौगिक उड़ान उड़ता रहे।

यह सब कर्त्तव्य जहाँ जो लगा हुआ है वहाँ वह वर्णित हो रहा है। जिस आसन को अपना रहा है वहाँ वह पूर्ण कर रहा है, तो वह उसका कर्त्तव्यवाद कहलाता है। तो इसीलिए आज का वाक् मेरे प्यारे! पुत्र का बहुत प्रिय लगा। परन्तु कल समय मिलेगा तो मैं कुछ प्राणायाम के सम्बन्ध में उच्चारण करूंगा और महानन्द जी को कुछ सूक्ष्म सा समय कार्यों के सम्बन्ध में और दिया जा सकेगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

७ 09 03 1977 पुष्प 32 मानव जीवन के पक्ष

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया है आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेरवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। वे परमपिता परमात्मा इस संसार का नियन्ता है। अथवा निर्माण करने वाला भी है। उस अपने देव की महिमा का उसकी गाथा का प्रत्येक वर्णन रहा है। जितना भी जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, जब हम उसके एक एक परमाणु के ऊपर विचार विनिमय करना प्रारम्भ करते हैं, तो प्रकृति का एक एक परमाणु उस परमात्मा का चित्रण कर रहा है। एक एक परमाणु में सर्वत्र ब्रह्माण्ड की प्रतिभा निहित रहती है।

मानव का जीवन एक आभा है। जब हम उसको विचार विनिमय करने लगते हैं तो वह भी परमात्मा की गाथा का वर्णन कर रहा है। जब हम यह विचारते हैं कि कृषक माता वसुन्धरा के गर्भ में नाना प्रकार का खाद्य उत्पन्न करता है और मेरे देव का रचाया हुआ सृष्टि के प्रारम्भ में एक पौधा है और उस पौधे पर दो प्रकार का अन्ना माना जाता है। हे देव! तू कितना वैज्ञानिक है। एक ही पौधा है और उस पर दो प्रकार का अन्न है। एक अन्न को मानव पान करता है, तो एक को पशु पान कर रहा हैं मेरे पशु का उदर विशाल तो उस पर उसका अन्न भी विशाल है। मानव उदर सूक्ष्म है तो उसका अन्ना भी उस पौधे पर सूक्ष्म माना गया है। वह मेरा देव कितना वैज्ञानिक है। कितना

विज्ञानमय यह जगत है। प्रत्येक मानव उसकी गाथा का वर्णन करने लगता है, पर सीमा नहीं पाता है। हम बेटा! एक एक परमाणु पर अनुसन्धान करने लगते हैं तो प्रायः एक एक परमाणु में सर्व ब्रह्माण्ड की आकृति निहित रहती है। वह प्रकृति का परमाणु ब्रह्माण्ड का चित्रण कर रहा है। उसमें मनौनीत अपना कार्य कर रहा है।

पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशाल क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ। मैं दर्शनों के आँगन में नहीं ले जाऊँगा। आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कहता है? मुझे बहुत परम्परा की वार्त्ताएं स्मरण आने लगती हैं। नाना दार्शनिक विद्यमान हो करके विचार विनिमय करते थे। हमारे यहाँ दो पर्व आते हैं एक शरद ऋतु का पर्व है जिसको हम दीपमालिका कहते हैं, और एक शिशिर ऋतु के अन्त का पर्व है, हम दीपमालिका कहते हैं और एक शिशिर ऋतु के अन्त का पर्व है, जिसको होला वृत्ति मालिका कहते हैं।

हमारे यहाँ यह माना गया है परम्परा से ही ऊँची ऊँची मान्यताएं रही हैं। हमारा जितना भी मानव समाज है परम्परा से दोनों पर्वों पर याज्ञों की परम्परा को चलाता आया है। दीपमालिका का अभिप्राय यही है वसुन्धरा के गर्भ में दीपमालिका का प्रकाश हो रहा है। प्रत्येक गृह में हमें प्रकाश करना है। होलिका पर्व का अभिप्राय है होला वृत्ति देवाः मानो जो देवताओं के द्वार से जो होली व्रत चलता है वह मानव समाज के लिए हितकर है कृषक के लिए हितकर माना गया है। परन्तु आज का हमारा वेद का ऋषि ऊँची ऊँची उड़ान उड़ता है मैं भी उसी सम्बन्ध में ऊँची उड़ान उड़ने के लिए नहीं आया हूँ। केवल परिचय देने के लिए आया हूँ।

देखो, होलिका दीपक वृहित लोकाः में कही जाती है जिन पर्वों में कृषक, प्रत्येक वाणी अपने गृह में याग करता है। परम्परा से ही शरद ऋतु में तो दीपमालिका का पर्व आता है और बसन्त ऋतु के आरम्भ में एक पर्व आता है जिसमें अग्न्याधान करते हैं, अग्नि में अन्न को तपाते हैं मानो प्रथम अन्न आने से पूर्व हमारे यहाँ याग की प्रथा मानी जाती है। याग का चलन माना गया है। क्योंकि अन्न को लेकर के सबसे प्रथम मानो देवताओं कोसमर्पित करता है और यह कहता है कि हे देवतागणों! तुम देवता हो। हम तुम्हारे लिए हुत कर रहे हैं। अन्ना का रूपान्तर कर रहे हैं जिससे वायु मण्डल में देवताजन

हुत को पान करते हैं। क्योंकि अग्नि सब देवताओं का दूत कहलाया गया है। वेद का ऋषि कहता है अग्नि दूतं वृथाः विश्वशच प्रभे देवाः। यह जो अग्नि है यह देवताओं का दूत है। देवताओं को सर्वत्र रूपान्तर देकर के यह प्रसन्न हो रहा है। इसीलिए हमारे यहाँ अग्नि प्रकाश को देने वाला है, अग्नि देवतव कहलाने वाला है। इसलिए प्रत्येक मानव को आभा में युक्त रहना है कि हम सबसे प्रथम याग करने के लिए तत्पर हो जाएं यह तो होलिका का यजन होता है वह वायुमण्डल को शोधन करने के लिए होता है। हमारे गृह में कृषक होता हुआ और यह कहता है कि आज हम कितने सौभाग्यशाली हैं।

आज हम दीपमालिका के ऊँचे पर्व पर दीप और होलिका के आँगन में हम आए हैं और याग करने के लिए तत्पर हैं। इन दो पर्वों में दर्शेष्टि अन्नेष्टि याग किया जाता है। एक को अन्नेष्टि तथा पौर्णमासेष्टि याग किया जाता है।

देखा हमारे यहाँ चन्द्रमा षोडश कलाओं से युक्त होता है। जब अमृत प्रदान करता है तो षोडश कला प्रति पदा से लेकर के और अमावस तक षोडश कला वाला प्रकाश धीरे धीरे घटित होता रहता है। वह धीरे धीरे समाप्त होती हैं। अमावस का दिवस आता है तो चन्द्रमा की एक भी कान्ति नहीं रहती। वह कान्ति लुप्त हो जाती है। विचार क्या कि मानव के जीवन में भी इसी प्रकार के दोनों पक्ष माने जाते हैं। एक पक्ष हमारे यहाँ शुक्ल पक्ष कहलाता है एक पक्ष हमारे यहाँ कृष्णा पक्ष कहलाया गया है। मानव का जीवन एक तो कृष्णा पक्ष का है और एक शुक्ल पक्ष का है। शुक्ल कहते हैं प्रकाश को और कृष्णा कहते हैं अन्धकार को। तो एक हमारे यहाँ अन्धकार का पक्ष है और एक प्रकाश का पक्ष माना गया है। तो इसीलिए अमावस से लेकर के पूर्णिमा के दिवस तक यह शुक्ल पक्ष माना गया है और जहाँ चन्द्रमा शनैः शनैः अपनी कलाओं से समाप्त होता है मानो पूर्णिमा से लेकर के अमावस तक यह कृष्णा पक्ष कहलाता है। यह अन्धकार में ले जाता है। यह कृष्णा पक्ष है।

इसी प्रकार मानव के जीवन में दो प्रकार के पक्ष होते हैं। एक अन्धकार का होता है तो एक प्रकाश का होता है। एक वह जीवन होता है जिस जीवन में मानव को अन्धकार छा जाता है और अन्धकार छा जाने के पश्चात् अन्धकार में परणित होता हुआ अपने

को वह कुछ स्वीकार नहीं करता और यह अनुभव करता है कि मेरा जीवन तो यों ही जा रहा है। एक वह शुक्ल पक्ष का जीवन है। ज्ञान आता रहता है। प्रकाश आता रहता है। द्रव्य आता रहता है। वह मानव शुक्ल पक्ष प्रवेश करके कुछ अपने को उज्ज्वल अनुभव कर रहा है और अनुभव करता हुआ वह यह स्वीकार करता है कि मेरा जीवन वास्तव में प्रकाश में है।

मुनिवरों! मुझे वह महाभारत का काल स्मरण आता रहता है। महाभारत के काल में देखो, महाभारत का संग्राम हो रहा है। संग्राम होते हुए जब अर्जुन के तीखे वाणों से अस्त्रों शस्त्रों से पिता भीष्म मृत्यु की शय्या पर विराजमान हैं। वह शय्या किसकी है? बाणों की शय्या पर विद्यमान हैं उसका मस्तिष्क नीचे को हो गया उस समय पितामह भीष्म कहता है संग्राम में ही कि अरे, कोई है कि जो मेरे ब्रह्म पद्ध को ऊँचा बना दे? इस मस्तिष्क को ब्रह्म पद कहते हैं। इस शरीर में एक ब्रह्मपद है, जहाँ मनुष्य को ज्ञान की उत्पत्ति होती है। उसे ब्रह्म पद कहा जाता है, जिसे मस्तिष्क कहा जाता है। कंठ से ऊपरले भाग को ब्रह्मपद कहा जाता है। वह ब्रह्म पद नीचे को हो गया था। घोषणा की थी कि कौन पुत्र है, मेरे यहाँ जो ब्रह्म पद को ऊँचा बना दे। दुर्योधन नाना अस्त्रों शस्त्रों को त्याग कर वहाँ वस्त्रों के ऊँचे ऊँचे व्रत (तकिए) ले करके आए। उन्होंने कहा अरे, दुर्योधन! यह मेरा तकिया नहीं है। यह सिर के नीचे रहने वाला आसन नहीं है। उन्होंने अर्जुन से कहा हे अर्जुन! मेरे ब्रह्मपद को ऊँचा करो। तो उन्होंने अपने गांडीव धनुष को ले करके अपने तीखे बाण से उनके मस्तिष्क के पिछले भाग को छेदन करके ब्रह्मपद ऊँचा बना दिया। वाणों की शय्या पर विराजमान हैं, वही उसका बिछौना है, वही आसन बना हुआ है।

मेरे पुत्रों! देखो,! महाभारत समाप्त हो गया। जब संग्राम समाप्त हो गया तो महारानी द्रौपदी, राजा युधिष्ठिर और नाना ऋषि गण उनके द्वार पर आने लगे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हमारा जो महाभारत का संग्राम हुआ है वह कृष्ण पक्ष में हुआ है। कृष्ण पक्ष के दो विचार होते हैं। एक तो स्वाभाविक बाह्य जगत है इसमें पूर्णिमा से अमावस तक को कृष्ण पक्ष कहा जाता है। परन्तु नहीं एक समय महारानी द्रौपदी ने कहा कि प्रभु!

आप जो इन बाणों की शय्या पर विराजमान हैं। हे पितर! मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप जो इस आसन पर विद्यमान हो रहे हैं आपका कृष्णा पक्ष और शुक्ल पक्ष से क्या अभिप्राय है? उस समय पितामह भीष्म कहते हैं कि कृष्णा पक्ष और शुक्ल पक्ष का अभिप्राय यह है कि मानव के जीवन में दो पक्ष आते हैं। एक ज्ञान का पक्ष है और एक अज्ञान का पक्ष है। अज्ञान का नाम कृष्णा पक्ष अन्धकार है, और ज्ञान का जो पक्ष है उसको शुक्ल पक्ष कहते हैं, वह प्रकाश का ही है। वह मानव को प्रकाश में ले जाता है। इसलिए हे पुत्री! मैं यह चाहता हूँ कि जिस समय महाभारत का संग्राम हुआ, मैं इन बाणों की शय्या पर विराजमान हुआ। वह मेरा अन्धकार का पक्ष था। क्योंकि सूर्य दक्षिणायन में चला गया था। सूर्य ज्योति ज्योतिमयी कहलाई जाती है। इसलिए जो ज्योतिमयी है, प्रकाशमयी ज्योति देने वाला है उसका पक्ष वह अन्धकार में, वह कृष्णा पक्ष दक्षिणायन चला गया था और जब यह उत्तरायण आ जाएगा तो प्रकाश हो जाएगा। तो मुनिवरों! सूर्य का अभिप्राय क्या है? ज्ञान जब उन्होंने कहा कि हे पुत्रो! मेरे हृदय में जब ज्ञान आ जाएगा मानो मैंने यह जो पाप का अन्न ग्रहण किया था, महाराजा दुर्योधन को वह प्रवाह से भ्रमण कर रहा है पृथ्वी के आँगन को जा रहा है। वह जो दूषित अन्न का रस है, वह जो रस है वह जब समाप्त हो जाएगा तो शनैः शनैः मेरे में शुक्ल पक्ष आ जाएगा, और ज्ञान आने के पश्चात् मानव का जीवन शुक्ल पक्ष बन जाता है। वे अपनी संकल्प शक्ति से अपने शरीर को त्यागने वाले थे। उन्हें सर्वत्र राष्ट्रपिता कहा जाता था। ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य में इतनी महान सत्ता होती है ब्रह्म और चर्य यह दो ही अर्थ माने जाते हैं ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को और चरी कहते हैं उसके विज्ञान को और आभा को। जो दोनों प्रकार के पक्षों को चरने वाला है वह ही ब्रह्मचारी कहलाती है।

ब्रह्मचारी कौन है? जो अपनी चरी की रक्षा करता है। मानो जो ब्रह्म को जानता है। वही तो ब्रह्मचारी कहलाती है। राष्ट्र का मोह कर्त्तव्य का पालन करने के लिए, अपनी माता सत्यवती की आज्ञा का पालन करने के लिए वह राष्ट्र में दुर्योधन के पक्ष में रहे। परिणाम क्या हुआ? अज्ञान आ गया। प्रकाश लुप्त हो गया। उन्होंने कहा हे देवी! मेरा

प्रकाश लुप्त हो गया था। मैं अन्धकार में आ गया था। मैं आज अन्धकार से दूर हो गया। मानो महाभारत में धृतराष्ट्र का वंश समाप्त हो गया। पांडवों का वंश ज्यों का त्यों बना हुआ है। मानो कृष्ण पक्ष समाप्त हो गया और मैं शुक्ल पक्ष में आने वाला हूँ। मुनिवरों! विचार क्या कि ब्रह्म का उपदेश चल रहा था कि हे पुत्री! संसार में मानव को ऊँचा कर्म करना चाहिए। मानव को दुःखित को दृष्टिपात करके अपने में दुःखित अनुभव करना चाहिए। उस समय महारानी द्रौपदी ने कहा प्रभु! आज तो आप ऐसे ब्रह्मवादियों के उपदेश दे रहे हैं। परन्तु उस समय आपका उपदेश कहाँ चला गया था, जब रजस्वला होते हुए मानो मैं रज में परणित हो रही थी और मेरे चीर को महाराजा दुःशासन के द्वारा हरण किया जा रहा था। मेरे वस्त्रों को हरण किया जा रहा था। आप सभा में विद्यमान थे, उस समय आपका ब्रह्म ज्ञान कहाँ चला गया था? ब्रह्म का उपदेश कहाँ चला गया था? भीष्म कहते हैं हे पुत्री! जिस समय तुम्हारा चीर हरण हो रहा था, दुःशासन तुम्हारे चीर को हरण कर रहा था, उस समय मेरा कृष्ण पक्ष माना गया था। वह ज्ञान का पक्ष नहीं। मैंने राजसी अन्न का ग्रहण किया था। उससे मेरे रक्त में, मनोबल में अन्धकार छाया हुआ था। उस अन्धकार का परिणाम यह हुआ कि हे पुत्री! मैं तुम्हारी रक्षा न कर सका। क्योंकि अज्ञान में मानव मानव की रक्षा न कर सकता। और जब प्रकाश होता है, जब ज्ञान होता है तो मानव मानव की रक्षा करता है। तो हे पुत्री! इस समय मैं तुम्ळारे वाक्यों को दृष्टिपात करता हुआ, तुम्हारे शब्दों को श्रवण करता हुआ मैं स्वतः दुःखित हो रहा हूँ। मैं अपने में यह अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी जो यह वाणों की शय्या है यह परिणाम केवल उस पाप का है। हे पुत्री! वह जो पाप कर्म है वही तो मुझे इस दशा में लाया है। जब उन्होंने ऐसा वाक्य कहा तो द्रौपदी मौन हो गई। और महारानी द्रौपदी ने कहा धन्य है प्रभु! हे पितर! कोई वाक्य नहीं। अब मेरी इच्छा यह हो रही है कि आप अब अपने शरीर को त्याग दें तो बहुत ही प्रिय होगा। क्योंकि आपका शरीर को दृष्टिपात करते हुए भी मुझे बड़ा दुःख हो रहा है औश्र मैं अपने में यह अनुभव कर रही हूँ कि मेरे महापिता को यह क्या हो गया? मेरा महापिता कितना उज्ज्वल है कितना महान है, आज किस शय्या पर विराजमान है। हे

प्रभु! अब सूर्य दक्षिणायन आ गया है अपने शरीर को त्याग दीजिए।

मेरे पुत्रो! भीष्म जी कहते हैं नहीं पुत्री अभी मेरे शुक्ल पक्ष आने में अभी कुछ सूक्ष्मता है। उस शुक्ल पक्ष को पूर्णत्व आने दीजिए और जब वह पक्ष आ जाएगा तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा। मैं अपने में यह अनुभव करने लगूंगा कि मेरी पुत्री मेरे समीप विद्यमान है और मेरा जीवन ऐसा उज्ज्वल बन रहा है जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी कलाओं से परिपक्व होता रहता है, अपनी कलाओं में आता रहता है और वह प्रकाश में लाता रहता है संसार को, अमृत को बखेरता रहता है। उस अमृत से माता वसुन्धरा अमृतमय हो जाती है। रसमयी हो जाती है और वह नाना पदार्थों को प्रदान करने लगती है। पदार्थों की उत्पत्ति भी उसी के द्वार से होने लगती हैं तो हे देवी! मैं प्रभु से याचना कर रहा हूँ, गायत्री माता की गोद में जा रहा हूँ, मैं साधना की ज्योति में प्रवेश कर रहा हूँ। मुझे इन बाणों की शय्या का दुःख नहीं है। क्योंकि आत्मा तो सदैव एक चेतना में बद्ध रहने वाली है। आत्मा किसी भी काल में विनाश को प्राप्त नहीं होता। आत्मा तो केवल संस्कारों को लेकर के उदान प्राण मानो चित्त को और आत्मा को लेकर अन्य लोकों को प्राप्त होता रहता है।

हे पुत्री! आज तुम्हें आत्म ज्ञान होना चाहिए। आत्म ज्ञानी जो पुरुष होता है वह महान होता है। हे पुत्री! राजा हो तो वह भी आत्म ज्ञान वाला हो, ब्रह्मवादी हो। ब्रह्मज्ञान से ही राष्ट्र और समाज ऊँचे बनते हैं। जिन राजाओं को ब्रह्म ज्ञान नहीं होता उन राजाओं के राष्ट्र में विज्ञान का दुरूपयोग होता रहता है, और विज्ञान के दुरूपयोग होने पर राजा के राष्ट्र में नाना प्रकार की रक्त भरी क्रान्तियां उत्पन्न हुआ करती हैं। हि पुत्री! आज मैं तुम्हें सुराष्ट्र का विचार देने के लिए विद्यमान हूँ। मैंने राज सभाओं में राजा की बहुत सी वार्त्ता श्रवण की हैं। मैं राज सभाओं में नियमावलियों का निर्माण करता रहा हूँ और वह जो नियमावली निर्मित होती रही है उनमें मैंने नाना प्रकार का विधान नाना प्रकार की राष्ट्रीय नियमावलियों का निर्माण किया है।

तुम्हें यह प्रतीत है, युधिष्ठिर विद्यमान है? मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि तुम्हें यह प्रतीत होगा, त्रेता के काल में, राम के तीखे बाणों से रावण जब मृत्यु की

शय्या पर विराजमान हो गए, युद्ध क्षेत्र में उस समय भगवान राम और लक्ष्मण दोनों विद्यमान थे। तब लक्ष्मण कहता है प्रभु! हम विजयी हो गए हैं। परन्तु राम कहते हैं हे लक्ष्मण! हम विजयी नहीं हुए। क्योंकि रावण इतना नीतिज्ञ था, इतनी नीति को जानने वाला था, इतना वैज्ञानिक था, वेदों का अध्ययन करने वाला था और ऐसा प्रतीत होता है मुझे जैसे आज इस विश्व के व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है। राम ने जब ऐसा कहा तो उस समय लक्ष्मण कहते हैं कि आप ऐसे दुःखित वाक्य क्यों कह रहे हैं? उन्होंने कहा कि जाओ लक्ष्मण तुम रावण से राजनीति की वार्त्ता श्रवण करके आओ। उस समय लक्ष्मण ने कहा बहुत प्रिय! लक्ष्मण अपने अस्त्रों शस्त्रों से युक्त होता हुआ उस भूमि में जाता है, उस युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करता है। उनके मस्तिष्क के अग्र भाग में न आ करके पिछले भाग में विराजमान हो करके यह कहता है, हे रावण! हे लंकापति मैं कुछ राजनीति की वार्त्ता जानना चाहता हूँ। परन्तु रावण ने कोई वार्त्ता प्रकट नहीं की और मौन रहे। लक्ष्मण राम के समीप पहुंचे और राम से कहा प्रभु! वे कोई वार्त्ता प्रकट नहीं कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसी मूर्च्छा में परिणत हो गए हैं, मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं।

राम ने लक्ष्मण से पूछा कि उस समय तुम्हारा स्थान किस आँगन में रहा। उन्होंने कहा कि उनके ऊर्ध्व आँगन में। उन्होंने कहा तुम नीतिज्ञ नहीं हो, वह महान है, तुम उनके चरणों में विद्यमान हो जाओ। लक्ष्मण और राम दोनों का गायन होता है। दोनों जा करके उनके चरणों की वन्दना करके बोले रावण! हम कुछ राजनीति की वार्त्ता को जानना चाहते हैं। हे राम! तुम राजनीति को जानना चाहते हो। हां आप दो शब्द उच्चारण कर जाइए। जिससे राज्यसभा में हम उन वाक्यों को निर्धारित कर सकें और उसका प्रसार कर सकें। उन्होंने कहा कि राम! मैं तुम्हें क्या उच्चारण कर सकता हूँ। अब तो मैं मृत्यु की शय्या पर विराजमान हूँ। तुम्हें यह प्रतीत है कि राजा के राष्ट्र में विज्ञान होना ही चाहिए परन्तु विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए। मैंने बहुत परम्परा में आदि ब्रह्मा से जो मेरे गुरुदेव थे उनके चरणों में विराजमान हो करके यह कहा था कि मैं अपने राष्ट्र में विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होने दूंगा। क्योंकि विज्ञान के दुरूपयोग होने

पर राष्ट्र का विनाश हो जाता है। राष्ट्र अग्नि के मुख में प्रवेश कर जाता है। मैं वह नहीं कर पाया। मैं उसे अपने में धारण नहीं कर सका हूँ। इसलिए हे राम! सबसे प्रथम तो यह वाक्य है कि यदि तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहोगे, महान बनाना चाहोगे तो तुम्हारे यहाँ विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए। विज्ञान के दुरूपयोग होने पर समाज अकर्मण्य बन जाता है, वह महान कार्य नहीं कर पाता। इसलिए उस राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति होती है। और वह राजा नष्ट हो जाता है। इसलिए आज मैं मृत्यु की शय्या पर विराजमान हूँ अन्यथा मेरे राष्ट्र में विज्ञान का सदुपयोग होता, चरित्र की तरंगें होती तो आज मेरी यह दशा न होती।

उसके पश्चात् रावण ने कहा हे राम! यदि तुम राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हो तो राजा को आलस्य और प्रमाद नहीं होना चाहिए। राजा जब आलस्य और प्रमाद में आ जाएगा, दूसरों की कन्याओं और पुत्रियों पर अत्याचार करना प्रारम्भ करेगा तो जानो वह राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा। ये राजनीति की वार्त्ताएं हैं। एक नीतिकार यह कहता है, रावण यह कहता है। हे राम! देखो, आज मैं पराजित हूँ। परन्तु मैंने अपने जीवन में, जब तक मेरा एक एक श्वास गति करता रहा है उस समय तक मैंने तुम्हें लंका में प्रवेश नहीं होने दिया। क्योंकि मेरा भुजाबल बलवान था। मैं यह चाहता था अपनी विद्या के कारण स्वर्ण में सुगन्धि लाना चाहता था। यह जो स्वर्ण है इसमें सुगन्धि आ जाए। तो यह महान धातु बन जाएगा। मैं उसमें सुगन्धि न ला सका हूँ। क्योंकि सुगन्धि लाना वैज्ञानिकों का यह कर्त्तव्य था। नाना धातुओं को जानने का वैज्ञानिकों का कत्रव्य था। परन्तु कोई बात नहीं मेरी एक इच्छा यह थी कि स्वर्ग में मैं अपना एक स्थान चाहता हूँ। स्वर्ग में मेरा स्थान नहीं बन सका। मैं वेदाध्ययन करता रहा हूँ। स्वर्ग को जानता रहा, स्वर्ग की आभा में रमण करता रहा, परन्तु स्वर्ग को मैं नहीं ला सका।

स्वर्ग क्यों नहीं ला सका? क्योंकि मैं कहता रहा कि मैं स्वर्ग कल ला सकूंगा। इसलिए हे राम! जिस कार्य को तुम्हें करना है उसे स्वतः ही तत्काल कर लो अथवा उसे कल पर त्यागना एक मूर्खता है। यह अकर्मण्यता है और यह पामरों का कर्त्तव्य है। इसलिए

आज जो भी तुम्हें कर्म करना है उसे अभी करना चाहिए। यह आचार्यों का कथन है कि मानव को दुरिता (पापों में) में नहीं जाना चाहिए। पितामह भीष्म यह द्रौपदी को उच्चारण कर रहे थे कि यही शब्द रावण के भगवान के लिए थे।

मैं तो अब इस संसार से चला जाऊँगा। परन्तु इस राष्ट्र को ऊँचा बनाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। वास्तव में तो इस संसार का भविष्य यह कहता है कि यह संसार ऊँचा बनने वाला नहीं। क्योंकि बुद्धिमानों का ह्रास हो गया है। बुद्धिमान समाप्त हो गए हैं। राष्ट्र और समाज जो बना करता है वह बुद्धिमानों से ऊँचा बना करता है। गृह जो ऊँचा बनता है वह बुद्धिमानों से बनता है। नम्रता और विवेक से ऊँचा बनता है। आज राष्ट्र ऊँचा बनेगा तो विवेक से ऊँचा बनेगा। तुमने और युधिष्ठिर ने और कृष्णा ने शब्दों को स्वीकार नहीं किया, जो कृष्णा के शब्दों को स्वीकार कर लेते तो तुम्हारा राष्ट्र पामर गति को प्राप्त नहीं होता। वह दुर्योधन ने स्वीकार नहीं किया और न तुमने ही किया। इसलिए आज यह दशा है कि यहाँ रक्त की धाराएं गति कर रही हैं। देखो, युद्ध का कांड समाप्त हो गया और मैं भी शरीर को त्यागने वाला हूँ। परन्तु मैं एक वाक्य और प्रकट करता चला जाऊँ कि रावण ने उसके पश्चात् क्या कहा था।

राम ने चरणों को छू कर यह कहा कि प्रभु! धन्य है। आज मुझे दुःख हो रहा है। रावण कहता है हे राम! तुम्हारे राष्ट्र में तुम्हारे पांडित्य में सूक्ष्मता नहीं आनी चाहिए। व्याकरण का बोध होना चाहिए, व्याकरण का ज्ञान होना चाहिए। जिससे तुम्हारे राष्ट्र में पांडित्य सदैव पनपता रहे। पांडित्य ऊँचा बनता रहे। उस पांडित्य से ही राष्ट्र और समाज की रक्षा होती है। और याग जैसे ऊँचे ऊँचे कर्मों की रक्षा होती है। मानव यदि सुगन्धि ला सकता है, और दुर्गंधि को नष्ट कर सकता है। इसलिए व्याकरण की संसार में आवश्यकता है। शब्दों का शोधन करना, शब्दों में आना वे ही शब्द थे रावण के, जो राम के हृदय में अंकित हो गए थे।

हे राम! तुमने यह लंका विजय कर ली है। परन्तु यह लंका विजय नहीं, यह लंका है, आज तुम्हें मेरे सब आक्रमणों का, पराक्रमों का जो भेदन है वह विभीषण ने प्रदान किया। इसमें कोई द्वितीयता नहीं है। आज मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। क्योंकि मैंने अपने जीवन

में दो पाप किए थे जिसको मैं अपने शरीरों में धारण करता रहा हूँ। एक तो राम वह राजा पामर होता है जो दूसरों की पत्नियों को हनन करके राष्ट्र में प्रवेश कराता है। या कोई भी मानव द्वितीय पत्नि को अपने गृह में प्रवेश कराता है और उससे विलासिता की कल्पना करता है। जब मैं ब्रह्म के आश्रम में अध्ययन करता था तो सबसे प्रथम मैंने अपने आचार्य, गुरु की पुत्री पर आक्रमण किया था। वह मुझे शाप दे गई थी। जब मैंने आक्रमण किया और अपनी धृष्टता से जब उसकी मृत्यु होने लगी तो उससे यह कहा था हे वरुण ब्रह्मचारी! तू भी ऐसे विनाश को प्राप्त होगा। तेरा वंश समाप्त हो जाएगा। तो आज मैं दो पापों का अनुभव कर रहा हूँ। एक पाप मैंने गुरु कन्या पर और एक पाप वनचर में जो माता पिता की आज्ञा का पालन करने वाला भयंकर वन में गति कर रहा हो। देखो, उससे तो मैं उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो जाता तो मेरा दुर्भाग्य जागरूक हो जाता। मृत्यु समय इन दोनों शब्दों की विवेचना करता हुआ, व्याकुल होता हुआ प्राणायाम करके रावण ने अपने शरीर को त्याग दिया। राम और लक्ष्मण अपने कक्ष में आ गए।

राम ने कहा बोलो लक्ष्मण कैसा रहा? उन्होंने कहा प्रभु! ये तो महापुरुष थे। परन्तु अपने पापों के कर्मों से स्वतः मानव अपराधों को प्राप्त हो जाता है।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय केवल क्या पितामह भीष्म यह उच्चारण करता हुआ, वह वेद मन्त्रों का गायत्री का जपन करता हुआ नाना ब्रह्म का उपदेश देकर के मृत्यु को विजय करने वाला गायत्री की गोद में प्रवेश हो करके प्राणायाम किया और अपने शरीर को त्याग दिया। और यह कहा कि अब मैं उत्तारयण में पहुंच गया हूँ। मेरा हृदय पवित्र बन गया है। मेरा अन्तरात्मा प्रकाश में चला गया है। सूर्य भी दक्षिणायन से उत्तरायण में आ गया है। बाह्य जगत आन्तरिक जगत दोनों श्रेष्ठ बन गए। इसलिए अब मैं मोक्ष के निकट जाऊँगा। मानो इससे मेरा एक जन्म और होगा और उसमें मैं मौन रह करके मैं मोक्ष को प्राप्त हो जाऊँगा। यह उच्चारण करके अपने शरीर को त्याग दिया।

तो आज का विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! आज का विचार यह कह रहा है कि

मानव मानव को अपने जीवन में महान तप करना चाहिए। तपस्या का परिणाम यह होता है कि स्वेच्छा से मानव शरीर त्यागता है। उसको कोई मृत्यु नहीं दिला सकता। हे मृत्यु! तू संसार को रुला देती है। हे मृत्यु! तू संसार को अपवाद में परणित कर देती है। परन्तु जो मानव यह चाहता है कि मृत्यु कोई वस्तु नहीं मानव शुक्ल पक्ष के क्षेत्र में जा करके शरीर को स्वेच्छा से त्यागता है।

यह है मुनिवरों! हमारा आज का वाक्। हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। आज मैंने तुम्हें कुछ सूक्ष्म चर्चाएं की हैं। मैंने समाज के कर्त्तव्य की भावनाएं लाने के लिए कुछ ज्ञान और विज्ञान में रमण होने के लिए चर्चाएं की हैं। हमारे यहाँ यह जो मोह प्रारम्भ है यह बसन्त कहलाता है। बसन्त काल में हमारे आचार्य, राजाधिराज, कृषक सर्वत्र याग किया करते हैं। प्रकृति को सुगन्धित बनाते हैं। जिससे कृषक और कृषि सुन्दर बन जाए। पवित्र मय हो जाए। यह है बेटा! आज का वाक्। समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा। स्थान मुजक्कीपुर ग्राम समय : दोपहर 2 बजे

८ 20 03 1977 पुष्प 32 पवित्र आहार

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव ममतामय, ममतत्व को धारण करने वाले, जो संसार का नियन्ता है, जो संसार को धारण कर रहा है, वह मेरा देव जो संसार के कण कण में व्याप्त हो रहा है, इस प्रकृति की आभा में रमण करने वाला ऐसा मेरा परम देव है। उसका वर्णन विद्यमान है। जो मानव उसे धारण करता रहता है, वह परम गति को प्राप्त होता रहता है।

तो जाओ पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज का हमारा वेदमन्त्र हमें उस मार्ग के लिए प्रेरणा दे रहा था जिस मार्ग में प्रवेश करने के पश्चात्

मानव का जीवन एक अनुपम बन जाता है। आज का वेदमन्त्र यह कह रहा था कि हे प्रभु! तू इस संसार का नियन्ता माना जाता है। यह संसार आपके नियन्त्रण में रहता है। प्रत्येक मानव का, प्राणी मात्र का आश्रय सूत्र प्राणत्व कहलाया जाता है। जैसे यज्ञशाला में यज्ञमान के सूत्र में सर्वत्र ऋत्विज उसमें निर्वाचित्त किए जाते हैं। क्यों? जब यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान होता है तो वह एक निर्वाचन करता है और निर्वाचन में कहता है कि आओ हे होताओ! हे ऋत्विज तुम मेरे याग को पूर्ण करो। मेरा दो प्रकार का याग माना जाता है। एक भौतिक याग है और दूसरा आध्यात्मिक याग है। वह जो भौतिक याग है उसमें तो तुम मेरे गृह की कामना करो। मेरे गृह में किसी भी प्रकार की सूक्ष्मता न हो। मेरा गृह हर प्रकार से प्रकाशमान रहे, और द्वितीय कामना यज्ञमान यह करता है कि मेरा जो यज्ञशाला का रथ है जिसमें होताजन विद्यमान होते हैं और जिस रथ का स्वामी वह अग्नि देव कहलाया जाता है, हम ऐसी यज्ञशाला में, यज्ञमय जो रथ है उसमें हम विद्यमान हो करके हमारी ऊर्ध्व गति हो, ऐसी हम कामना करते हैं। ऋत्विजों के लिए ऐसा यज्ञमान संकेत कर रहा है। उस संकेत को ले करके जो मानव ऊँची उड़ान उड़ता रहता है तो वह कामना में बद्ध रहता है। क्योंकि वह मेरा जो रथ है वह अग्नि की धाराओं पर विद्यमान होता है और अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यु लोक को प्राप्त होता है। द्यु लोक में प्रवेश करता है मानो वह अन्तरिक्ष लोक में आभा को प्राप्त होता रहता है।

तो मुनिवरों! ऐसा यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में, अपने भौतिक याग की भी कामना करता है। हे ऋत्विजों! हे उदगान गाने वालो! आओ, तुम मुझे यज्ञमान का स्वामित्व निर्वाचन कर रहे हो, मैं इसका स्वामी तो नहीं हूँ, स्वामी तो प्रभु! हैं। क्योंकि प्रभु की भी आभा में यह सर्व जगत अपनी कामना कर रहा है, सर्वत्र जगत अपनी आभा में निहित है! ऐसा यज्ञमान अपने मनोनीत हृदय में कामना करता है और कामना करता हुआ यह कहता है कि यह जो रथ है यह प्रभु का है। मेरे द्वारा जो द्रव्य है यह प्रभु का है। मेरे द्वारा जो भी सम्पदा है पुत्र हो, पुत्री हो जो भी सम्पदा है वह प्रभु की है। मैं तो केवल एक निमित्त हूँ और निमित्त हो करके प्रभु का यह कार्य करूं प्रभु के रथ में विराजमान

हो करके द्यु लोक में, स्वर्ग में जाना चाहता हूँ। मैं मोक्ष के आनन्द को लेना चाहता हूँ। ऐसा कामना यज्ञमान करता है। और ऐसी कामना करके, सबका निर्वाचन करके और वह दक्षिण भाग में अपनी पत्नी को ले करके विद्यमान हो करके कहता है कि हे देवी! तुम प्रभु से याचना करो और प्रभु से यह कहो प्रभु! वश्चत्म् व्रह लोकः यज्ञनमसी वृतम् देवम व्रिरेहः लोकः स्वर्गश्चम ममतव वेदश्चति दुर्गों असुतए। हे देवी! तम यह कहो कि संसार में मेरा जो जीवन है, वह आपके समर्पित है और अपने रथ में विद्यमान हो करके स्वर्ग को जाना चाहती हूँ, स्वर्ग में प्रवेश करना चाहती हूँ। स्वर्गम् ब्रह्मे लोकः। वह सर्वत्र ऋत्विजों को यज्ञमान सपत्नीक आ करके चरण स्पर्श करके निर्वाचन किया करते हैं।

तो बेटा! मैं आज यज्ञशाला के सम्बन्ध में यज्ञमान के कर्म काण्ड में जाना नहीं चाहता हूँ। मैं तुम्हें यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि जो शुद्ध रूप से यज्ञ होता है, शुद्ध रूप से शाकल्य होता है, शुभ महान संकल्प होता है तो उसी संकल्प के आधार पर यज्ञशाला में ऋत्विज और वाणी को उसी आभा में ले जाता है। आज का हमारा वेद का ऋषि यह क्या कहता है मैं आज यह विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। यह कहता है हे यज्ञम् विरेह अकृतम् पुत्राः। पुत्र की कामना करता है और यह कहता है हे आन्तरिक जगत में होने वाले याग में जो मेरा साकल्य है, जिस साकल्य को धारण करके ऋषि गण देवता बन जाते हैं, जिन वनस्पतियों के रस की सुरक्षा करके देव लोक को प्राप्त होते रहते हैं, अहा वह पितर लोकों को प्राप्त होते रहते हैं, ऐसा आज का हमारा यह वेद का वचन कहता है। मैं कर्म काण्ड के सम्बन्ध में विशेष तुम्हें लेजाना नहीं चाहता हूँ। मैं केवल उसकी भावना, उसका उदगान तुम्हें उद्बुद्ध करना चाहता हूँ। जिस उद्गान गाने से मानव के हृदय में एक महत्ता की प्रतिभा प्राप्त होती है। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे। वह अपनी कुछ विवेचना प्रकट करेंगे जो उनका उदार हृदय है मानो विशालता से अपनी विचारधारा को लेते चले जाएंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् तनुमाम हृदश्चम् गते शो सर्वम् यजन्म् यज्ञमानश्चं देवाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव समय समय पर अनुपम

कृपा करते रहते हैंश्रौश्र इनका वाक्य कितना माधुर्यतम होता है कि वह गागर में सागर की कल्पना करके उड़ान उड़ते रहते हैं। जैसे गागर में सागर की वार्त्ता श्राती है परमपिता परमात्मा ने गागर में सागर भर दिया। इसी प्रकार जो बुद्धिमान योगेश्वर होते हैं। वह गागर में सागर की ही कल्पना करते रहते हैं। मैंने श्रपने पूज्यपाद गुरुदेव को बहुत समय पूर्व श्रपने वाक्य प्रकट किए थे। जिस स्थली पर हमारी यह श्राकाशवाणी जा रही है वहाँ यजूर्षि याग पूर्णता में प्राप्त हुश्रा। जब मैं श्रपने उस याग को दृष्टिपात कर रहा था तो मेरा हृदय गद् गद्दो रहा था। मैं उस ब्राह्मण को यह उच्चारण करता रहता हूँ समय समय पर कि हे प्रभु! ऐसे शुद्ध विचारार्थ श्रौर ब्राह्मण के उद्धार वाले ऐसे ब्राह्मण सदैव ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता रहे श्रौर श्रायु में दीर्घता हो। जहाँ मैं ब्राह्मण को यह उच्चारण करूं वहाँ मैं यज्ञमान के लिए एक वाक्य उच्चारण करने के लिए श्राया हूँ। हे यज्ञमान! तू श्रपनी श्राभा में श्राभायित होने वाला बन। क्योंकि नाना जन्म जन्मान्तरों के जो संस्कार हैं श्राज मैं उनको ले करके श्रपने वाक्यों को प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय यह देना है कि जिस स्थली पर हमारी श्राकाशवाणी जा रही है यज्ञमान श्रपनी कुछ कामना को ले करके याग कर रहा है वह कामना देवताश्रों के द्वार पर नृत्य कर रही है श्रौर वह कामना इस वायुमण्डल में श्रग्नि की धाराश्रों पर विद्यमान होकर के श्रपने देवतव को प्राप्त होती चली जा रही है।

मैंने बहुत पुरातन काल में श्रपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा था कि वास्तव में श्राज का जो यह जगत प्रारम्भ हो रहा है यह ऐसा श्रनुपम जगत है जिसकी टिप्पणीकरने में ह्रासता को प्राप्त होता हूँ। हे यज्ञमान! तेरे द्वारा वास्तव में वह सुकृत होना चाहिए। सुकृत तेरे यहाँ उस काल में होगा जब ब्रह्मचरिश्यामी देवतम् ब्रह्म चरिश्यामि घृतोमी पश्चतम् मानो यह नाना प्रकार की श्राभा को श्रपनाने वाले, धारण करने वाले। मेरी तो यह कामना रहती है हे यज्ञमान! तेरी मनोकामना प्रभु सदैव पूर्ण करते रहेंगे, पूर्णता को प्राप्त होती रहेगी। मैं श्रपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रकट कराता रहता हूँ। हे प्रभु! श्राज जो धर्म के मर्म को जानने वाले पुरुष हैं उनका जय जयकार होना चाहिए। उनकी गति ऊर्ध्व में रहनी चाहिए। हे यज्ञमान! तू श्रपनी कामना को प्रभु से प्रार्थना कर रहा

है और कह रहा है कि मेरी कामना यथार्थ हो। परन्तु जब यज्ञ में श्रद्धामयी, मेधामयी, प्रतिभामयी आभामयी नाना प्रकार की आभा को लेकर के अग्नि केसमीप जा करके यज्ञ करता है, हे अग्नि देवता। अग्नि मेरे में वास कर रही है और वास करके जब मुझे प्रकाशमान करेगी तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा। आज इस वाक्य को मैं इसलिए प्रकट कर रहा हूँ यज्ञमान! मेरी सदैव यह कामना रहती है कि तेरी इच्छा प्रभु पूर्ण करेंगे। पूर्णता को प्राप्त हो। सदैव मेरी यह कामना है।

एक समय मैंने अपने पूज्यपाद से यह कहा था कि आप में जो पुत्रेष्टि याग के मन्त्रार्थ हैं, उन मन्त्रों को वायुमण्डल में ओत प्रोत करा दीजिए। उन मन्त्रों को आप मन्त्रणा करके यज्ञशाला में देवताओं का हूत कर दीजिए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने ऐसा कुछ योग की आभाओं में रमण करते हुए ऐसा कहा था कि अभी वह समय नहीं आ पाया है। इन्होंने समय की अभावता का वर्णन किया। ब्रह्मचर्य के आध्यात्मिक सुकृत में प्राप्त होती रही है। आज मैं उस आभा में नहीं ले जाना चाहता हूँ। आज मैं अपने वाक्य केवल इसी आभा में प्रकट करना चाहता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरी मनोकामना पूर्णता को प्राप्त हो। वह समय निकट आ रहा है जैसे वायुमण्डल में देवता प्रसन्न होते हैं ऐसे ही मानव के शरीर में देवता वास करते हैं, और विशेष कामना की प्रवृत्ति, विशेष बलवती होने के कारण, चित्त में प्रसन्नता न रहने से मानव के सुकृत में ह्रासता को प्राप्त होते रहते हैं। हे यज्ञमान! तेरा! हृदय सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। प्रसन्नता को प्राप्त होना चाहिए। जितना भी प्रसन्न होगा, जितना भी आनन्दवत होगा और प्रभु का आश्रय होगा, संसार के भोग विलासों का आश्रय न ले करके तू मेरे चैतन्य देव का जब आश्रय लेगा तो मेरे हृदय में प्रफुल्लता, प्रसन्नता महत्ता की ज्योति तेरे मुखारबिन्दु पर सदैव जागृत रहेगी। आज मैं विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में प्रकट कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे, जिस भी काल में उनके शरण में गया, उसी काल में वह मौन हो गए। परन्तु अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करता रहता हूँ कि मौन रहने का समय नहीं हैं मौन रहना तो एक मानवता है। परन्तु वह समय दूर चला गया है। आज का

विचार मैं यह देने के लिए आया हूँ कि आज का जो वायुमण्डल है उसमें ऐसे तथ्यों की उत्पत्ति हो गई है। हे प्रभु! संसार में, राष्ट्र में समाज में रक्त भरी क्रान्ति के अवशेष उत्पन्न होते चले जा रहे हैं। हे प्रभु! आज की जो राष्ट्रवाद की घोषणा है, आज का जो जीवन है वह जीवन एक ऐसा है जहाँ मानवता का कोई प्रसारण नहीं होता, केवल अमानवता का प्रसारण होता है। उसका मूल कारण है जैसा भारद्वाज मुनि ने कहा है कि विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है। विज्ञान के दुरूपयोग होने पर कर्त्तव्य का पालन नहीं हो रहा है। प्रत्येक मानव के समाज में अधिकार चाहता है। मुझे अधिकार प्राप्त होना चाहिए। जब मैं छात्रों के क्षेत्र में जाता हूँ तो छात्र भी यह चाहते हैं कि मुझे अधिकार प्राप्त हों। पुत्रियों के द्वार पर जब मैं प्रवेश करता हूँ तो वे भी चाहती हैं कि मुझे अधिकार प्राप्त हो। जब और भी मैं राष्ट्रीय कर्मचारियों के द्वार पर जाता हूँ वो भी अधिकार चाहते हैं। परन्तु जब मैं यह कहता हूँ कि तुम कर्त्तव्य का कितना पालन कर रहे हो? तो वे कहते हैं कर्त्तव्य के पालन में कष्ट है और अधिकार की बलवत्ता होती जा रही है। महर्षियों ने पुरातन काल में यह कहा है कि जिस काल में अधिकार अधिकार होने लगता है, अधिकार की पुकार होने लगती है, कर्त्तव्यवाद नष्ट हो जाता है। यह सब विज्ञान के दुरूपयोग की महिमा है। विज्ञान का दुरूपयोग इस राष्ट्र और समाज को अद्योगति में ले जाता है। इसलिए प्रत्येक मानव को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। कर्त्तव्यवाद की वेदी पर विराजमान हो करके उस कर्त्तव्यवाद को लाना चाहिए, जिससे राष्ट्र ऊँचा बने, मानवता में चारित्रिक निर्माण हो जाए, चरित्र की आभा उत्पन्न हो जाए, ऐसा राष्ट्र होना चाहिए। परन्तु मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करता हूँ कि आधुनिक काल का राष्ट्र मुझे ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा है। आधुनिक काल के राष्ट्र में, समाज में रूढ़िवाद है और रूढ़िवाद न तो बुद्धि को ऊँचा बनने देती है, न विद्या का प्रसारण होने देती है, और वह जो रूढ़िवाद है, वह विज्ञान के दुरूपयोग में में लगी रहती है। वह जो रूढ़िवाद है वह स्वार्थवाद में परणित रहता है और जब राष्ट्र में, समाज में रूढ़िवाद बलवान होता है मानो जातिवाद का रूढ़िवाद है, जहाँ सम्प्रदायों का रूढ़िवाद है और भी नाना प्रकार के समाज में रूढ़िवाद हैं वह जो रूढ़ि है वह

समाज को ऊँचा बनने नहीं देती। वह राष्ट्र को ऊँचा बनने नहीं देती। वह राष्ट्र को ऐसे स्थान में ले जाती है। जहाँ अन्धकार ही अन्धकार मुझे दृष्टिपात आता है। आज जो मैं भव्य जगत को, भव्य संसार को दृष्टिपात कर रहा हूँ, वास्तव में तो यह परमात्मा का जगत् है। परन्तु जब मनोनीत के हृदय में यह विचार आता है मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराता रहता हूँ, अपना वाक्य प्रकट करता रहता हूँ कि आधुनिक काल के राष्ट्र की जो विचारधारा प्रारम्भ हो रही है, समाज में जो विचार धारा उत्पन्न हो गई है, वह रक्तभरी क्रान्ति लाए बिना रह न सकेगी। क्योंकि वह रक्त भरी क्रान्ति के अवशेष उत्पन्न होते जा रहे हैं।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि भगवन्! राष्ट्र उस काल में ऊँचा बनता है। जब बुद्धिमानों का निर्वाचन बुद्धिमानों द्वारा नहीं होगा तब तक यह समाज ऊँचा नहीं बनेगा। जिस राजा के राष्ट्र में, जिस समाज में ऐसी पद्धति बन जाती है जिस पद्धति में राष्ट्र का निर्वाचन करने वाला अपठित समाज हो, अपठित समाज कदापि भी ऊँचे और महान राजा को चुनौती प्रदान नहीं कर सकता। मैं पुरातन काल से ही यह कहा करता हूँ। मैंने बहुत से राजाओं का निर्वाचन दृष्टिपात किया है। बहुत से राजाओं को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। परन्तु जहाँ अशिक्षित समाज, जिसको मानव का ज्ञान न हो जातीयता से मानव का या राष्ट्र का निर्वाचन होता हो वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अग्नि के मुख में अवश्त चला जाएगा। अग्नि के अवशेषों की आभाओं के कारण उत्पन्न होते चले जा रहे हैं।

मैंने अपने पूज्य गुरुदेव को कई काल में प्रकट कराते हुए कहा। आज मैं उस क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ। बहुत पुरातन काल में राजाओं का निर्वाचन हुआ तो बुद्धिमानों के द्वारा। अपठित समाज राजा के राष्ट्र में नहीं होना चाहिए। राजा का राष्ट्र बुद्धिमानों का हो। राजा के राष्ट्रीय समाज को राष्ट्रीय अधिकार प्राप्त होना चाहिए। आज के राष्ट्रवाद में यह अधिकार स्वीकार कर लिया है कि हमारा निर्वाचन हो रहा है। परन्तु अधिकार तो विद्यालयों में प्राप्त होता है। अधिकार राज्य अपनी स्थली पर समाज को अधिकार नहीं दे सकता। अधिकार तो विद्यालयों में प्राप्त होता है। जब आचार्य उनके वर्णों का

निर्वाचन करता है, यह ब्राह्मण है, यह वैश्य है, यह शूद्र है, क्षत्रिय है आदि का निर्वाचन होता है तो उनको विद्यालयों में अधिकार प्राप्त होता है। अरे, आधुनिक जगत में मैं दृष्टिपात कर रहा हूँ कि ियों में तो अधिकार प्राप्त होता नहीं, और एक निर्वाचन की पद्धति पर उन्हें अधिकार देना चाहते हैं। यही तो समाज के विनाश का एक समय बनता चला जा रहा है। वहीं तो मानों अग्नि के काण्डों का प्रसंग बनता चला जा रहा है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था, आचार्यों से कहा था कि यहाँ राष्ट्र को कैसे उन्नत बनाया जाए। उन्होंने कहा कि छात्राबल ऊँचा होना चाहिए। शिक्षा प्रणाली पवित्र होनी चाहिए। चारित्रिक निर्माण होने चाहिए। जब तक चारित्रिक निर्माण नहीं होंगे, शिक्षा की पद्धति ऊर्ध्व में जाने वाली नहीं होगी। तब तक मानव को अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। अधिकार प्राप्त उस काल में होता है जिनका निर्वाचन विद्यालयों में होता है। आचार्य जिनको चुनौती प्रदान करता है। उन्हीं महापुरुषों के द्वारा उन्हीं ब्रह्मचारी देवताओं के द्वारा राष्ट्र का निर्वाचन होना चाहिए। राष्ट्र की पद्धति बननी चाहिए। वह पद्धति समाज को ऊँचा बनाती है। तो आज मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा था आधुनिक काल आहार और व्यवहार दोनों को भ्रष्टता को प्राप्त हो रहे हैं। उसी से अशान्ति हो रही है। आज मैं इस विचारधारा में ले जाना नहीं चाहता हूँ।

आज मैं उस वाक्य को पुनरुक्ति देना चाहता हूँ। आज मैं यज्ञशाला की चर्चा प्रकट कर रहा था। हे यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ होना चाहिए। तुम दम्पत्ति बन करके अपने गृह में रहो। तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति भी प्रभु की कामना, प्रभु की इच्छाओं से वह पूर्णतः को प्राप्त होती रहे। मेरी तो सदैव एक ही कामना होती है यज्ञमान! तेरे गृह में पुष्पांजलियों की आभा प्राप्त होती रहे। जिससे तेरे जीवन में आयु में दीर्घता आ जाए। आयु में एक महत्ता आ जाए। उसी से एक जीवन ऊँचा बनता है, महान बनता है।

आज मैं अपनी यज्ञशाला को दृष्टिपात कर रहा था यज्ञमान जब तू निष्ठा से इस कार्य को करता है मेरा अन्तरात्मा गद् गद् होता है। परन्तु ज्ञान न रहने के कारण कर्म कांड

में व्रत की न्यूनता रह जाती है। उसमें कोई बात नहीं न होने से होना बहुत ही प्रियतम माना जाता है। हे ब्राह्मण! तेरा उद्गान पवित्रवत हो। मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्बन्ध में कुछ चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। मेरे पिता ने, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज से बहुत पुरातन काल में एक पद्धति का निर्माण किया था। जिस याग में जो वेदों में से पुष्प होते हैं, उनको निकाला जाता है। उनसे पुत्रेष्टि याग का चलन होता है। पुरातन काल में वह चलन होता रहा। अब वर्तमान में ब्रह्मणत्व सूक्ष्म तत्त्व को प्राप्त हो गए हैं। वह अनुसन्धान की प्रवृत्ति न रही। अनुसन्धान की प्रवृत्ति क्यों नहीं रही? क्योंकि राष्ट्र का जो चयन है वह पवित्र नहीं है। जब राष्ट्र का चलन पवित्र होता है तो भिन्न भिन्न यागों पर अनुसन्धान होते हैं। भगवान राम के समय में भिन्न भिन्न यागों का चलन होता रहा है, अनुसन्धान होता रहा है। आधुनिक जगत यह कहता है कि यह सब तो पुरातन की वार्त्ता हैं। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि संसार में जो मानवीय जीवन है, चारित्रिक निर्माण है जो समाज को ऊँचा बनाता है, वे सब विचार नवीन रहते हैं। उसमें वृद्धपन नहीं होता। यदि उसमें वृद्धपन आ गया है तो मानव का क्या है? नवीन विद्या कोई नहीं होती, नवीन कोई शिक्षा नहीं होती, सर्वत्र शिक्षा में एक महत्ता होती है परन्तु उसमें बुद्धिमानों से शिक्षा का निर्वाचन होता रहा है।

मैंने बहुत पुरातन काल में अपना वाक्य प्रकट कराते हुए अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा है कि वास्तव में हे यज्ञमान! तेरी कामना सदैव पूर्ण हो मेरी यह कामना है। हे ऋत्विजो! यज्ञशाला में विराजमान होने वाले ब्राह्मण! उद्गान गान गाने वालों! तुम्हारी आयु दीर्घ हो, तुम जीवन मुक्त की आभा को प्राप्त होते रहो। हे यज्ञमान! तू अपने गृह को प्रकाशमान बनाता रहेगा तो तेरे जीवन की धारा पवित्र बनेगी यह मेरी सदैव कामना बनी रहती है। इसके पश्चात् अब मैं अपने पूज्य गुरुदेव से आज्ञा चाहूँगा।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने विचार कुछ व्यक्त किए। इनके विचारों में एक बिडम्बना रहती हैं कहीं राष्ट्र राष्ट्र की विडम्बना है, कहीं यज्ञ की विडम्बना है, नाना प्रकार की विडम्बना रहती हैं। चलो विडम्बना में कोई महत्ता होती है। राष्ट्रवाद की एक इन्होंने सुन्दर चर्चा की है। वह समय समय पर हमारा क्रियात्मक

जीवन चलता रहा। क्योंकि निर्वाचन की जो पद्धति है वह हमारे यहाँ परम्परा से मानी गई है। परन्तु निर्वाचन का किस को अधिकार होता है? यदि अनाधिकारी निर्वाचन करता है तो वह अनधिकार का ही निर्वाचन होता है। निर्वाचन में एक पवित्रता होती है और वह जो निर्वाचन की पद्धति है वह अरबों वर्षों से चली आ रही है। क्योंकि परमात्मा ने प्रकृति का निर्वाचन किया। उसके पश्चात् समाज और राष्ट्र का निर्वाचन किया। उसके पश्चात् वर्णों का निर्वाचन हुआ। उसके पश्चात् विद्यालयों में आर्य जन अपने ब्रह्मचारियों का निर्वाचन करते हैं। और वही आचार्य, वही बुद्धिमान राष्ट्र का निर्वाचन करते हैं राष्ट्र में निष्पक्षता रूढ़ि का न रहना यौगिकता का वहाँ प्रसार वह राष्ट्र और समाज को ऊँचा बना सकती है। उसमें अधिकार रहता है, अनाधिकारी का निर्वाचन न करो। अनधिकार से समाज अद्योगति को प्राप्त हो जाता है। अधिकारी को महान बनाने से ऊँचा बनेगा। विचार आता है कि अधिकारी को कैसे निर्वाचन किया जाए। देखो, उसको बुद्धिमान जानते हैं। जैसा मैंने इससे पूर्व काल के वाक्यों में कहा था कि ज्ञान के द्वारा ब्राह्मण उसकी परीक्षा के लिए जाते है। जब यज्ञमान का निर्वाचन किया जाता है तो यज्ञमान के द्वारा ब्राह्मण जाते हैं और यज्ञमान से प्रश्न करते हैं यदि यज्ञमान महान बुद्धिमान नहीं होता तो यज्ञ सुन्दर और सफलता को प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार राष्ट्र में राष्ट्रीय एक वेदी है और राजा अश्वमेध याग कर रहा है। बुद्धिमान जाते हैं और राजा का निर्वाचन करते हैं। ब्राह्मण चुनौती प्रदान करते हैं। विवेकी पुरुष जब कोई निर्वाचन करते हैं तो वह अश्वमेध याग करता है। आज मैं विशेष चर्चा में जाना नहीं चाहता हूँ। यह वाक्य जैसा मेरे पुत्र ने वर्णन कराया है, हे यज्ञमान! परमात्मा को साक्षी करते हुए तेरी कामना प्रभु पूर्ण करेंगे। ऐसी सदैव हमारी कामना हैं तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, जीवन की धाराएं महत्ता को प्राप्त होती रहें। परन्तु कुछ समय तक मानव को संयमा गृति अथवा राष्ट्रती अज्ञातम् मानो अपने जीवन में तपस्या में परिणत होने के लिए मानव को तप की आवश्यकता रहती है। उस समय मानव महत्ता को प्राप्त होता है। जब गृह का प्रारम्भिक जीवन अशुद्ध हो जाता है तो गृह मानो अशुद्ध हो जाता है। वह गृह ऊँचा नहीं बनाता। इसी प्रकार मानव का जीवन जब प्रारम्भिक जीवन समाप्त

हो जाता है मानो भ्रष्ट हो जाता है। तो उस जीवन के लिए पुनः तप करने की आवश्यकता होती है। पुनः महान बनाने की आवश्यकता होती हैं तो मैं परमपिता परमात्मा को साक्षी करता हुए यह उच्चारण करने आया हूँ कि हे यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ हो और तेरे जीवन की इच्छाएं पूर्ण होती रहें। जैसा महानन्द जी ने कहा मैंने उसी के ऊपर टिप्पणियां की हैं। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है कि धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए। मानवता ऊँची बननी चाहिए। जिससे मानव समाज में एक आभा, एक पवित्रता उत्पन्न हो जाए। उसी पवित्रता से मानव समाज ऊँचा बनता है। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। निवास स्थान श्री ब्रजेश कुमार त्यागी समय प्रातः 10 00 बजे ग्राम ईकड़ीजिला मेरठ (उत्तर प्रदेश)

९ 25 03 1977 पुष्प 32 संसार धर्म क्षेत्र

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। प्रत्येक वेद मन्त्र, प्रत्येक लोक तथा लोकांतर उस परमपिता परमात्मा की गाथा का वर्णन कर रहा है। जब हम लोक लोकांतरों की आभा में रमण करने लगते हैं तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात होने लगता है जैसे वह जो मेरा परमपिता परमात्मा संसार का नियन्ता है, अथवा निर्माण करने वाला है वह इतना महान है, जो लोक लोकांतरों का संचालन कर रहा है। प्रत्येक लोक तथा लोकांतर उस परमपिता परमात्मा के नियन्त्रण में परिक्रमा कर रहा है। एक दूसरा मण्डल एक दूसरे मण्डल की परिक्रमा कर रहा है। जिस प्रकार एक परमाणु दूसरे परमाणु को गति दे रहा है इसी प्रकार नाना लोक लोकांतर उस परमपिता परमात्मा की गाथा का वर्णन कर रहे हैं।

आज मैं तुम्हें ऐसे युग में ले जाना चाहता हूँ, ऐसी विज्ञानशाला में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ नाना ऋषिवर विद्यमान हो करके, नाना प्रकार का विचार विनिमय करते रहे हैं।

मेरे पुत्रो! मुझे वह काल स्मरण आने लगता है जिस काल में ब्रह्मवेत्ता विद्यमान हो करके अपना विचार विनिमय करते रहे हैं। संसार के सम्बन्ध में नाना ऋषि विद्यमान हैं, नाना दार्शनिक यही विचारते रहे हैं कि यह संसार क्या है? नाना ऋषियों ने इस संसार के सम्बन्ध में नाना प्रकार की कल्पनाएं की हैं क्योंकि जो ऋषि होते हैं वे मन्त्र दृष्ट होते हैं। मन्त्र को साक्षात्कार करने वाले होते हैं। इसमें महर्षि स्वेतकेतु ने एक समय यह कहा था कि यह संसार क्या है? इसके उत्तर में नाना ऋषियों ने अपनी भिन्न भिन्न कल्पनाएं कीं। नाना प्रकार की उड़ान उड़ने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि यह जो संसार है, यह धर्म क्षेत्र है। यहाँ प्रत्येक मानव धर्म और मानवता को जानने के लिए आया है। द्वितीय दार्शनिक कहता है नहीं यह संसार तो विज्ञानशाला है, यहाँ प्रत्येक मानव वैज्ञानिक बनने के लिए आया है। आदि ऋषियों ने कहा है कि नहीं यह संसार तो मृत लोक है। यहाँ प्रत्येक मानव मृत्यु को प्राप्त होता है, और मृत्यु के सम्बन्ध में विचारता रहता है, और भयभीत रहता है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। परन्तु दार्शनिक यह नहीं कहता कि मृत्यु है। वेद का ऋषि यह कहता है विशशचम ब्रह्म व्यापकम देवतम् मृत्यु हननतम देवाः। वेद का आचार्य कहता है नहीं यह संसार तो मृत्यु को विजय करने का क्षेत्र है। यहाँ प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि जो आया है, वह मृत्यु को विजय करने के लिए आया है। मृत्यु के अभाव में लगा हुआ है कि मृत्यु का अभाव है, मृत्यु कोई वस्तु नहीं है।

मेरे पुत्रो! तो आदि ऋषियों ने कहा कि नहं यह संसार जहाँ मृत्यु को विजय करने का क्षेत्र है, वहाँ एक प्रकार की यज्ञशाला है। यहाँ प्रत्येक मानव यज्ञ कर्म करने के लिए आया है। वह याज्ञिक बनने के लिए आया है। वह कर्म करने के लिए आया है। प्रत्येक मानव को यज्ञ करना है। अपने जीवन को यज्ञमय परणित कर देना है। आदि ऋषियों ने नाना प्रकार की कल्पना करके बहुत ऊँची उड़ान उड़ी है। आज मैं तुम्हें एक उड़ान उड़ने के लिए आया हूँ। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा में ले जाना नहीं चाहता हूँ, केवल एक उड़ान उड़ने के लिए आया हूँ। एक एक वेदमन्त्र के ऊपर उड़ान उड़ी जाए तो एक महत्ता का कार्य हो जाता है। परन्तु जब हम ऊँची उड़ान उड़ने का प्रयास करते हैं तो

प्रायः ऐसा दृष्टिपात होता है कि हम परमपिता परमात्मा की विज्ञानशाला में विद्यमान हैं, परमात्मा के क्षेत्र में विद्यमान हैं। तो इसीलिए हम परमात्मा की प्रतिभा अथवा उसके विज्ञान को, महत्ता को जानना है।

तो पुत्रो! आज मैं तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ मेरे प्यारे! महानन्द जी बारम्बार मुझे प्रेरणा देते रहते हैं। आज उनकी प्रेरणा यह है कि रमक व्रही लोकम व्रेह लोकाः विशशचम ब्रह्म लोकाः। त्रेता में ऋषि मुनि का क्या विचार विनिमय करते रहे हैं। तो मेरे प्यारे! आओ मैं तुम्हें ऋषि मुनियों के उस काल में ले जाना चाहता हूँ जहाँ महर्षि विभाण्डक महर्षि शमीक और महर्षि दालभ्य, महर्षि सोमवृत्तिका, महर्षि वैशमपायन आदि नाना ऋषिवर विद्यमान थे। वैशम्पायन का जो गोत्र था वह शाण्डिल्य वृत्ति गोत्र कहलाता था और शाण्डिल्य गोत्र में उनका जन्म हुआ। यूं तो एक नामकरण के नाना ऋषि हुए हैं। शाण्डिल्य गोत्र में भी नाना ऋषि इस प्रकार के हुए हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि यह जो शाण्डिल्य गोत्र कहलाता है इस शाण्डिल्य गोत्र का निकास ददड़ीय गोत्र से माना है। और दद्दीय गोत्र का जो निकास है वह हरिवारणकेतु से इसका विकास माना है। क्योंकि उद्धालक गोत्र का निकास इसी से माना है। उन सब गोत्रों का जो निकास हुआ, वह ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा से हुआ। अथर्वा ब्रह्म के पुत्र कहलाते थे। अथर्वा वेद का दृष्टा कहलाते थे।

बेटा! आज मैं गोत्रों में जाना नहीं चाहता हूँ और न वंशों का वर्णन करने जा रहा हूँ, केवल विचार विनिमय यह कि हमारे यहाँ जो वैशम्पायन जो ऋषि हुए हैं वास्तव में नाना ऋषि एक ही नामकरण के होते रहे हैं। परन्तु वह वैशम्पायन कजली वनों में रहते थे, और कजली वनों में विचार विनिमय करते रहते। गंगा के तट पर विद्यमान हो करके और अध्ययन करने के जो उनकी ऊषा वृत्ति थी उससे वे केवल ऊँची उड़ान रहते थे। नाना चित्रावलियों की उड़ान उड़ते रहते। एक समय मध्य रात्रि का काल था, उस समय उन्हें एक वेदमन्त्र स्मरण आया। वेद का अध्ययन कर रहे थे। तो वह मन्त्र कौन सा था? विशशचम् वृही लोकाः चित्रम रथाः व्यापकम दधि वृत्तम दधि ग्रहणातम अस्तम गृहणानि। उन्हें यह वेदमन्त्र स्मरण आया। मन्त्र का भाव यह कि मानव नाना

प्रकार की चित्रावलियों का दिग्दर्शन करता रहता है और वह जो नाना प्रकार की चित्रावलियां हैं उन्हीं में सदैव रत्त रहता है तो हमें नाना प्रकार की चित्रावलियों का दिग्दर्शन करना चाहिए।

तो मुनिवरों! देखो,! नाना प्रकार की चित्रावलियों का जो दिग्दर्शन वेद में आया तो उन्हें पुनः एक वेदमन्त्र स्मरण आया और वह वेदमन्त्र क्या था ब्रह्मचरिश्यामि घृणातम देवो देवतम मामात्री लोकाः चरित्रम विरेह लोकाः वस्तम वी ही ब्रह्म ब्रह्मचरिश्यामि लोकाः। वेद का ऋषि कितनी ऊँची उड़ान उड़ रहा है। कितनी ऊर्ध्व गति में जाने का प्रयास कर रहा है। वह कहता है ब्रह्मचरिश्यामि। हम ब्रह्मचरिश्यामि बनना चाहते है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह कल्पना रहती है कि मैं ब्रह्मचरिश्यामि बनना चाहता हूँ। मैं ब्रह्म को साक्षात्कार करना चाहता हूँ। ब्रह्म को अपने समीप लाना चाहता हूँ। मैं प्रभु के समीप चला जाऊँ, प्रभु के समीप जा करके उस आनन्द को प्राप्त करूं जिस आनन्द के लिए मानव सदैव कटिबद्ध रहता है और यह विचारता है कि आनन्द प्राप्त हो और आनन्दवत बनना चाहता है।

तो पुत्रो! मुझे जब वह काल स्मरण आने लगता है तो बेटा! हृदय गद्गद हो जाता है। मैं कहा करता हूँ कि धन्य हैं, ऐसे विचारक होने चाहिए संसार में जो विज्ञान की ऊँची उड़ान उड़ने वाले हों, वेद की प्रिय उड़ान उड़ने वाले हों। यह उड़ान उड़ते हुए कि कैसे मानव नाना प्रकार की चित्रावलियों का निर्माण कर सकता है। नाना चित्रावलियों में एक वेदमन्त्र उन्हें स्मरण आया कि यज्ञमानः गतम प्रजाम देवाः हिरणायम गच्छम अन्तरिक्ष लोकाः रथि वित्त व्रिहे यज्ञमान! ः।

बेटा! वेद में एक मन्त्र नहीं है नाना मन्त्र हैं परन्तु मन्त्रों के दृष्टा कौन? ऋषि कहलाते हैं। वैशम्पायन यह विचारने लगा कि वेदमन्त्र यह कहता है कि यज्ञशाला में यज्ञमान विद्यमान है, पत्नी विद्यमान है, नाना ऋत्विज विद्यमान हैं। यह रथ बन करके अन्तरिक्ष को प्राप्त होता रहता है। यह विज्ञान क्या वैदिक विज्ञान कहलाता है? यह मानवीय विज्ञान कहलाता है? जिसके लिए मानव को सदैव पिपासा बनी रहती है और यह उत्कट इच्छा रहती है कि मैं संसार का महान वैज्ञानिक बनना चाहता हूँ। मेरी प्यारी

माता यह विचारती रहती है कि मैं वसुन्धरा बनना चाहती हूँ, यह संसार मेरे में वशीभूत हो जाए और मैं संसार के गर्भ में परिणित हो जाऊँ।

आज के वेद मन्त्रों में माता वसुन्धरा की याचना आ रही थी। हे माँ तू वसुन्धरा कहलाती है, अपने गर्भ में तू धारण करने वाली है। क्या धारण करती है? हे मां! तू इस संसार को अपने में धारण करने वाली है। धारण किसे करती है? मेरे पुत्रो! हम जैसे प्यारे पुत्र माता के गर्भस्थल में विद्यमान रहते है। हे मां! जब यह पुत्र तेरे से उत्पन्न हो जाता है तो मेरी भोली माँ को तो प्रतीत नहीं होता कि कौन निर्माण कर रहा है? कौन निर्माणवेत्ता है? मेरे प्यारे! वह निर्माण वेत्ता मेरा चैतन्य देव कहलाता है। मानव के शरीर में 72, 72, 10, 202 नाड़ियां कहलाती हैं परन्तु रचयिता कौन है? वह मेरा चैतन्य देव है, जो इस संसार का रचयिता है, निर्माण कर रहा है। वह निर्माण वेत्ता है। आज मैं इस महान क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ यह तो विचारों का वन है, नाना प्रकार के विचार आते रहते हैं। मैं उन विचारों में विशेष जाना नहीं चाहता हूँ। केवल विचार यह देने के लिए आया कि वैशम्पायन अपने आश्रम में विद्यमान हो करके चिन्तन कर रहे थे। चिन्तन करते हुए प्रातःकाल हो गया। नाना ऋषि उनके आश्रम में आए। महर्षि विभाण्डक, महर्षि शौनक महर्षि सोमभानतु आदि ऋषि उनके आश्रम में आ पहुंचे। आने के पश्चात् उनसे कहा कि भगवन्! आप क्या चिन्तन कर रहे हैं? वेद का ऋषि कहता है कि आज मैं इन मन्त्रों के ऊपर अध्ययन कर रहा हूँ, चिन्तन कर रहा हूँ और यह विचार रहा हूँ कि वास्तव में यह नाना प्रकार का चित्रण कैसे हो सकता है। मैं उन चित्रावलियों का दिग्दर्शन करना चाहता हूँ। जिन चित्रावली में यज्ञमान अपने रथ में विद्यमान होकर के द्यु लोक को प्राप्त होता है, अन्तरिक्ष लोकों को प्राप्त होता है, मैं उस रथ को साक्षात्कार दृष्टिपात करना चाहता हूँ।

मेरे पुत्रो! नाना ऋषियों की चर्चाएं थीं। विचार विनिमय होता रहा कोई निबटारा नहीं हुआ। अगला दिवस आ गया। मध्य रात्रि आ गई। अगली मध्य रात्रि में ऋषियों ने यह विचारा कि अयोध्या में चलते हैं और भगवान राम के समीप जा करके हम एक याग की याचना करेंगे, और वहाँ महान नाना वैज्ञानिक ऋषि होंगे और नाना ऋषियों को

निमन्त्रण दे करके हम जानना चाहेंगे कि यह वेद का मन्त्र यथार्थ है? अथवा यह बुद्धिमानों की कल्पना है? या वेदमन्त्र ही ऐसा काल्पनिक माना गया है? ऋषि मुनियों ने यह स्वीकार कर लिया। नाना ऋषि कजली वन को त्याग करके और मध्य रात्रि में ही उन्होंने वहाँ से गमन किया। भ्रमण करते हुए प्रातः काल के समय अयोध्या में जा पहुंचे अयोध्या की यह नियमावली बनी हुई थी कि आचार्य विद्यमान हैं, कौन? महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, और भी वेद का उदगान गाने वाले, स्वरों के गान गाने वाले, जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, उदात्त, अनुदात्त, नाना प्रकार से वेदों की ध्वनि देने वाले भगवान राम के यहाँ एक सुन्दर यज्ञशाला विद्यमान है। उस यज्ञशाला में प्रातःकालीन नाना मन्त्रीगण, राम लक्ष्मण, भरत इत्यादि याग किया करते थे। जब ऋषि मुनियों का आगमन हुआ तो राम याग करने के पश्चात कुछ उपदेश चल रहा था। राम कहते थे कि हम अपने समाज को अपनी मानवता को ऊँचा बनाना चाहते हैं। वेदमन्त्र यह कहता है कि मानवता ऊँची होनी चाहिए। मानवता कैसे ऊँची बनेगी? मानवता उस काल में बनती है जब मानव के द्वारा धर्म होता है और धर्म मानव की इन्द्रियों पर संयम नहीं करेगा तब तक वह धर्म के मर्म को नहीं जानेगा। इसलिए प्रत्येक मानव धर्म के मर्म को जानने वाला हो। ऐसा भगवान राम अपनी यज्ञशाला में उपदेश दे रहे थे, और मन्त्रियों से उच्चारण कर रहे थे कि हमारा जीवन राष्ट्रीयता में गुथा हुआ रहना चाहिए। ओर उसमें धर्म रहना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र धर्म के लिए होता है, धर्म राष्ट्र के लिए नहीं होता। राष्ट्र जो होता है वह धर्म के लिए होता है। क्योंकि राष्ट्र का जो निर्माण हुआ है, वह धर्म की रक्षा करने के लिए होता है इसीलिए राजा का जो निर्वाचन होता है वह धर्म की रक्षा के लिए होता है। राजा अपने में यह विचारता रहे कि मुझे अपने राष्ट्र को, समाज को, प्रजा को धर्म के क्षेत्र में लाना है, धर्म को ऊँचा बनाना है।

विचार आता है कि धर्म क्या है? मेरे पुत्रो! वे कहते हैं, वेद के आचार्य कहते हैं कि धर्मायज्ञम् लोकाः। धर्म उसे कहते हैं जो मानव की इन्द्रियों में स्वतः विद्यमान रहता है। मानव की वाणी का धर्म है सत्य उच्चारण करने का। श्रोत्रों का धर्म है सत्य वाक् श्रवण करने का, नेत्रों का धर्म है रूप को दृष्टिपात करना है। प्रत्येक इन्द्रियों में धर्म सामग्री

विद्यमान है। इस सामग्री का साकल्य बना करके और विवेकी पुरुष जितने भी होंगे समाज में उतना समाज पवित्र बनता चला जाएगा। समाज में मानवता आती चली जाएगी वेद के आचार्यों ने कहा है कि विज्ञान मानव के द्वारा होना चाहिए परन्तु उस विज्ञान में दुरूपयोगिता नहीं आनी चाहिए।

भगवान राम कहते थे कि राजा रावण के राज्य को हमने विजय किया। परन्तु हमें यह प्रतीत है कि वहाँ कितना विज्ञान था। उनके यहाँ ऐसे ऐसे यन्त्र विद्यमान थे जिन यन्त्रों में विद्यमान होकर के मंगल की क्या बुद्ध और शुक्र आदि लोकों की यात्रा करने वाले यान विद्यमान थे। परन्तु उस विज्ञान के युग का क्या बना? क्योंकि उसमें चरित्र, धर्म और मानवता न थी। इसलिए धर्म होना चाहिए। राम यह उपदेश दे रहे थे कि ऋषियों का आगमन हुआ और राम ने यह उपदेश समाप्त करके चारों विधाताओं ने नत मस्तिष्क होकर के यह कहा कि भगवन! आपका आगमन किस प्रकार हुआ? क्योंकि प्रातःकालीन कोई सूचना नहीं यह तो हमारा सौभाग्य है कि ब्रह्मवेत्ताओं के दर्शन हो रहे हैं। परन्तु हम यह नहीं जान पाए हैं कि बिना सूचना के प्रातः कालीन समय में आपका यह आगमन कैसे हुआ है? ब्रह्मवेत्ताओं का राजा के राष्ट्र में आगमन क्यों हुआ है? हम यह जानना चाहते हैं।

राम ने जब यह कहा तो वैशम्पायन ऋषि और महर्षि विभाण्डक दोनों बोले। हे राजन! हम इसलिए तुम्हारे राष्ट्र में आए हैं कि हम कुछ वेद मन्त्रों का अध्ययन कर रहे थे? और अध्ययन यह हो रहा था अथं देवत्तं रथं यज्ञमानः। रथं देवत प्रभे द्यु लोकाः। यज्ञमान का रथ जो है वह द्यु लोक को जाता है। उसको जानने के लिए आए हैं कि तुम एक याग करो और उस याग कर्म को हम दृष्टिपात करेंगे उस याग में हम दृष्टिपात करेंगे कि आज याज्ञा देवतम लोकाः याग आगा रुद्रम भागाः ब्रह्मचरिश्यामि। हे प्रभु! संसार में जो त्याग भाव मानो ब्रह्म को प्राप्त करता है। यह वेद का मन्त्र कहता है आज याग ब्रह्म लोकाः! मानो जो जानता है वह ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है। तो हे प्रभु! हम जानना चाहते हैं कि वह कैसे प्राप्त होता है। हम यही जानना चाहते हैं कि रथ कैसे

बनता है।
मेरे पुत्रो! मुझे वह काल स्मरण आने लगता है तो हृदय गद् गद् हो जाता है। मैं यह कहा करता हूँ कि धन्य है ऋषि की आभा को जिन्होंने इस विज्ञान को जाना। भगवान राम को जब ऋषियों से यह वाक्य पाया तो नाना ब्रह्मणों को आज्ञा दी कि तुम याग का आयोजन करो। याग की रचना करो, यज्ञशाला का निर्माण होना चाहिए। तो यज्ञशाला का निर्माण होने लगा। जब यज्ञशाला का निर्माण होने लगा तो नाना रूपों से यज्ञशाला का निर्माण हो रहा था। जैसे ब्रह्मपुरी की रचना हो रही हो, जैसे ब्रह्म का आसन यही आने वाला हो, ऐसी सौन्दर्यमयी यज्ञशाला का निर्माण किया। उस समय नाना ब्राह्मण विद्यमान हो गए। यज्ञशाला पूर्ण हो गई। वैशम्पायन, भिण्डी ऋषि, महर्षि विभाण्डक आदियों का वहाँ आगमन हुआ। वैशम्पायन उस याग के उद्गाता बने और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज उस याग के पुरोहित बने। अध्वर्यु उद्गाता आदि बन करके अब याग का प्रारम्भ भी होने वाला था। देखो, महर्षि वाल्मीकि इत्यादि का आगमन हो गया। हमारे यहाँ पुरातन काल में यह नियम माना गया है, राजा सगर से लेकर के नाना जो वंशावली चली आई। रघुवंश में यह नियम था कि यदि राष्ट्र गृह में कन्या होती मानो विदुषी होती उससे जब भी सन्तान की उत्पत्ति होती। वह आयुर्वेदाचार्यों के आश्रम में होती, आयुर्वेद विद्यालयों में हुआ करती। वहाँ आयुर्वेद की शिक्षा महान कहलाई जाती है। मुझे वह काल स्मरण है महर्षि बाल्मीकि आयुर्वेद के महान पंडित थे, आयुर्वेद के मर्म को जानते थे, आयुर्वेद की औषधियों को जानते थे। वे ऐसी ऐसी औषधियों को जानते थे कि मानव के शून्य हृदय में गति उत्पन्न कर देते थे।
आज मैं विशेष चर्चा में जाना नहीं चाहता हूँ। महर्षि वाल्मीकि वहीं यज्ञशाला में विद्यमान हो गए और सीता विदुषी दक्षिण विभाग में विराजमान हो गई, और याग प्रारम्भ होने लगा। जब याग प्रारम्भ होने लगा तो प्रथम मन्त्र वेद का कहता था अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्यं देव मृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्। द्वितीय मन्त्र यह कह रहा था चित्रम् वृधा दिव्यम् लोकाः हिरण्यम् गच्छम देवो हिरण्यम प्रभा।
मेरे पुत्रो! जब वेदमन्त्र यह कह रहा था तो भगवान राम स्वस्ति इत्यादि को पूर्ण करने

के पश्चात् जब अग्न्याधान करने लगे तो राम कहते हैं शान्त हो जाओ। नाना ब्रह्मवेत्ताओं से बोले कि वेदमन्त्र यह कहता है कि यज्ञमान का रथ द्यु लोक को प्राप्त होता है। मैं उस द्यु लोक को जाने वाले रथ का साक्षात्कार करना चाहता हूँ। जब नाना ऋषिवर मौन हो गए और वैशम्पायन भी मौन हो गए और विभाण्डक मुनि भी मौन हो गए। वशिष्ठ मुनि भी मौन हो गए। मौन हो जाने के पश्चात् यह विचारा कि अब क्या उत्तर दे सकते हैं। कोई उत्तर नहीं बन पाया। इतने में महर्षि भारद्वाज आ पहुंचे। महर्षि भारद्वाज के द्वारा ब्रह्मचारी सुकेता ब्रह्मचारिणी शबरी, महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिल्य, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेवक आदि आदि ऋषि विद्यमान हैं। यह विचार विनिमय करते आ रहे थे कि आज हम भगवान राम के याग को दृष्टिपात करना चाहेंगे और याग में कुछ प्रश्न करेंगे। दृष्टिपात किया कि वह याग शून्यता को प्राप्त हो रहा है। महर्षि भारद्वाज कहते हैं हे राम! तुम याग क्यों नहीं प्रारम्भ कर रहे हो? वे कहते हैं प्रभु! वेद का मन्त्र कहता है चित्रम वृथा दिव्यम लोकाः यज्ञमाना रथि देवम वृधि व्यापकम् द्यु लोकाः। हे प्रभु! वेद का मन्त्र यह कहता है कि यज्ञमान का रथ बन करके चित्रावलियों में रथ द्यु लोकों को प्राप्त होता है। यज्ञमान द्यु लोक को प्राप्त होता है, रथ में विद्यमान हो करके मैं उस चित्र को दृष्टिपात करना चाहता हूँ।

मेरे पुत्रो! मुझे वह काल जब स्मरण आता है तो हृदय गद्गद हो जाता है कि ऋषि मुनियों ने कितना अध्ययन किया। एक एक मन्त्र के ऊपर उन्होंने तप किया है। महर्षि भारद्वाज ने अपने ब्रह्मचारी सुकेता और शबरी दोनों से कहा कि आओ और अपनी विज्ञानशाला से नाना चित्रावलियों को लाओ। मानो उन्हें दृष्टिपात कराएंगे। वह ब्रह्मचारी सुकेता शबरी अपने उस आसन से भ्रमण करते हुए वह अपने आश्रम में जा पहुंचे। विज्ञानशाला में अपने यान को लेकर के प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए वह अयोध्या में आ गए और वह यान उस यज्ञशाला में आ पहुंचा और नाना चित्रावलियों का दिग्दर्शन कराने लगे, और दिग्दर्शन कराते हुए कहा हे राम! दृष्टिपात करो। अब तुम इस विज्ञानशाला में आ जाओ, तुम अपनी यज्ञशाला को प्रारम्भ करो, वेदमन्त्र उच्चारण करो

स्वाहा दे करके तुम मेरी यज्ञशाला में नाना प्रकार के चित्र दृष्टिपात करो।

महर्षि भारद्वाज के यहाँ ऐसे यन्त्र विद्यमान थे कि यज्ञशाला का आकार बना हुआ था, उसी प्रकार के होताजन, अध्यवयुं, उद्गाता, उसी प्रकार का यज्ञशाला का जो आकार था वह सूक्ष्म रूपों में शब्दों के ऊपर विद्यमान हो करके वह रथ बनके कर द्यु लोक को जाता उनको दृष्टिपात होने लगा, और उन्होंने यह कहा कि आओ और दृष्टिपात करो कि यह क्या है? मुझे यह काल स्मरण आता है तो हृदय गद् गद् हो जाता है हम यह उच्चारण कर रहे हैं कि हमारा एक एक वेदमन्त्र परमात्मा की गाथा का वर्णन कर रहा है। उसकी महिमा का वर्णन कर रहा है। जब वेशम्पायन दृष्टिपात करने लगे तो उनका हृदय गद् गद् हो गया, और महर्षि भारद्वाज के चरणों को स्पर्श करने लगे, ाऔर कहा धन्य है प्रभु। आज मुझे दृष्टिपात हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि मानव की जो प्रत्येक वाणी है उस वाणी में इतने परमाणु है, वह अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यु लोक को प्राप्त होता है। वायु मण्डल में ओत प्रोत हो जाती है। इसलिए प्रत्येक मानव को संसार में सत्यवादी बनना है। प्रत्येक मानव को यज्ञशाला में स्वाहा दे करके अपनी वाणी को पवित्र बनाना है। स्वाहा का अभिप्रायः यह है कि उत्तम वाणी उच्चारण करो। प्रभु! मैं अपनी वाणी को सदैव महान् बनाना चाहता हूँ। पवित्र बनाना चाहता हूँ। जिससे मेरी वाणी अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यु लोक को प्राप्त होती रहे। द्यु लोकों में उसकी आभा होती रहे। ऐसी मेरी सदैव कामना बनी रहती है।

तो महर्षि भारद्वाज मुनि ने यज्ञशाला के सर्वत्र चित्रों को द्यु लोक में जाता दृष्टिपात कराया, और यह कहा कि राम! तुम दृष्टिपात करो। यह वेद का मन्त्र कह रहा है, यह वेद का मन्त्र साक्षी है। वैशम्पायन मुनि, महर्षि भारद्वाज के चरणों का स्पर्श करने लगे, धन्य है प्रभु आप जहाँ ब्रह्मवेत्ता हैं वहाँ आप इस विज्ञानशाला को भी जानते हो, विज्ञानवेत्ता भी हो। तो महर्षि भारद्वाज के यहाँ ऐसा ऐसा विज्ञान था कि एक एक रक्त के बिन्दु में मानव के शरीर का आकार बना हुआ विद्यमान रहता है और वह उसी

विज्ञानशाला में यन्त्रों में दृष्टिपात आता रहा।

बेटा! आज मैं तुम्हें विज्ञान के क्षेत्र में ले जाना नहीं चाहता हूँ आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हे मानव! तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके तू अग्नि होत्र कर, अग्नि के ऊपर अपनी वाणी को ले जा करके इसे द्यु लोक को प्राप्त करा, तू मानो महान् कार्य करता चल। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट न करता हुआ भगवान् राम के यहाँ वह ऊँचा याग हुआ। वह याग छह माह तक चलता रहा।

हमारे यहाँ पुरातन काल में नाना प्रकार के याग होते रहे हैं। उनमें सर्वस्वयाग भी होते हैं। सर्वस्व याग उन्हें कहते हैं जो जितना राजा के कोष में द्रव्य है उस सर्व द्रव्य का भी याग कर देते हैं। एक दूसरे का संसार में ऋणी नहीं रहना चाहिए। तो विचार विनिमय क्या? आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है? एक एक वेदमन्त्र के ऊपर नाना अनुसन्धान होता रहा है, नाना प्रकार की विचारधाराएं प्रारम्भ रही हैं उन विचारधाराओं को जो मानव अपना लेता है, उन विचारधाराओं को जो महान् बना लेता है वह मानो महान् पुरुष बन जाता है। भगवान् राम इस सर्वत्र विज्ञान को जानते थे। हमारे यहाँ भगवान् राम को बारह कलाओं वाला माना जाता है, वह बारह कलाएं कल प्रकट करूंगा। कलाएं तो षोडश कहलाई जाती हैं। क्योंकि षोडश कलाओं में मानवता का चरण विद्यमान रहता है, और चौबीस कलाएं भी होती हैं। चौबीस कलाओं का अभिप्रायः कि मानव का जो शरीर है इसका चौबीस धाराओं से जन्म हुआ है और चौबीस ही तत्त्व माने जाते हैं उन चौबीस तत्त्वों से मानव की कल्पना की है। मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ।

परम्परा से ही नाना प्रकार का चिन्तन होता रहा है इसलिए प्रत्येक मानव को विचारना है कि यह संसार क्या है? दार्शनिक कहता हैं कि यह जो संसार है यह एक प्रकार की विचारशाला है। यहाँ प्रत्येक मानव विचार विनिमय करने के लिए आया है। विचार देने के लिए आया है और चिन्तन करने के लिए आया है कि परमात्मा को हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? परमात्मा को हम किन रूपों से प्राप्त कर सकते हैं। यह नाना प्रकार का विचार विनिमय बेटा! परम्परा से होता रहा है। आज का विचार क्या है कि आज हम

भगवान् राम के उन धाराओं के ऊपर अपने जीवन को ले जाएं जहाँ वह राष्ट्र और समाज जहाँ अपनी पताका को ऊर्ध्व में ले जाने वाले हों। वहाँ उनका विज्ञान भी विचित्र था। वहाँ उनकी विचारधारा ऋषि मुनियों में और उनके विज्ञान में याग में कितनी महत्ता में परणित रही है।

आज का हमारा यह वाक्य क्या कहता है? वेद का ऋषि तो बहुत ऊँची उड़ान उड़ता है। यहाँ प्रत्येक वेद का ऋषि वेदमन्त्र का दृष्टा कहलाता है, वेद का विचार विनिमय करता रहा है, जिससे यह संसार और प्रकृति के निर्माणशाला में विद्यमान करके निर्माण को विचारता है कि मानव के शरीर का निर्माण कैसे हुआ। मानवीय दर्शन क्या है? यही मानवीय दर्शन कहलाता है जो स्वतः अपने का दर्शन करता है, और अपने दर्शनों को पान करता हुआ आनन्द का अनुभव करता है। आनन्द को पान करता हुआ वह परमात्मा की आभा को प्राप्त करता हुआ। आनन्दमय हो जाता है। यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण गान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं और संसार के ऊपर विचार विनिमय करें कि यह संसार क्या है? यहाँ जो भी मानव इस संसार के सम्बन्ध में विचारेगा उसी दृष्टि से उसे यह संसार उसकी कामना पूरी करता रहता है। किन्हीं आचार्यों ने इस संसार को यज्ञशाला कहा है किन्हीं ने विज्ञानशाला कहा है, किन्हीं ने मृत्युलोक कहा है, किन्हीं आचार्यों ने मृत्यु को विजय करने का क्षेत्र कहा है।

मेरे प्यारे! मुझे समय समय पर स्मरण आता रहेगा, वेदमन्त्र आता रहेगा, मैं उसके ऊपर चिन्तन करता रहूँगा। मनन करना हमारा कर्त्तव्य है। क्योंकि संसार में प्रत्येक मानव को अपने कर्त्तव्य की वेदी पर जाना चाहिए। कर्त्तव्यवादी पुरुष में ऊँचे होते हैं, और जो अधिकार की पुकार करते हैं, बेटा! हमें अधिकार प्राप्त हो या न हो परन्तु हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। यह आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा

इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। जर्वें, जिला रायपुर समय रात्रि 8.00 बजे

१० 03 04 1977 पुष्प 32 प्रातः परमात्मा का सन्निधान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ यह पठन पाठन का क्रम परम्परा से ही माना है, और इस पठन पाठन के ऊपर नाना प्रकार की टिप्पणियां भी होती रही हैं, नाना विचार विनिमय करके अपने अपने दृष्टिकोण से इस संसार के ऊपर कल्पनाएं की हैं और अपना विचार दिया है। जिन ऋषि मुनियों ने भयंकर बनों में विद्यमान हो करके अपने जीवन का मन्थन किया और मन्थन करने के पश्चात् मानव जीवन को यह दर्शाया अथवा यह निर्णीत किया कि यह संसार है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है पुत्रो! जिस काल में ऋषि मुनि विद्यमान हो करके एक सौ पांच वर्षों तक एक गाड़ी के नीचे आयु को समाप्त करने वाले थे। उसे गाड़ीवान रेवक मुनि कहते थे। उनके जीवन का जो रहस्य था, उनके जीवन का जो तारतम्य था, वह यह था कि यह संसार और मानव समाज का परमात्मा से क्या सम्बन्ध है? परमात्मा क्या है?

तो बेटा! उन्होंने कई वार्त्ताएं सान्निधान की प्रकट कीं। दर्शन कारों ने कहा कि सन्निधान मात्र से यह ब्राह्मण गति कर रहा है। सन्निधान मात्र से मानव का यह शरीर गतिशील हो रहा है परन्तु वेद का ऋषि सन्निधान की वार्त्ता तो कह रहा है, उसमें उन्हें अधूरापन दृष्टिपात आने लगा। उन्होंने तप करने से लिए विचारा और नाना ऋषियों ने परामर्श और अनुसन्धान करने के लिए अपना निर्णय दिया और यह कहा कि प्रत्येक वाक्य पर अनुसन्धान होना चाहिए। वह अनुसन्धान क्या? वेद के ऋषि ने यह कहा कि सन्निधान मात्र से यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। दो सन्निधान माने जाते हैं। एक सन्निधान ब्रह्म का है जो ब्रह्माण्ड गति कर रहा है नाना लोक लोकान्तर एक दूसरे में अभायित होते दृष्टिपात होते हैं। जैसा मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था कि तीस लाख पृथ्वियां ऐसी है, जो सूर्य की परिक्रमा कर रही हैं। एक सहस्र सूर्य हैं जो बृहस्पति की परिक्रमा कर

रहे हैं। एक सहस्त्र बृहस्पति हैं जो आरुणि मण्डल की परिक्रमा कर रहे हैं। एक सहस्त्र आरुणि हैं जो ध्रुव मण्डल की परिक्रमा कर रहे हैं। तो बेटा! ऋषि ने यह विचारा कि एक दूसरे से कटिबद्ध यह जगत है। यह क्या है? एक दूसरे में कटिबद्ध होता, एक दूसरे में निहित होता, सन्निधान मात्र से यह ब्रह्माण्ड अपनी गति कर रहा है। तो मानो यह प्रभु का एक नृत्य हो रहा है, चेतना का नृत्य हो रहा है।

मुनिवरों! सन्निधान मात्र से यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है प्रकृति के ऊपर सन्निधान मात्र से ही व्यापक चित्त के मण्डल का निर्माण हो रहा है। जिस समय यह जीवात्मा अपने आनन्द को यह सन्निधान मात्र से ही यह शरीर गति कर रहा है। आत्मा का सन्निधान हुआ, शरीर अपना गति करना प्रारम्भकर देता है। चेतना में बद्ध हो जाता है। वह चेतना में बद्ध होने वाला शरीर है इसकी दो गतियां हैं। यदि यह परमात्मा के आँगन को गति करता है तो जानो की परमात्मा के गुण जैसी यौगिता आ जाती है। यदि यह निचले स्थली में प्रकृति के गुण में रमण कर जाता है तो इसमें जड़वत (जड़ता) आना प्रारम्भ हो जाता है। यह भोगवाद है। यह जड़वत कहाँ तक चला जाता है। कहीं वह ऋषि था, कहीं ब्रह्मवेत्ता था, कहीं वह आश्रम का कीड़ा बना हुआ है। पुत्रो! वह कहाँ तक जड़वत को प्राप्त हो गया है, वह अंडज सृष्टि में प्रवेश कर गया है, इतना जड़वत बन गया है, परन्तु यदि वह प्रयत्नशील होता हुआ आत्मवत् को ऊँचा बनाता है, ब्रह्म की चेतना में सल्लग्न होता है, तो बेटा! उसके गुण प्रारम्भ हो जाते हैं।

दो प्रकार के चित्त हमारे यहाँ परम्परा से ही स्वीकार किए गए हैं। एक आत्म चित्त कहलाता है, उसको व्यष्टि चित्त कहते हैं और एक समष्टि चित्त है जो सर्व व्यापक चित्त है। उस चित्त में यह मानव की प्रतिभा निहित रहती है। आत्म निहितता रहने वाली है। बेटा! आज मैं तुम्हें गम्भीर दर्शन में ले गया हूँ। गम्भीर दर्शन में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ, केवल विचार विनिमय क्या कि महर्षि रेवक मुनि महाराज ने यही कहा है कि सन्निधान मात्र से यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। परन्तु उस सन्निधान को विचारा जाए। सन्निधान मात्र से मानव का यह शरीर गति कर रहा है। परन्तु उस सन्निधान को विचारा जाए। सन्निधान कहते हैं मिलान को। चेतना का जड़ से मिलान हुआ, जड़ ने

गति करना प्रारम्भ कर दिया। जैसे सूर्य के सन्निधान मात्र से यह सर्वत्र खनिज और खाद्य उत्पन्न हो जाता है। जितना भी तुम प्रकृति के गर्भ में प्रवेश करोगे, प्रकृति के आँगन में जाओगे, पृथ्वी वसुन्धरा के गर्भ में प्रवेश कर जाओगे। मेरे प्यारे! 1 वह कितना सुन्दर नृत्य हो रहा है। वही नृत्यता है वही मानव समाज को ऊँचा बनाती है। मानव समाज कैसे ऊँचा बनता है यह प्रश्न प्रत्येक मानव के समक्ष रहता है। राष्ट्र का निर्वाचन होता है वह भी यही विचारता है कि समाज का निर्माण कैसे हो। राष्ट्र का निर्माण कैसे हो। समाज कैसे उन्नत बने यह प्रत्येक प्राणी विचारता रहता है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पुत्र के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि जब तक हम सन्निधान मात्र को नहीं जानेंगे तब तक हम समाज को भी नहीं जान सकते। समाज को हमें उन्नत मार्ग पर ले जाना है। धर्म को विचारना है कि धर्म क्या है? प्रत्येक मानव धर्म के आँगन में प्रवेश कर रहा है। धर्म ही धर्म कह रहा है परन्तु विचारो कि धर्म क्या है? धर्म के ऊपर प्रत्येक मानव नाना टिप्पणियां करता रहता है, अपना विचार देता रहता है। वेद का ऋषि यह चाहता है कि हे मानव! तेरी जो पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं उनमें जो व्यापक वाद है, उसी को हमारे यहाँ धर्म कहते हैं। नेत्र का धर्म है, दृष्टिपात करना, सुदृष्टि पान करना है, कुदृष्टि नहीं है। इसी प्रकार मानव के जीवन में दो पक्ष आते हैं। एक शुक्ल पक्ष कहलाता है और एक कृष्ण पक्ष कहलाता है। कृष्ण पक्ष अन्धकार को कहते हैं और शुक्ल पक्ष प्रकाश को कहते हैं।

मेरे प्यारे! शुक्ल आ रहा है, चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है। पूर्णिमा का दिवस है, षोडश कल्पनाओं से युक्त है। पूर्णिमा का दिवस है, षोडश कल्पनाओं से युक्त है। वह प्रकाश दे रहा है। वह अपनी कान्ति दे रहा है। अमृत को बहा रहा है। माता के गर्भ स्थल में भी वह अमृत दे रहा है। कृषक की भूमि में भी अमृत प्रदान कर रहा है। वह अमृतमय है, वह चन्द्रमा कहलाता है। परन्तु सूर्य को तेजोमय कहते हैं। यह अमृतमयी है तो सूर्य तेजोमय है। वह तेज दे रहा है। ऋषि मुनियों के द्वारा विचार किया गया है कि जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा अमावस के पश्चात की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक अपनी षोडश कलाओं से युक्त होता रहता है। इसी प्रकार वह जो षोडश कलाएं

हैं उन्हीं का चक्र चला हुआ है। जिस प्रकार वह प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पूर्ण होती हैं इसी प्रकार अमावस से लेकर के कृष्णा पक्ष में वह एक एक कला का समाप्त होना होता है। परिणाम यह होता है कि अमावस के दिवस प्रकाश नहीं रहता। प्रकाश शून्य हो जाता है। इसी प्रकार हे मानव! तेरे जीवन में भी कृष्णा पक्ष और शुक्ल पक्ष आते रहते हैं। दो ही पक्ष तो हैं संसार में। अन्धकार है या प्रकाश है।
मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिस काल में महाभारत का संग्राम हो रहा है और भीष्म जी वाणों की शय्या पर विराजमान हैं। रक्त का सञ्चार हो रहा है परन्तु ब्रह्मचारी ने यह नियम बना लिया कि जब तक सूर्य उत्तरायण नहीं होगा तक तक मैं अपने शरीर को नहीं त्यागूंगा। इस संकल्प को कौन करता है। ब्रह्मचरिश्यामि जो ब्रह्मचारी रहता है। यह उसी का संकल्प है। तो कहा जाता है द्रौपदी विद्यमान है, महाभारत संग्राम भी समाप्त हो गया, संग्राम का कांड समाप्त हो गया है, ब्रह्म का उपदेश प्रारम्भ हो रहा है। परन्तु महारानी द्रौपदी ने यह कहा कि महाराज! हे पिता! आपका उत्तरायण क्या है? और दक्षिणायन क्या है भीष्म जी कहते हैं कि हे देवी! यह जो शुक्ल पक्ष है, यह जो उत्तरायण है, यह प्रकाश है, और यह जो कृष्णा पक्ष है वह दक्षिणायन है, यह अन्धकार माना गया है। मैं अन्धकार में अपने शरीर को नहीं त्यागूंगा। अन्धकार की और भी टिप्पणी की जा सकती हैं। मानव के द्वारा जब तक अज्ञान है तब तक वह कृष्णा पक्ष में है, और जब वह ज्ञान और विवेक में आ गया तो जानो उसका उत्तरायण सूर्य बन गया है। सूर्य का अभिप्राय प्रकाश तेजोमय है। मेरे पुत्रो! वह प्रकाश मय कहलाता है।
आज मैं यह क्या चर्चा कर रहा हूँ कि मानव के द्वारा दो पक्ष होते हैं। एक दक्षिणायन है दूसरा उत्तरायण है। जिसको हम कृष्णा और शुक्ल पक्ष कहते हैं। शुक्ल कहते हैं बुद्धिमान को, शुक्ल कहते हैं विवेक को, शुक्ल कहते हैं शोडश कलाओं के जानने को। षोडश कलाएं क्या हैं मानव के शरीर में? पांच प्राण हैं, पांच उपप्राण हैं पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं और मनतत्व है। यह षोडश कलाएं कहलाती हैं। जब तक इनका यथार्थ ज्ञान नहीं हो जाता तब तक वह मानव षोडश कलाओं को नहीं जानता। मुझे वह काल स्मरण आता

रहता है। भगवान राम बारह कलाओं के अवतार कलाए जाते थे। वे बारह कला क्या थीं? उदीची, दक्षिणादिग्, प्राचीदिग्, प्रतीचीदिग ध्रुवा, ऊर्ध्वा मानो ये छह दिशाएं होती हैं इन दिशाओं में क्या क्या ज्ञान का भण्डार है, ये क्या क्या कार्य करती हैं, ये छह कला कहलाती हैं, और समुद्र, पृथ्वी, द्यु अन्तरिक्ष चार कला ये कहलाती हैं, जिन कलाओं को जानकर मानव विचित्र बनता है। चार कलाओं का वर्णन और आता है। चार कला कौनसी हैं? स्वसचतम्, वृतम्, मध्यानम्, प्रतिभा। इनको कहते हैं। मन कला, चक्षु कला, श्रोत कला और त्वचा कला। मेरे पुत्रो! वाणी कला। ये सर्वत्र कला कहलाती हैं। पांच कला ये होती हैं। एक मन तत्त्व कला है। पांच ज्ञानेन्द्रियां कला हैं औश्र एक मन कला हैं। इनको जो अच्छी प्रकार जानता है वह षोडश कलाओं वाला है और जो इनमें से चार को नहीं जानता वह बारह कलाओं का है। कला किसे कहते हैं? कला कहते हैं उसके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान हो और विवेक हो। विवेक की दृष्टि से उसे पान करने वाला। वह बारह कलाओं वाला, षोडश कलाओं वाला चन्द्रमा कहलाता है।

तो मुनिवरों! हमारा आज का वाक् यह क्या कह रहा है, मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं करूंगा। मैं व्याख्याता नहीं हूँ। परिचय देने आया हूँ और वह परिचय क्या है कि हे मानव! तू इन कलाओं को जान। हे मानव! प्रत्येक इन्द्रिय पर तेरा संयम होना चाहिए। जब तेरा संयम होगा तू देवता बनेगा। तू ब्रह्मचारी बनेगा। देवताओं की सभा में तेरा मान होगा। देवताओं की सभा में तू सभापति बनेगा।

तो पुत्रो! आज मैं बहुत चला गया हूँ, समय इतनी आज्ञा नहीं दे रहा है। विचार केवल क्या है कि मानव के जीवन में दो पक्ष हैं। एक शुक्ल पक्ष और एक कृष्ण पक्ष। एक उत्तरायण है एक दक्षिणायन है। दक्षिणायण अन्धकार को कहते हैं, उत्तरायण प्रकाश को कहते हैं, चेतना बद्ध को कहते हैं। साधारण रूपों में ये दो ही पक्ष हैं। ज्ञान में भी दो ही पक्ष हैं और मानव के द्वारा दो पदार्थ हैं, एक प्रकृति और एक

परमात्मा है। क्योंकि सन्निधान से जगत चलता है, सन्निधान से गृह पवित्र बनते हैं, सन्निधान से यह जगत अमृतमय बनता है। तो जब यह दूरिता अब्रहा देवत चल। जब दोनों अपने स्वरूप को समाप्त कर देते हैं वह भी अमृत बनता है, देवता बनते हैं। जब

तक अपने स्वरूप को कोई मानव समाप्त नहीं करता। वह मानव इस संसार में देवता बन ही नहीं सकता। वह आभा में आ ही नहीं सकता, क्योंकि उसके जीवन में महत्ता नहीं है।

नाना पक्षों की चर्चाएं मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें प्रकट कीं। इसीलिए प्रत्येक मानव को ज्ञान होना चाहिए, विवेक होना चाहिए। ज्ञान और विवेक से यह संसार ऊँचा बनता है। मुझे वह काल स्मरण है जब यहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके सिंह राजों से खिलवाड़ करते थे, विनोद करते रहे हैं। वह विनोद बिना विवेक द्वारा नहीं होता, ज्ञान के बिना नहीं होता। जब तक मानव में यही भावना बनी रहती है कि यह तो भयभीत हिंसक प्राणी है। हिंसक प्राणी को हिंसा ही विचारते रहे तो हिंसक बनते ही जाओगे। अहिंसा में चले जाओगे तो अहिंसा ही तुम्हारे समीप आ जाएगी।

मेरे पुत्रो! मुझे वह काल स्मरण है जब रेवक मुनि महाराज अपनी स्थली पर विराजमान हैं। सामगान गा रहे हैं। सिंहराज आते हैं औश्र उनके चरणों को छू करके विद्यमान हैं। गाड़ी के नीचे ऋषि विद्यमान हैं और एक सौ एक वर्ष हो गए तप करते हुए। मेरे पुत्रो! कितनी महत्ता है उस महापुरुष के द्वारा है। एक समय रेवक मुनि महाराज की ऐसी इच्छा बनी कि मैं महाराजा श्रुति कान्त के यहाँ जाना चाहता हूँ। महाराजा श्रुति कान्त मनु वंश में राजा थे। वह वहाँ से गमन करते हुए राजा के समीप पहुंचे। राजा ने अपनी स्थली को त्याग दिया और कहा आइए प्रभु! पधारिए। वे विराजमान हो गए। उन्होंने कहा कुछ अन्न का पान कीजिए। महाराजा श्रुति कान्त ने जब यह कहा कि महाराज! कुछ अन्न जल का पान कीजिए तो वेद का ऋषि कहता है हे राजन! मैं तेरे राष्ट्र का अन्न नहीं पान करूंगा। क्योंकि मेरा उत्तरायण अध्याय चल रहा है। वेद का ऋषि कहता है कि मेरा उत्तरायण चल रहा है। महाराजा श्रुति कान्त कहते हैं महाराज! मेरे राष्ट्र का भी उत्तरायण काण्ड चल रहा है। महाराजा रेवक मुनि कहते हैं हे श्रुति कान्त! हे राजन! ज्ञान श्रुति! मैं तुमसे एक वाक्य जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे राष्ट्र का उत्तरायण अध्याय कैसे चल रहा है, शुक्ल पक्ष कैसे चल रहा? उन्होंने कहा भगवन! मैंने अपने राष्ट्र में यह नियम बनाया है कि मैं अपने राष्ट्र में उस द्रव्य को लेता हूँ जो द्रव्य दूसरों को देने से

किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। उस द्रव्य को राष्ट्र कोष में प्रवेश करता हूँ और द्वितीय यह कि मेरी पत्नी ने आपको तो प्रतीत है वह उद्धालक गोत्रीय कहलाती है और उद्धालक गौत्र में कोई भी पुरुष ऐसा नहीं हुआ है जो ब्रह्मवेत्ता न हो। वह ब्रह्मवेत्ता की कन्या है। वह यह चाहती है कि राष्ट्र के अन्न में इतनी महत्ता होनी चाहिए कि तुम्हारी बुद्धि जब तक ऊँची नहीं बनेगी यह राष्ट्र ऊँचा नहीं बनेगा। इसलिए भगवन! मेरा उत्तरायण अभ्यास चल रहा है। मैं और मेरी पत्नी सूक्ष्म सी कृष्णि करते हैं और उस कृषि से जो अन्न आता है उसे पान करते है। क्योंकि राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करने का हमें अधिकार नहीं है। अधिकार क्यों नहीं है? क्योंकि राष्ट्र की सम्पदा सबकी सम्पदा है। यह प्रभु की सम्पदा है, मानो यह समाज में ही लगनी चाहिए, हमारे में नहीं। मैं और मेरी पत्नी दोनों उस अन्न को पान करते हैं। उससे हमारी बुद्धि त्याग और तपस्या में रहती है। ऋषि मुनियों को भी कुछ सूक्ष्म सा अन्न पान करा देते हैं। अतिथि सेवा भी कर देते हैं आप हमारे अतिथि हैं। आप तो हमारे महापुरुष हैं आप अन्न का पान कीजिए।

महाराज रेवक मुनि कहते हैं कि राजन! तुम वास्तव में राज तपस्वी हो। उन्होंने कहा आओ मैं अपनी वाटिका में भ्रमण कराऊँ। मेरे पुत्रों! वह भ्रमण कराने लगे। उनकी पत्नी भी उनके साथ में ऋषि के चरणों की बन्दना करके, वह भी भ्रमण करने लगी। उनका जो व्यक्ति गत सूक्ष्म सा कृष्णि का उद्गम था, उसको दृष्टिपात किया। तो ऋषि का अन्तरात्मा गद् गद् हो गया, और कहा धन्य है राजन! तो राजा की पत्नी ने भोजन का निर्माण किया और ऋषि ने उसे पान किया। पान करके राजा से कहते हैं राजन अब हम यहाँ से गमन कर रहे हैं।

तो मुनिवरों! राष्ट्र का जो प्राण कहता है, राष्ट्र का जो शुक्ल पक्ष है वह विवेक से माना गया है, त्याग और तपस्या से माना गया है। राष्ट्र और समाज का जो सर्वस्व होता है वह केवल उनके कर्त्तव्यवाद पर होता है। इसी प्रकार भगवन! मनु ने राष्ट्रीय स्थली पर विद्यमान की हैं। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट कराने के लिए नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें सूक्ष्म सा परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या कि हे मानव! तू अपने जीवन को शुक्ल पक्ष में ले जा। तू पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति अमृत को बखेर!

अपनी वाणी से अमृत को बखेर। सत्यवादी बन। अपने कर्म से बखेर। तेरा व्यापक कर्म होना चाहिए। व्यापक विचार होना चाहिए। तेरी विचार शक्ति इतनी विचित्र होनी चाहिए कि तू समाज के लिए, मानवत्व के लिए एक व्यापक विचार विनिमय करने वाला बन। यह वाक्य एक वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है मैं नहीं कहता हूँ पुत्रों! महाराजा ज्ञान श्रुति का जीवन मुझे भली भांति स्मरण आता रहता है। उनके जीवन में कितनी महत्ता थी। उनका राष्ट्र, उनकी प्रजा, प्रत्येक मानव अपने गृह में याग करने वाला था। प्रत्येक गृह अतिथि सेवा करने वाला। प्रत्येक गृह माता पिताओं का आदर करने वाला। प्रत्येक गृह में बेटा! एक दूसरे की आभा का चिन्तन करना यह सब राष्ट्र के राजाओं का कर्त्तव्य था।

तो मुनिवरों! ऐसा जो समाज है वे परमपिता परमात्मा की आभा को प्राप्त होता है। परन्तु जिस राजा के राष्ट्र में कन्या अपने अस्तित्व को समाप्त करके उदर की पूर्ति करने वाली हो ऐसा राष्ट्र नहीं चाहिए भगवन! हमें। वह राष्ट्र चाहिए जो कन्या की पूजा करने वाला हो। देवी की पूजा करने वाला हो, देवी का हनन करने वाला नहीं होना चाहिए राजा के राष्ट्र में ऐसी नियमावली होनी चाहिए।

विचार विनिमय क्या कि राष्ट्र की चर्चाएं तो मैं किसी काल में ही करूंगा। आज का विचार तो यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष का चिन्तन करना। देखो, अन्धकार आ जाए तो मानव को भयभीत नहीं होना चाहिए और यदि प्रकाश आ जाए द्रव्य से परिपूर्ण हो जाए तो अभिमान नहीं आना चाहिए। अभिमान और निराशा दोनों ही मानव की मृत्यु का मूल कारण बना करते हैं। इसलिए दोनों नहीं आने चाहिए जीवन में। इनसे उपराम होना चाहिए।

यह है मुनिवरों! आज का हमारा वाक्य। आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है कि हे मानव! तू परमपिता परमात्मा की आराधना कर, देव की महिमा का गुणगान गाता हुआ, तू अपने जीवन को शुक्लमय बनता चल। आज का हमारा यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। गुजराती प्रगति समाज हैदराबाद में प्रवचन की मुद्रा में निवास स्थान भीम सिंह जी ग्राम ुहावर

(बिजनौर)

११ 16 03 1978 पुष्प 33 महानन्द जी की प्रेरणा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रें का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रें का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि जो परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि जो परमपिता परमात्मा प्रभावशाली बन करके हमारे हृदय में ऊर्ध्व प्रेरणा देता रहता है। उस मेरे देव परम पिता परमात्मा को इसीलिए उर्ध्ववेत्ता कहते हैं। क्योंकि वह ऊर्ध्व गति देने वाला है, और मानव को ऊर्ध्व गति में परणित करा रहा है। तो इसीलिए हमारा वेद का आचार्य यही कहता है कि हम जो ऊर्ध्ववेत्ता ऊर्ध्व प्रेरणा प्रदान करने वाला है उसकी हमें उपासना करनी चाहिए। वह हमारा उपास्य देव माना गया है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह प्रेरणा रहती है कि हम योगाभ्यास अथवा योग में परणित होना चाहते हैं परन्तु यह भी तो विचार विनिमय करना चाहिए कि हमारा ऊर्ध्व गति वाला जीवन और योग में हम कैसे परणित हो सकते हैं।

यौगिक आचार्यों ने और ऋषि मुनियों ने महान् से महान् प्रेरणा दी है। इस सम्बन्ध में महर्षि विद्युत्तर ऋषि महाराज शव आसन पर रहते थे। वह शव आसन पर योगाभ्यास, योग में अपनी गति करने के लिए तत्पर रहते थे। परन्तु योग किसे कहते हैं? ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ और उन ऋषि मुनियों ने यह विचारा कि मानव आनन्द में कैसे जा सकता है। जब मानव संसार में व्याकुल होता है, भोग विलासों के क्षेत्र में संसार में जो भी क्रिया कलाप होता है उस आभा में जब मानव विशेष व्याकुल होता है तो उसकी शान्त प्रवृत्ति बनती है और जब शान्त प्रवृत्ति बनती है तो वह मानव यह विचारता है कि यह जो सान्त्वना प्राप्त हुई है। और जितना मुझे मिथ्या प्रतीत हो रहा है, यह संसार मानो सर्वत्र एक स्वार्थवाद का क्षेत्र है। मुझे दृष्टिपात आता है और

जब उस पर मन स्थिर हो जाता है तो उसके पश्चात् उसको जिज्ञासा बनती है और वह जिज्ञासा बन करके वह रमण करता है कि मैं किसी ब्रह्मवेत्ता के समीप पहुचूं। मुझे ब्रह्म जिज्ञासा हुई है कि मैं अपने आनन्द को अपने में ही दृष्टिपात करूं। तो चित्त की प्रवृत्तियों को जो बाह्य जगत् में प्रवेश कर रही हैं उनको आन्तरिक जगत् में लाने के लिए वह तत्पर होता है, और उसमें अपनी ऊर्ध्व गति बनाने के लिए उत्सुक बना है। उस उत्सुकता का नाम मानो जो चित्त में प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं वह जब एक ही आभा में परणित हो जाती है कुम्भाकार की भांति बाह्य संस्कार नहीं आते और वह जो प्राण रूप अग्नि जो लोक रूपी अग्नि जो मानो जो मानव में तरंगें उत्पन्न की हैं, वे कुम्भाकार उस ज्ञान रूपी, विवेक रूपी अग्नि में वह अपने संसार तपायमान होते हैं, और वे तपते रहते हैं तो वह बीज रूप ही समाप्त हो जाता है। जैसे अग्नि में अन्न तपाने के पश्चात् अंकुर नहीं रहता। इसी प्रकार योगाभ्यास वाले जो प्राणी हैं और वह जो संस्कार जो चित्त के मण्डल में कुम्भाकार में बद्ध हो गए हैं उन संस्कारों को वह अपने में ज्ञान रूपी, विवेक रूपी अग्नि में तपाने लगता है। तप करने लगता है तो उससे वे अंकुर नहीं रहते, जिसमें वह कर्म उपजाने वाले हों। क्योंकि बाह्य जगत् से आएगा नहीं। आन्तरिक जगत् से जाएगा नहीं। मानो विवेक रूपी अग्नि में वह दग्ध होने की आभा और तपा करके पात करो तो चित्त प्रवृत्तियों को और चित्त की तरंगों को हमें शान्त कर देना है और जिस भी काल में चित्त की वृत्तियां शान्त होती हैं उस समय मानव को विवेक आता है, और जब विवेक आता है तो जैसे परमपिता परमात्मा ने इष्ट लिया हो मानो व निष्क्रिय सा दृष्टिपात होता है ऐसे ही वह अपने में ओत प्रोत होता हुआ दृष्टिपात होता है।

तो मेरे पुत्रे! मैं यह चर्चाएं तुम्हें देने नहीं आया हूँ। केवल परिचय देने के लिए आया हूँ, और वह परिचय क्या है कि हम अपने जीवन को योगाभ्यास के द्वारा मन और प्राण को एक सूत्र में लाते हुए, यह जो संसार विडम्बनामय हमें दृष्टिपात आता है, यह विडम्बनामय संसार हमारे समीप न रहे। इससे हम उपराम हो जाएं, ऊर्ध्व में गति करने

वाले हों। आज मैं तुम्हें भिन्न भिन्न रूपों की चर्चा कराने आया हूँ।

परन्तु मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने विचारों को प्रकट करेंगे। कटुता की आभा त्याग करके अपने सुन्दर विचारों को देंगे। इनके विचारों में एक विडम्बना रहती है। मैं अपने प्रभु से याचना करता रहता हूँ कि हे प्रभु! । यह महान वेदना समाप्त होनी चाहिए। क्योंकि ये वेदनाएं एक विडम्बना ही नहीं है। जैसे माता वियोग में व्याकुल हो जाती हैं ऐसे ही यह व्याकुलता मेरे प्यारे! मानव को सदैव दृष्टिपात आती रहती है। ऐसे ही मेरे प्यारे! पुत्र के हृदय में यह वेदना है, ये तरंगें होती हैं परन्तु ये मानव क्यों नहीं बन जाते अपने शरीरों को धारण करके और उस वेदना को अपने में ही दृष्टिपात करते रहें। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने कुछ शब्दों की विवेचना करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओं तदु मां तद स्न्नम् सस्यश्चम् दिवायां मन वनचंत् प्रभेरिशश् चाम् ब्राह्मणा ही वृताम् देवम् वृथाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे भद समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी कुछ आनन्द की चर्चाएं कर रहे थे और वे आनन्दमयी जीवन को बनाने की प्रेरणा देते ही रहते हैं क्योंकि इनका हृदय उदारतामय होता है। ये यौगिक प्रसार और यौगिक आभा वाले जितने भी प्राणी हैं, संसार में, ऋषि हैं, जिन्होंने अपनी अन्तरात्मा को जान लिया है, जिन्होंने संसार को मिथ्या ही जानकर त्यागा है, ऐसे प्राणी सदा उदार होते हैं, उनमें उदारता होती है। उनका मन वचन कर्म एक ही होता है। आज में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्बन्ध में कोई टिप्पणियां करना नहीं चाहता हूँ। परन्तु हमारा यह वाक्य क्या कहता है? आज मैं अपने उन वाक्यों के सम्बन्ध में विवेचना प्रकट करने आया हूँ। जो मुझे आज दृष्टिपात आ रहा है, मैं वायुमण्डल की तरंगों को जब श्रवण करने लगता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रभु के लिए क्या खिलवाड़ हो रहा है। मुझे खिलवाड़ सा प्रतीत होता है और इन्द्रजाल सा प्रतीत हो रहा है।

मैंने इससे पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह प्रकट कराया था कि दुराचार से वह राष्ट्र कभी ऊँचा नहीं बनेगा। जब यहाँ त्रेता के काल में जाता हूँ तो दशरथ जी का जीवन मुझे स्मरण आता रहता है। महाराजा रघु का आता रहता है, महाराजा

हरिश्चंद्र का आता रहता है, महर्षि भारद्वाज जी का आता रहता है, हमारे यहाँ और भी महाराजा सगर इत्यादि हुए हैं। जिन्होंने अपने राष्ट्र को महान बनाने के लिए क्या क्या किया। क्योंकि बिना त्याग के यह समाज ऊँचा नहीं बनता। विना त्याग के यह पृथ्वी नहीं तपती, बिना त्याग तपस्या के ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी नहीं बनता। बिना त्याग तपस्या के यज्ञमान यज्ञशाला में यज्ञमान नहीं बनता। बिना त्याग के उद्गाता उद्गाता नहीं होता, ब्रह्म ब्रह्म नहीं रहता। यह पृथ्वी तपती है तप के द्वारा। यह जितना भी संसार का चक्र चल रहा है यह सब त्यागमय है। प्रत्येक आभा त्यागी जा रही है और त्यागपूर्वक यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। ऐसे ही जब राष्ट्र में त्याग नहीं रहेगा तो राष्ट्र नहीं चलेगा। राष्ट्र में जब बुद्धिमान पुरोहित नहीं रहेंगे वह राजा ऊँचा नहीं होगा।

आज मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूँ कि हे राजन! यदि तुझे अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है, अपनी मानवता को महान बनाना है और अपने राष्ट्र को में यह चाहता है कि मेरे राष्ट्र में मेरी पुत्रियों की रक्षा हो जाए और मेरी पुत्रियां सुखद स्वांस लेने वाली हों, आभा वाली नहीं, सुखद परन्तु वेदना में नहीं, मग्न हो इस प्रकार का हे राजन! तेरे राष्ट्र में एक आभा नहीं होनी चाहिए। जब मैं इन विचारों में मग्न होता हूँ तो मुझे ऐसा दृष्टिपात होता है कि यह क्या है प्रभु का जगत? यह राष्ट्रवाद क्या है? जिसकी घोषणा की जाती है। त्याग तप नहीं है परन्तु राष्ट्र की घोषणा हो रही है। आज मैं इस सम्बन्ध में विचार देना नहीं चाहता हूँ। विचार तो मैं यह देना चाहता हूँ कि संसार कैसे ऊँचा बनता है। राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति कैसे नहीं आती।

राजा के राष्ट्र में त्याग और तप होना चाहिए। सबसे प्रथम राजा के राष्ट्र में अद्वितीय आभा होनी चाहिए। राजा स्वयं कर्मठ होना चाहिए। निर्वाचन पवित्र होना चाहिए। निर्वाचन बुद्धिमानों के द्वारा हो, ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा हो। राजा के राष्ट्र में एक शाखा ब्रह्मवेत्ताओं की होनी चाहिए, ब्रह्म समाज की हो जो ब्रह्म का चिन्तन करते हो और राष्ट्र को ऊँचा बनाते रहें। ऐसा समाज होना चाहिए। जब में यह विचारता हूँ कि प्रायः ऐसा होना चाहिए। ऐसा वेद का मन्त्र कह रहा है, कृति लोकाः। ऐसा था, राष्ट्र में ब्राह्मण

होना चाहिए। क्योंकि ब्राह्मण से मेरा राष्ट्र ऊँचा रहा है।
ब्राह्मण कैसे ऊँचा बनेगा? ब्राह्मण कहाँ से आएगा? ब्राह्मण विद्यालय से उत्पन्न होते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पुरातन काल में यह कहा है कि विद्यालय में ब्राह्मणों का निर्वाचन होता है। विद्यालों से ही क्षत्रिय आता है। विद्यालयों से ही वैश्य और शूद्र आता है। परन्तु विद्यालय महान् होने चाहिए। यह शिक्षा प्रणाली हमारी महान् होनी चाहिए। क्योंकि शिक्षा ही मानव का एक महान् जीवन है। राष्ट्र का प्राण है। यदि राजा के राष्ट्र में शिक्षा पवित्र हो तो राष्ट्र जीवित है। मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था, अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराया कि जहाँ गुरु शिष्य का स्नेह है वहाँ छात्र छात्र में स्नेह हैं गुरु शिष्य का स्नेह क्या है। यह तो गुरु अपने चरणों में ब्रह्मचारी को अध्ययन कराता है, और छात्र उनके चरणों की वन्दना करता है, वह प्रियता का उपदेश देता है। आज एक ही प्रकार के आचार्य के छात्र हैं आधुनिक जगत् में परन्तु उन छात्रें के विचारों में नाना प्रकार की भिन्नता हैं, और एक छात्र उसी गुरु का दूसरे छात्र के रक्त का पिपासु बना हुआ है। यह क्यों बन रहा है? इसका मूल कारण यह है राष्ट्र की पद्धति महान् नहीं है। राष्ट्र की पद्धति में एक छात्र को छात्र नहीं बनाया जा रहा है। शिक्षा प्रणाली ऊँची न होने से उनका प्रचार ऊँचा न होने से यहाँ एक छात्र दूसरे छात्र के रक्त का पिपासु बना हुआ है। यह क्यों हो रहा है? इसका मूल कारण है कि आचार्य तपे हुए नहीं हैं। अरे, मैं दुखित होता हूँ, जब इस समाज में एक संन्यासाचार्य के घर पर मेरी पुत्री शिक्षा अध्ययन करती है, कल वही मानव उसके यहाँ दुल्हन बन करके आती है, तो कितना कष्ट होता है। यह राष्ट्र है कि क्या है? इसको गुरु शिष्य प्रणाली नहीं कह सकते। जहाँ गुरु शिक्षा देता हुआ अपने बालक पर मोहित होता, दृष्टिपात होता हो। क्या उसको छात्र कहेंगे या शिक्षा कहेंगे, उसको क्या उच्चारण करेंगे?
मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि छात्र अपने विद्यालयों में रहता है। परन्तु वह नर्तकियें के नृत्य का दर्शन कर रहा है। वह मेरी पुत्री के श्रृङ्गार को हनन करता हुआ दृष्टिपात करके मग्न होना चाहता है। क्या मैं यह दृष्टिपात कर सकता हूँ। कि यह राजा भविष्य में राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाला है! मुझे दृष्टिपात नहीं आता। हो सकता है

कि आगे भविष्य ऊँचा आ जाए परन्तु इस समय तो अग्नि प्रदीप्त होती प्रतीत होती है। सर्वत्र पृथ्वी पर अग्नि ही दृष्टिपात होती है। आज मैं तुम्हें उन विचारों में ले जाना चाहता हूँ। मैं सदैव से अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करता आया हूँ कि जहाँ छात्र और ब्रह्मचारी अनुसन्धान कर रहा है। परन्तु आचार्य छात्र पर मोहित हो रहा है। मेरे हृदय की एक वेदना यह कहती है कि ऐसे विद्यालयों को तो नष्ट कर देना चाहिए। ऐसे गुरु और शिष्य की प्रणाली को समाप्त कर देना चाहिए। मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि यह शिक्षा है? क्या है? मैं इसे क्या कहूँ? यह शिक्षा है? क्या है? मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि यह शिक्षा है? क्या है? मैं इसे क्या कहूँ? यह शिक्षा है या मृत्यु गृह है या श्मशान भूमि है? यह क्या है? परन्तु जिस विद्यालय में ब्रह्मचारी ब्रह्मचारणियों के चरित्र का हनन होता है वह विद्यालय है या वह मृत्यु स्थान है। या वह राष्ट्रीयता को समाप्त करने वाला एक विचार है। इस सम्बन्ध में भी मैं अपने विचार नहीं देना चाहता हूँ। विचार देने के लिए आया हूँ कि राजा के राष्ट्र में तृतीय नियमावली जिससे राष्ट्र स्थिर रहता है, जिससे मानव समाज ऊँचा बनता है, यहाँ चरित्र रूपी निर्माण होना चाहिए। चरित्र कैसे निर्मित होगा? चरित्रवान् पुरुषों से वह शिष्य ब्रह्मचारी चरित्रवान बनता है। यदि आचार्य चरित्रवान नहीं है तो ब्रह्मचारी चरित्रवान नहीं बनेगा। चरित्र में नाना आभाएं आती रहती हैं। इसी प्रकार आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने आया हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय करा देना चाहता हूँ, मैं अपनी आभा और भावना प्रकट कराना चाहता हूँ, कि गुरु शिष्य दोनों पवित्र होने चाहिए।

आज मानव राष्ट्र का उत्थान कराना चाहता है। नहीं, छात्र ऊँचा होना चाहिए और छात्र कैसे ऊँचा बनता है? यह तुम्हें मैं निर्णय कराना चाहता हूँ। छात्र तब ऊँचा बनेगा जब आचार्य के कुल में वह आचार्य के चरणों की वन्दना करेगा और उसमें राष्ट्रीय विचारधारा। नहीं होगी उसके पश्चात् विद्या अध्ययन होना चाहिए और उस अध्ययन को अपने मानवता को उस पर निर्धारित कर लेना चाहिए। उसके पश्चात् विज्ञान होना अनिवार्य हैं परन्तु जब आचार्यों में, विद्यालयों में राष्ट्रीय प्रकरण आता है, विवेचनाएं आती हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक प्रश्न किया था कि राष्ट्र में कैसे गुरु होने

चाहिए? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने एक ही वाक्य कहा था कि यह जो वानप्रस्थ आश्रम है वानप्रस्थियों को ब्रह्मचारियों को शिक्षा देनी चाहिए।
जो वानप्रस्थी माताएं हैं, उन्हें ब्रह्मचारणियों को शिक्षा देनी चाहिए जिससे यहाँ जो आर्ष आचार्यों के सूत्र हैं, पद्धति है वह पवित्र होनी चाहिए, महान् होनी चाहिए वह मेरी प्यारी माता दे सकती है। जो ब्रह्मचारणियों को ब्रह्मचारियों को वानप्रस्थ में शिक्षालयों में शिक्षा दी जाती हो। जब वह शिक्षा दी जाती है वह विद्यालयों में वहाँ ऋषि विद्यालयों में आचार्य हो आचार्या दोनों होनी चाहिए, तो ब्रह्मचारियों को सुह्मचारणियों को शिक्षा और वहाँ वर्ण व्यवस्था का निर्माण होना चाहिए। वहाँ शिक्षालयों में वर्ण व्यवस्था का निर्माण होता है। जो ब्रह्मविद्या में पारायण हो वह ब्राह्मण है। जो अस्त्र शस्त्र धनुर्विद्या में पारायण है वह क्षत्रिय है, जो वाणिज्य विद्या में कुशल है वह वैश्य कहलाता है और जो निर्बुद्धि हो वह सेवक बन करके सेवा करने वाला हो। ऐसा निर्वाचन होना चाहिए। ऐसा जो निर्वाचन है, ऐसी जो पद्धति है वह जो भगवान् मनु ने निर्धारित की है वह पद्धति राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाली है। राष्ट्र को ऊँची दिशा देने वाली है।
आज का राष्ट्रवाद यह कहता है कि असुरों को मैं समाप्त करना चाहता हूँ। मैं कहता हूँ होना चाहिए। परन्तु किसी प्रकार का रक्तपात नहीं होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में यह बहुत प्रियता है। परन्तु यह होगी कैसे? यह भी तो विचारना चाहिए। यह उस काल में होगी जबकि शिक्षा प्रणाली ऊँची बनेगी। यदि शिक्षा प्रणाली ऊँची नहीं बनेगी तो यह असम्भव हैं देखो, ये जो दैत्य बनते है। ये परम्परा से बनते हैं। पुरातन काल में दैत्य कहीं शान्त होकर के राजा से ओझल हो करके रहते थे। परन्तु आज दैत्य बनते हैं, राजा के नेत्रें के समक्ष हो करके। इतना अन्तरद्वन्द्व आया हैं पिछले दैत्यों में और आधुनिक दैत्यों में। पहिले दैत्य बनते थे राजा से दूर हो करके राजा से ओझल हो जाते थे। कहीं वनों में रहते थे, जो देवताओं को कष्ट देते रहते थे। आज राजा गृह में ही दैत्यों का निर्माण होता है। दैत्यों का निर्माण कहाँ होता है? उसके गृह में। देखो, वह राजा कहता है कि असुर नहीं होने चाहिए। सुरापान नहीं होना चाहिए। परन्तु पुत्र तो सुरापान कर रहे हैं। तो गृह में निर्माण हो रहा है। राजा कहते हैं शाकाहारी होना

चाहिए। परन्तु पुत्र गो मांस का भक्षण कर रहा हैं अरे, यह असुर कहाँ बन रहे हैं? राजा के गृह में असुर बन रहे हैं। केवल इतना ही अन्तर्द्वन्द्व आया है। इतना अन्तर मुझे प्रतीत होता ह। ै देखो, भगवान् राम के राष्ट्र में, रघु के राष्ट्र में असुर बनते थे। भयंकर वनां में, और वहाँ राजा की दृष्टि सूक्ष्म हो जाती थी। परन्तु अब राजाओं के गृह में निर्माण हो रहे हैं। अब धन्य है मैं क्या उच्चारण करने चला हूँ।
मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूँ कि आज दैत्य कहाँ बन रहे हैं। मानो जो धर्म की आभा में, धर्म को लेकर के वह मांसों का भक्षण कर रहे हैं। धर्म उनके समीप है और कहता है कि मैं तो आर्य हूँ। अपने को आर्य कहते हैं, परन्तु लज्जा भी नहीं आ पाती। एक कहता है मैं कृष्ण के मानने वाला हूँ, मैं राम का कीर्त्तन करता हूँ। कहाँ करता है? गृह में कीर्त्तन होता है परन्तु जब वह गृहों में जाता है, अरे, तुम्हारा आहार कैसा है? तो अन्न में सुगन्धि के स्थान में दुर्गन्धि आ रही है। वही अन्न गृहों में प्रवेश करके शरीरों में सुगन्धि कहाँ से लाएगा? वहाँ भी तो दुर्गन्धि आएगी। कहीं विचारों से, कहीं कर्मों से, तो इसलिए मैं इन विचारों की पुनरुक्ति देने नहीं आया हूँ।
विचार यह देने के लिए आया हूँ कि छात्र ऊँचा होना चाहिए। छात्र विद्यमान हैं, जहाँ वह काल था। मुझे स्मरण है, एक समय भगवान कृष्ण और सुदामा को बाल्यकाल में आचार्य ने कहा जाओ यज्ञ के लिए समिधा लाओ। वे वन में गए और वहाँ जाकर समिधा एकत्रित करने लगे। परन्तु सुदामा और कृष्ण यह उच्चारण करने लगे कि यह समिधा शब्द क्या है? तो सुदामा जी कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह जो समिधा शब्द है इसका सम्बन्ध ईन्धन से है, तो वे कहते हैं ईंधन कैसे बनता हैं ईंधन का क्या तात्पर्य है? सुदामा ने कहा कि ईंधन से ऐसा प्रतीत होता है जिससे अग्नि प्रदीप्त होती है। तो जहाँ अग्नि प्रदीप्त होती हो उसको हम ईंधन कहते हैं, और उस अग्नि में जो प्रवेश कराया जाए उसे हम समिधा कहते हैं। समिधा जिससे मानो अग्नि प्रदीप्त होती हो। एक ही गुरु के दोनों शिष्य विचार करने लगे कि अरे, ऐसे ही हमारे शरीर में यह वाणी अग्नि बनकर रहती है, और वह जो राख है, वह जो आभा है वह समिधा बन करके शरीर में प्रवेश कर रही है, अन्न भी हमारी समिधा बन करके वाणी को प्रदीप्त

कर रहा है। वाणी संसार में ओत प्रोत हो रही है। वाणी जितनी पवित्र होती है उतनी ही समिधा की तरंगें इस समाज को ऊँचा बना रही हैं गृह को ऊँचा बना रही है तो इसी दार्शनिक विचार में दोनों शिष्यों को प्रातःकाल से सायंकाल हो गया अनुसन्धान करते हुए।
गुरु जी कहते हैं कि अरे, ये दोनों बालक कहाँ गए? ब्रह्मचारीगण कहते हैं कि प्रभु! हमें तो प्रतीत नहीं। तो गुरुजी स्वयं उनकी खोज में गति करते हुए उसी वन में चले गए। दोनों विचारक विद्यमान हैं। दोनों के प्रश्न उत्तर चल रहे हैं। प्रातः काल से सायंकाल हो गया। गुरुजी भी शान्त मुद्रा में दोनों शिष्यों के विचारों को श्रवण करने लगे। आचार्य कहता है धन्य है! दोनों ब्रह्मचारियों को रात्रि छा गई, तारामण्डलों का प्रकाश हो गया, चन्द्रमा अपनी तरंगें देने लगे, तो उस समय कृष्ण कहते हैं कि चन्द्रमा कैसा सुहावना है। यह चन्द्रमा लोक की समिधा बन करके हमें अमृत देता है। सूर्य अपनी अग्नि मानो तरंगों रूपी ईंधन देकर के वह प्रदीप्त हो रही है। उससे खनिज और खाद्यों का निर्माण हो रहा है। गुरु ने जब यह विचार श्रवण किए तो उन्होंने एक ही स्वर में बाल्य ब्रिही व्रताम्। गुरु जी कहते हैं कि हे ब्रह्मचारियो! तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है, याद किया जा रहा है। परन्तु दोनों ब्रह्मचारी कहते हैं, गुरु जी हमें क्षमा कीजिए। हम विचारों का यज्ञ करने लगे हैं प्रभु! बाह्य याग हमारे मस्तिष्क से ही दूर चला गया।
परिणाम क्या हुआ? एक ही गुरु के शिष्य हैं परन्तु यदि आज के गुरु विद्यालय से गति करते हैं तो वे कहाँ जाएंगे। चलेंगे नर्तक्विं द्वारा नृत्यां को दृष्टिपात करेंगे। वह नृत्य करने वाले जो नर्तक आए हैं, मानो चरित्रहीन प्राणियों की गणना कर रहे हैं। यह हो रहा है। परन्तु पूर्वकाल का ब्रह्मचारी जहाँ वर्ण व्यवस्था का निर्माण होता ह। ै आधुनिक जगत् का ब्रह्मचारी छात्र क्या कर रहा है? हे छात्रे? तुम स्मरण करो, कुछ समय के पश्चात् जब छात्र विद्यालयों से पृथक होता है तो वही छात्र जब गृह में प्रवेश करता है। तो वह राजरोगों का क्या, मानो नाना वनस्पतियों का आश्रित बन जाता है। औषधियों का आश्रित हो जाता है अरे, कहाँ गया तेरा ब्रह्मचर्य? तेरे विचारों में कहाँ वह आभा

चली गई?

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराने जा रहा हूँ कि आधुनिक काल के छात्र को ऊँचा बनना होगा। यदि नहीं बनेगा तो यह राष्ट्र रक्तभरी क्रान्ति में परणित हो जाएगा। यह आलस्यमय ब्रह्मचारी बन गया है। आधुनिक जगत का जो ब्रह्मचारी है उसका ब्रह्मचर्य दूषित हो गया है, और ब्रह्मचर्य के दूषित होने पर इसे आलस्य और प्रमाद आ गया है। आलस्य और प्रमाद जब आ गया है तो यह रक्तभरी क्रान्ति की घोषणा करता रहता है। क्योंकि करता रहता है? विद्यालय में तो अक्षर बोध नहीं होता, अशुद्ध उच्चारण करता रहता है, कहाँ से आए? उसके पश्चात् विद्यालय में अपनी कक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो पाता। और अधिकार को पुकारता है। कहता है कि मुझे यह अधिकार हो। ऐसा अधिकार तो अनधिकार में रहता है। जिस राजा के राष्ट्र में छात्रें में छात्रओं में, प्रजा में अधिकार की पुकार होने लगेगी, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते हैं कि वह समाज आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा। क्योंकि कर्त्तव्यवाद के लिए ऋषि मुनियों ने तप करने के पश्चात् यह घोषणा की है कि कर्त्तव्य का पालन करो। यदि कर्त्तव्य का पालन नहीं करोगे तो यह समाज ऊँचा नहीं बनेगा। तुम ऊँचे नहीं बनोगे। एक मेरी प्यारी माता कर्त्तव्य का पालन कर रही है, पालना करती है नृत्य नहीं दे सकती, वह कर्त्तव्य का पालन कर रही है। इसलिए मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को यहाँ कर्त्तव्यवादी बनना है। हे ब्रह्मचारी! गुरुओं की सेवा करता हुआ तू उसकी आराधना कर। आज का ब्रद्यचारी चरित्रहीन जो गुरु बने होते हैं उनकी पूजा कर रहा है। उसकी आभा में रमण कर रहा है। जो चरित्रवान् आभाशाली होते हैं, वह उनसे भयभीत हो रहा है। अरे, यह कैसा जगत् बन गया? कैसा ब्रह्मचारी बन गया? मुझे स्मरण है। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप आया तो मुझे एक एक शब्द को अध्ययन करने के लिए एक एक माह तक वार्त्ता प्रकट नहीं करते थे। मैं जब आचार्य जी के समीप किसी समय में आया परन्तु देखो, बारह बारह वर्ष तक तप कराते रहते अध्ययन की परिक्रियों को वर्णन करते रहते। परन्तु उत्तर नहीं देना और पत्रें का पान किया जाता था, पंचांगों का पान किया जाता। अन्न भी वे देते, जिसमें ऊँची तरंगें उत्पन्न

होतीं। बुद्धिमान तब बनता है जब मानव को सब प्रकार का ज्ञान होता है। आज तो ज्ञान का अभाव है। वेद के मन्त्रों को यदि आज के विद्यार्थी से आचार्य से यह कहा जाए कि आचार क्या है? उसके सम्बन्ध में वह उत्तर नहीं दे पाते।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। विचार यह कि जिन विद्यालयों में राष्ट्रीय क्रान्तियां हुई हैं, ब्रह्मचारियों में जहाँ राष्ट्र इतना अधिकार देता है क्या इनकी भी एक समाज होनी चाहिए और उस समाज का बन्धन राष्ट्रीय हो जाता है। अरे, वह विद्यार्थी कदापि भी शिक्षा में उत्तीर्ण नहीं होगा। वह विद्यार्थी नहीं कहलाता। विद्यार्थी वह कहलाता है जो अनुसन्धान करता है। गार्हपत्य नाम की पूजा करता है। अरे, ब्रह्मचारी तो वह होता है जो सिंह आता है उसके मुख के अपने भुजों से दो भाग कर देता है, उससे वार्त्ता करता है। आज यदि ब्रह्मचारी को एक सियार दृष्टिपात आ जाए तो माता की लोरियों को पान करने के लिए तत्पर रहता है। वह चाहता है कि मेरी माता मुझे जैसे बाल्यकाल में आंचल में परणित करती थी ऐसे ही करले तो मेरा सौभाग्य हो जाए। अरे, हे ब्रह्मचारी! हे छात्र! तुम्हें ऊँचा बनना है तो इस प्रकार ऊँचा नहीं बनेगा।

आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि निर्भय होने के लिए मानव को निर्भयता की विद्या का अध्ययन करना होगा। ब्रह्मचरिश्यामि। ब्रह्म विद्या का अध्ययन करना होगा। जो ब्रह्म कण कण में विद्यमान है। ऐसा जो ब्रह्मचारी है वह उत्तीर्ण रहता है। इस सम्बन्ध में मैं आज विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हे मानव! तेरा छात्रबल ऊँचा होना चाहिए। हे राजन! तुझे अपने राष्ट्र में अश्वमेध याग करना है। अश्वमेध याग है कि तेरे राष्ट्र में शिक्षा प्रणाली पवित्र होनी चाहिए। शिक्षा प्रणाली में आचार्य तपे होने चाहिए। देखो, जैसे राजा आचार्यों की परीक्षा लेता है और आचार्य राजाओं की परीक्षा लेते हैं यह कैसा विचित्र है? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आधुनिक काल का जगत् यह कहता है कि यह वार्त्ता तो परम्परा की रह गई है, इसमें बृद्धपन आ गया है। मैं यह कहा करता हूँ सत्य सदैव सत्य रहता है। सत्य का कभी अभाव नहीं होता। मिथ्या सदैव मिथ्या रहता है। इसलिए सत्य सत्य रहेगा। उसका अभाव नहीं

होता। मिथ्या सदैव मिथ्या रहता है। इसलिए सत्य सत्य रहेगा। उसका अभाव नहीं होता। इसलिए मैं यह उच्चारण किया करता हूँ कि मानव सत्यवादी बनता रहे और सत्यमय रहे, सत्य विद्या का अध्ययन करने वाला हो।

राजा के राष्ट्र में ऐसे नियमावली और अनुसन्धान केन्द्र होने चाहिए, जहाँ अनुसन्धान होते हैं। हे राजन्! मैं पुनः से उच्चारण कर रहा हूँ यह तेरे राष्ट्र में क्यों नहीं हो पा रहा? क्योंकि धर्म की रूढ़ियां बन गई हैं धर्म एक है। धर्म की नाना रूढ़ियों को समाप्त करने के लिए भिन्न भिन्न धर्मों के तुम तो उसे धर्म कहते हो। मैं तो उसे धर्म स्वीकार ही नहीं करता। धर्म एक व्यापक शब्द है। वह सबके लिए एक सा रहता है, एक रस है। भिन्न भिन्न प्रकार के रूढ़िवादी मानव को आचार्यों को एकत्रित करके इनका शास्त्रर्थ अर्थात उनका विचार विनिमय होना चाहिए! और वह राजा की अध्यक्षता में होना चाहिए। राजा अध्यक्ष बने। अपने पुरोहित को ले करके और भिन्न भिन्न जो अपने धर्म स्वीकार करते हैं। जैसे मुहम्मद के मानने वाले, ईसा के मानने वाले, महावीर के मानने वाले, जिन्होंने वेद के सर्वत्र साहित्य को अग्नि के मुख में परणित कर दिया है। जब मुझे वह काल स्मरण आता है तो मेरा हृदय भयभीत होने लगता है मानो विडम्बित हो जाता है। जिन महापुरुषों ने वे कौन? हनुमान जैसे आचार्य जो सूर्य विद्या को इतना जानते थे कि सूर्य विद्या उनके कंठ में वास करती थी। सूर्य का जितना विज्ञान था, जितनी किरणें थीं क्या क्या कर्म किए? परन्तु वह विद्या नष्ट हो गई। वह अग्नि के मुख में चली गई महावीर के मानने वालों के काल में और बुद्ध के काल में। मैं इस सम्बन्ध में जाना नहीं चाहता। विचार विनिमय क्या कि ये पोथियें अग्नि के मुखार बिन्दु में चली गई। कुछ रही तो मुहम्मद के मानने वालों ने नष्ट कर दिया। यही नहीं एक भरत की भूमि में नहीं कर्ण की भूमि में भी नाना साहित्य महाराज कर्ण मानो देखो, रथ की विद्या को जानता था। रथ किस काल में कैसा किस प्रकार का उसका सारथी बना हुआ हो। वह विद्या, पोथी की पोथी थी। कर्ण के राष्ट्र में समाप्त हो गई। गन्धारा कृत देवाः इसी प्रकार नाना विद्या कहाँ नहीं थी? परन्तु वह सब मुहम्मद के मानने वालों का ऐसा समाज बना कि पोथी की पोथी अग्नि के मुख में परणित कर दी गई। क्या करूं परन्तु

यह दुर्भाग्य है, चरित्र का अभाव है इसी प्रकार मैं कहता हूँ कि हे संसार के राष्ट्र नेताओं हे राष्ट्रनायकों! तुम्हारा एक समाज हो और वह समाज एकत्रित हो करके जिसको ये धर्म कहते हैं उसके मानने वाले सब एकत्रित हो करके उनका शास्त्रार्थ हो। बुद्धिमानों के मध्य में हो, जिस धर्म में विज्ञान हो, व्यापकता हो ईश्वरीय वाद हो, जिस में हिंसा न हो, अहिंसा परमोधर्म हो ऐसी पताका को लेकर स्थापित करोगे। वही तुम्हारा धर्म है, वही मानवता है, वही महत्ता है। इन्हीं विचारों से तुम्हारा जीवन ऊँचा बनेगा।

हे राजन्! यदि तू अपने राष्ट्र में धर्म की स्थापना चाहता है, और यह चाहता है कि मेरे राष्ट्र में सुरापान न हो, हिंसा न हो, क्योंकि अहिंसा राष्ट्र का एक अंग कहलाया गया है, और छात्र भी राष्ट्र का एक अंग है, और यह जो ब्रह्म विद्या है, यह राष्ट्र का एक विशेष अंग है। क्योंकि राष्ट्र का जो निर्वाचन होता है वह अज्ञानता के लिए नहीं होता। आज जो राष्ट्र का निर्वाचन हो रहा है वह अज्ञानता के लिए हो रहा है। वह कैसे हो रहा है? जिस मानव को यह ज्ञान भी नहीं है कि राजा किसे कहते हैं, वह राष्ट्र का निर्वाचन कर रहा है। जिसको यह प्रतीत नहीं कि तू शौचालय जा रहा हैं, शौचालय क्या है? जल क्या है? तो जल से अपने पैरों को कैसे प्रक्षालन करेगा? जो भी मानव राष्ट्र का निर्वाचन कर रहा है अरे, यह राष्ट्र, यह समाज अज्ञानता के क्षेत्र में जाएगा ही।

जहाँ भगवान् मनु के राष्ट्र का निर्माण हुआ, जब भगवान् मनु को राजा निर्वाचित्त किया तो ब्रह्मवेत्ताओं का एक समाज एकत्रित हुआ और ब्रह्मवेत्ताओं ने यह कहा कि समाज जो तेरे समीप है इसे कर्त्तव्यवाद के मार्ग पर ले आओ। जहाँ जातीयता की आभा का एक अस्तित्व हो रहा है, क्या है जातीयता? जातीयता किसे कहते हैं? जातीयता तब तक रहेगी जब तक हिंसा समाप्त नहीं होगी राष्ट्र से। जातीयता उस काल तक रहेगी जब तक यह सर्प राज्य रहेगा। जातीयता उस काल तक रहेगी जब तक आलस्य और प्रमाद रहेगा। जातीयता उस काल तक रहेगी जब तक विद्यालयों में दुराचार होता रहेगा जातीयता उस काल तक रहेगी जब तक शिक्षा प्रणाली में वर्ण व्यवस्था नहीं आ जाएगी। परन्तु जातीयता समाप्त करने का घोष्ण कर रहा है। क्यों घोष कर रहा है? वह स्वार्थ

के लिए घोष कर रहा है। वह मानवता के लिए घोष नहीं कर रहा है। वह उनके गृहों में आना नहीं चाहता। परन्तु अपने आँगन में ही विराजमान हो करके कहता है कि जातीयता समाप्त होनी चाहिए। वह आए और आकर के उनके द्वारा त्याग तपस्या हो और राजा संन्यासी बनकर के जिनको मानव यह कहते हैं कि इनके भुजाओं का भोज भी पान नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे अशुद्ध हो गए। वह किस काल में अशुद्ध हो गए? शिक्षा के अभाव में वह अपवित्र हो गए। अरे, उन्हें शिक्षा का मार्ग दो। शिक्षा धर्म होगा, मानवता होगी। तो उनसे घृणा का उपदेश कौन दे रहा है? राजा दे रहा है। क्यों दे रहा है? क्योंकि वह अपने स्वार्थ में है। इसलिए स्वार्थवाद नहीं रहना चाहिए। जहाँ स्वार्थवाद नहीं रहता वहीं मानवता आ जाती है और जहाँ मानवता आ जाती है वहाँ अन्धकार नहीं रहता और जहाँ अन्धकार नहीं रहता वहाँ प्रकाश ही प्रकाश रहता है। उस अनुपमब्रह्म के प्रकाश में, उस ज्ञान के प्रकाश में सर्वत्र समाज एक रस बन जाता है।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। मैं तो एक आभा प्रकट करा रहा हूँ कि समाज कैसा हो। कैसा बन रहा है। यह मेरा एक वाक्य है। इसके पश्चात् राजा के राष्ट्र में यह नियम होने चाहिए कि समाज हो बुद्धिमानों का, और आज जो कहते हैं मुहम्मद वाले कि मुहम्मद साहिब का सिद्धांत ऊँचा है, ईसा वाले कहते हैं हमारा ऊँचा है और नाना कहते हैं कि हमारा ऊर्ध्व गति में है। मैं यह कहता हूँ हे राजन्! तेरे राष्ट्र में विवाद नहीं होना चाहिए। विवाद भी रक्त भरी क्रान्ति का एक मूल कारण बना हुआ है। यह विवाद क्यों बना हुआ है इसको क्यों नहीं विचारता। राष्ट्र का निर्वाचन इसलिए नहीं हुआ कि यह ऐसे ही त्यागे जाए। इनके आचार्यों को एकत्रित करो, उनका समाज होना चाहिए, इनके सम्मेलन होने चाहिए और यह विद्या प्रकाश में प्रकाशित हो जाए। उसी धर्म को अपना करके वही धर्म है और उसी की स्थापना होनी चाहिए, जो विज्ञान के ऊपर महान् आ जाए। यह जो नाना रूढ़ियां हैं। जिन्हें धर्म कहते हैं इनको कहते हैं सूर्य में चन्द्रमा में मानव चला गया तो ये कहते हैं यह तो परमात्मा का प्रकाश है वहाँ कौन जा सकता है। और नाना धर्मों के कहते हैं कि चन्द्रमा में मानव चला गया

है, जा सकता है? नहीं नहीं यह अशुद्ध वाक्य है। परन्तु जब कहते हैं भाई विज्ञान को देखो, वेद को दृष्टिपात करो। दर्शनों का अध्ययन करके तुम्हें प्रतीत होगा कि मानव कहाँ चला गया था। कहाँ नहीं चला गया। यह विचार प्रत्येक मानव समाज में होना चाहिए। इन आचार्यों की गोष्टियां होनी चाहिए। इन गोष्ठियों में सर्वत्र संसार के बुद्धिमान राजाओं का सम्मेलन हो और सम्मेलनों में यह वार्त्ता हो और यह नाना रूढ़ियां समाप्त होनी चाहिए।

यहाँ एक गुरु नानक देव जी हुए हैं। उन्होंने कहा है हे मानव! यह जो रक्त का बिन्दु है मानो वस्त्र पर रक्त का बिन्दु प्रवेश कर जाए तो उस रक्त के बिन्दु का जल से शोधन नहीं होगा। अरे, मानव! तेरी अन्तरात्मा में दूसरे के रक्त पान किए जाते हैं अरे, क्या वह तेरे अन्तःकरण का जल से शोधन हो जाएगा जहाँ ऐसे महापुरुषों ने ऐसे शब्द उच्चारण किए हैं, परन्तु उनके मानने वाले कहते हैं कि यह तो हमारा यह अंग बन गया है। क्योंकि हमने क्रान्तियां की हैं। यवनों से संग्राम किए हैं। परन्तु संग्राम के समय संग्राम है, धर्म के स्थान पर धर्म है। मानवता के स्थान में मानवता है। इसके नाना प्रकार के अंग बना लेने चाहिए जिस आसन पर जाएं उसी प्रकार का विचार उसी में मानवीयता होनी चाहिए।

आधुनिक जगत् में एक राष्ट्रीय क्रान्ति का एक अंग बन रहा है! अरे, क्यों बन रहा है? क्योंकि वह अज्ञान है। राजा जो धर्म स्वीकार करते हैं इन धर्मों के आचार्यों का सम्मेलन नहीं करते और उनकी जो वार्त्ता है उसको निर्णय नहीं कर पाते। इसलिए अज्ञान से धर्म भी अधर्म में परणित हो रहा है। धर्म धर्म नहीं रहा है। वास्तव में तो धर्म को कोई नष्ट नहीं कर सकता। धर्म सदैव धर्म होता है। धर्म की स्थापना करने के लिए राष्ट्र का निर्वाचन होता है। या धर्म को नष्ट करने के लिए होता है। धर्म की रक्षा करने के लिए राजा का निर्वाचन होता है। कर्त्तव्यवाद ही मानव का धर्म है, और कर्त्तव्यवाद की कितनी विस्तृत व्याख्या है। यह सर्वत्र कर्त्तव्य है, जो मानव अपनी अन्तरात्मा में जो प्रेरणा आती है और वह जो कर्म करता है वह धर्म कहलाता है। वह धर्मश्चर होते हैं। यहाँ नाना पन्थ समाप्त हो जाएंगे। इन विचारों से यदि राजा यह घोषणा कर दे कि अन्तःकरण

में जो प्रेरणा आए, उसके आधार पर तुम अपना कर्म करना प्रारम्भ करो। वही कर्त्तव्य बन करके राजा के राष्ट्र में न तो न्यायालय रहेंगे, मानव, मानव बन जाएगा, देवता, देवता बन जाएगा। इसीलिए मैं अपने पूज्यपाद गुरु देव से यह वार्त्ता प्रकट करा रहा था। आज मैं विशेष चर्चाएं प्रकट कराने के लिए नहीं आया हूँ।

मैं यह उच्चारण करने के लिए अवश्य आया हूँ कि प्रत्येक धर्मज्ञ को इन रूढ़ियों को समाप्त करना चाहिए। छात्र ऊँचा होना चाहिए। मैं अपने विचारों की विशेष चर्चा प्रकट नहीं दूंगा। मैं केवल यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ। राजा के राष्ट्र में मैंने दो अंगों की चर्चा की है वह सबसे प्रथम धर्म के आचार्यों की चर्चाएं की जितने धर्म के आचार्य हैं वे अपने अन्तःकरण में मानो राजा की मध्यस्थता में उनसे शास्त्रार्थ हो, विचार विनिमय हो गोष्ठियां हों और उनको अपनाने में किसी प्रकार का अन्तःकरण में भय नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार आज जब राजा के विचार समाज में आ जाएंगे तो समाज स्वतः ऊँचा बन जाएगा। इसी प्रकार छात्र ऊँचा बनेगा राष्ट्र में महत्ता आएगी। छात्र एक ही पंक्ति में विद्यमान हैं। एक द्रव्यपति का बालक और एक द्रव्यहीन का बालक दोनों का एक ही आभा में एक ही अंग से दोनों का अध्ययन किया जाएगा तो आचार्य ऊँचा बनेगा? यह विचार आज मैं इसलिए देने के लिए आया हूँ कि राजा स्वयं छात्रें में दो विभाग बनाता है। एक ऊँचा विभाग है और एक साधारण विभाग है। ये दोनों विभाग राजा के राष्ट्र में क्यों हैं? क्योंकि वह स्वार्थवाद हैं कि हमारा बालक ऊँचा बने। मानो जो अशिक्षित हैं वे उनका भोजन बन जाएं और यह जो मानव शिक्षित हैं जितना भी शिक्षित समाज है वह उनको भक्षण करता रहे। तो परिणाम यह कि यहाँ राष्ट्र में रक्षक बनना चाहिए। जहाँ विद्या अध्ययन करके रक्षक बनना चाहिए था वहाँ शिक्षित समाज भक्षक बनने लगा। यह कैसे ऊँचा बनेगा? इसीलिए रक्षक बनो, भक्षक नहीं। राजा बन करके भक्षक न बनो। परन्तु जितना भी निर्वाचन होता है उसमें रक्षा करने वाले बनो भक्षक नहीं बनो।

आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ। आधुनिक जगत् में न्यायालयों में क्या हो रहा है। जहाँ बुद्धिमान विद्यमान होकर के विचार विनिमय करते हैं कि हम राष्ट्र को

कैसे ऊँचा बना सकता है। अरे, यहाँ राष्ट्र के विद्यालयों को ऊँचा बना दो यहाँ शिक्षित समाज को ऊँचा बना दो। यह राष्ट्र स्वतः ही ऊँचा बनता रहेगा। क्योंकि वह स्पष्ट समाज बन जाएगा। चिन्ता करने की उनकी सामग्री प्राप्त होगी। इसीलिए राष्ट्र का निर्माण आभा में मुक्त होता रहे। आज जो तुम्हारी पताका है, राष्ट्रीय पताका को संसार अपनाने के लिए तत्पर हो जाएगा।

अब में अपने पूज्यपाद गुरु देव से आज्ञा पाऊँगा। आज मैं इतना ही वाक्य प्रकट कर सका कि छात्र ऊँचा हो, मानवता बने और कर्त्तव्य का पालन हो, आलस्य प्रमाद समाप्त होना चाहिए। कर्मठ प्राणी ही ऊँचा बनता है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा। कल यदि मुझे समय देंगे तो विज्ञान के सम्बन्ध में कल प्रकट करूंगा। क्योंकि विज्ञान का भी एक अंग बना हुआ है, वैज्ञानिकों का संगम यह है, उनका विचार यह है कि मांस का भक्षण करने वाले चन्द्रमा में चले गए गो घृत पान करने वाले यहीं रह गए। ये चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। गुरुदेव मुझे समय देंगे तो आज का हमारा यह विचार अब समाप्त होने जा रहा है। आज के विचार क्योंकि गुरु शिष्य की परम्परा ऊँची हो। वर्ण व्यवस्था का निर्माण हो। और राष्ट्र ऊँचे बुद्धिमानों की जो अपने को धर्म धर्म पुकारते हैं, उन धर्मों की एक गोष्ठियां हों, शास्त्रर्थ हों विचार विनिमय हों उनको राजा अपनाने वाला हो। ऐसा मेरा यह विचार है। इन विचारों को अपनाने से समाज ऊँचा बनेगा, मेरी यह धारणा बनी हुई है कि ऐसे कर्मठों से ही समाज ऊँचा बनेगा। अब मैं अपने गुरुदेव से आज्ञा चाहूँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अभी अभी विचार प्रकट किया इनके विचारों में एक ऐसी अनुपम वेदना है, विचार बहुत ही परम्परा के विचारों के आधुनिक जगत् के विचारों से उनको कष्ट करने वाले हैं। हमारी ये इच्छाएं हैं कि जैसा मेरे गुरु ने कहा है। इन विचारों में एक महत्ता होनी चाहिए। इन विचारों को एक महान् क्रियात्मक रूप में लाना चाहिए। कल मेरे पुत्र विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकट कर सकेंगे। परन्तु आज का हमारा विचार यह कि हम सदैव अपने जीवन को यौगिकता में ले जाएं। मानवता में ले जाएं। कल मेरे पुत्र कुछ लोक लोकान्तरों की जो चर्चाएं हैं

आधुनिक जगत् प्राचीन ऋषि मुनियों का जीवन उनकी आभा से मानो आभावित करेंगे। आज ाक यह विचार अब समाप्त होने जा रहा है। अब समय मिलेगा तो कुछ दार्शनिक चर्चाएं हम कल प्रकट करेंगे। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी विज्ञान के ऊपर अपना विचार देंगे। आधुनिक जगत् का विज्ञान क्या है? पूर्व जगत् का विज्ञान क्या था? इस पर हम भी कुछ अन्त में टिप्पणियां करेंगे। आज का विचार समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

१२ 06 04 1978 पुष्प 32 निष्काम कर्तव्य पालन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परम पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रभावशाली है। उसी की प्रतिभा इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत है। जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है, मानो सर्वत्र आभामय रमण करने वाला वह मेरा देव जो संसार को गति दे रहा है और यह संसार उसी से गतिशील दृष्टिपात आ रहा है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड में वह व्याप्त हो रहा है। उसी की आभा में प्रत्येक मानव अपना कर्त्तव्य कर रहा है और आभामय यह ब्रह्माण्ड, आभामय यह मानवीय जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल विचार विनिमय यह कि परमात्मा इस संसार में व्याप्त है और उसी की आभा में यह जगत अपना प्रत्येक कार्य कर रहा है अथवा कार्य में रत्त है। परन्तु जब यह विचार आता है कि परमपिता परमात्मा व्याप्त है तो मानव को क्या करना चाहिए? प्राणी मात्र अपनी आभा में रमण कर रहा है। मानव का कर्त्तव्य है कि वह अपना कार्य निष्काम भाव से करता चलाजाए। जितना भी मानवीय कर्म है इसमें जब निस्वार्थ भावना होती है तो

उसका वह कार्य महान है।

बेटा! तुम्हें प्रतीत होगा, द्वापर के काल में महाराजा अर्जुन ने कहा था कृष्णा से कि महाराज! हम क्या करें तो भगवान कृष्णा ने कहा था, हे अर्जुन! कर्म करता चला जा, परन्तु उनके फलों की इच्छा न कर। फल की इच्छा करने ही से उस मानव की आभा समाप्त हो जाती है। मानवत्व समाप्त हो जाता है। वेद के ऋषियों ने यह कहा कि मानव को जितना भी कर्म करना है वह निष्काम कर्म होना चाहिए। निष्काम की मीमांसा करने वाले ऋषियों ने बहुत ऊँची ऊँची उड़ान उड़ी है। जैसे माता अपने शिशु का पालन कर रही है, मानो उसका पालन कर सकती है, उसको मृत्यु नहीं दे सकती। क्योंकि पालन करना तो उसका कर्त्तव्य है, निष्काम कर्म है और मृत्यु दण्ड इसलिए नहीं दे सकती। क्योंकि उसका निर्मित किया हुआ नहीं है। जिस व्यक्ति को जो मानव निर्माण नहीं करता है उस व्यक्ति को वह नष्ट नहीं कर सकता और न वह नष्ट होने के लिए उपयुक्त है। वे परमपिता परमात्मा उसके भविष्य को निर्धारित कर देता है, उसमें कर्मठता आ जाती है कि निष्काम कर्म योग ही परमात्मा के राष्ट्र में रमण करना है।

मेरे प्यारे! एक मानव अपनी आभा में गति कर रहा है अथवा राष्ट्र का पालन कर रहा है, वह राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है। राष्ट्र में विद्यमान है, यदि वह निष्काम कर्म में संलग्न है वह राष्ट्रीयत्व को ऊँचा ले जाता है और उसमें निष्काम कर्मठता है, तो वह महान् है औश्र जब उसमें प्रजा के वैभव और प्रजा के ऐश्वर्य को अपने ऐश्वर्य में परणित करने लगता है वह राजा ज्ञान से शून्य हो जाता है और जब ज्ञान और विज्ञान से शून्य हो जाता है, तो उसके जीवन में प्रकाश नहीं रहता और जब प्रकाश नहीं रहता तो वह राष्ट्र में प्रजा को ऊँचा मार्ग नहीं दे सकता। इसलिए उसे ऊर्ध्व मार्ग देना है और वह जो मार्ग है वह उसी काल में देता है जब वह निष्काम अपनाकार्य करता है। निष्काम कर्म से प्रजा का पालन कर रहा है, नियमावलियों को निर्धारित कर रहा है, प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाला नहीं है, तो वह राजा अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है औश्र वह राजा ही नहीं देवता कहलाता है। जब हम इस पर गम्भीरता से चिन्तन करना प्रारम्भ करते हैं तो विचार आता है कि यहाँ प्रत्येक मानव को अपना निष्काम कर्म

करना है।

एक यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान होता है, अपनी पत्नी से कहता है कि आओ, हम देव पूजा करने के लिए तत्पर हो जाएं, यह

हमारी देव पूजा है। देव पूजा का अभिप्राय क्या है कि हम देवताओं का आह्वान करें और देवताओं को समीप ला करके हम इन्हें हवि प्रदान करना चाहते हैं। वह हवि प्रदान करता है। यज्ञमान अग्नि में स्वाहा कहता है और वह स्वाहा क्यों कह रहा है? वह देवताओं को कुछ अपनी वाणी से, अपनी भुजों से साकल्य प्रदान कर रहा है। वह क्यों कर रहा है? वह अपने मानवीय जीवन में एक पवित्रता को लाना चाहता है। वह निष्काम कर्मठता में देव पूजा कर रहा है और देव पूजा का अभिप्राय क्या है कि हम देवताओं के समीप चले जाएं और देवताओं को हम वास्तविक जो देवता हैं जो देते हैं, उसे हम धारण करते चले जाएं, अपने में लाते चले जाएं, जिससे उस आभा में मानव को अपनी मानवता को ऊँचा बनाना है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! यज्ञमानों के समीप एक समय महर्षि पणपेतु मुनि महाराज याग कर रहे थे। भयंकर वनों में दोनों साकल्य एकत्रित करते और याग कर रहे थे। जब याग कर्म कर रहे थे तो महर्षि श्वेत केतु शाण्डिल्य के समीप पहुंचे। श्वेतकेतु शाण्डिल्य मुनि बोले हे यज्ञमान! आहुति दे रहे हो इसका क्या अभिप्राय है? यज्ञमान कहता है कि देवताओं को हूत दे रहा हूँ। मैं देवताओं की पूजा कर रहा हूँ। यज्ञमान की पत्नी कहती है कि हे ब्राह्मण! हे शाण्डिल्य गोत्रीय ब्रह्मवेत्ता! हम हवि प्रदान कर रहे हैं और अग्नि को देवताओं का दूत बना करके, देवताओं का प्रतिनिधि बना करके इस साकल्य का रूपांतर करते हुए हम प्रभु से याचना कर रहे हैं, हम देवताओं की उपासना कर रहे हैं कि देवताओ! तुम आओ मेरे गृह को भरण कर दो, मेरे गृह में देवताओं का वास हो जाए। क्योंकि जो देते ही रहते हैं वे कौन देवता हैं? वह ब्राह्मण हैं, वह जड़ देवता हैं। जिनके कारण हमारा जीवन संचालित होता है, जीवन में एक आभा आती है, पवित्रता आती है, वह यज्ञमान कितना सौभाग्यशाली है जो आहुति दे रहा है। हूत कर रहा है, अग्नि में साकल्य

प्रदान कर रहा है, देवता उसे पान कर रहे हैं। जितना उसका हृदय स्वच्छ होता है उतना ही देवता प्रसन्न होते हैं। देवता कौन बेटा! जो हमारे मानव जीवन में मानो पिंड और ब्रह्माण्ड की कल्पना करने वाले ऋषि मुनियों ने यह कहा है कि हमारे द्वारा मानवत्व ऊँचा और पवित्र होना चाहिए।

हमारे यहाँ आचार्यों ने यह कहा है कि हे मानव! तू निष्काम कर्म कर। निष्काम कर्म से ही तेरे मानवीय जीवन की वृद्धि हो जायगी। तेरा जो द्रव्य है वह तेरे समीप आ जाएगा। उसकी तू कामना न कर। परन्तु कर्म करता चल, कर्त्तव्य का पालन करता चल। अधिकार तो तुझे स्वतः ही प्राप्त होगा। तू उसकी इच्छा प्रकट न कर।

आज वेद का ऋषि यही कह रहा है। आज मैं तुम्हें कहाँ ले गया हूँ। देखो, एक माता का प्रिय बालक है, एक माता का पुत्र है वह माता की सेवा कर रहा है, माता की आज्ञा का पालन कर रहा है, वह कर्त्तव्य कर रहा है, माता उसे स्नेह देती है अथवा नहीं देती। हे मानव! तू यह इच्छा न कर। तू माता की ममतामयी आनन्दमयी गोद में प्रवेश करता चल। विचार विनिमय क्या कि मानव को सुकर्म करना है या निष्काम कर्म करना है। जब संसार में प्रत्येक प्राणी प्रत्येक मेरी पुत्री अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगती है, उसे फल की प्राप्ति हो या न हो परन्तु जब यह इच्छा नहीं करता, उसे परमपिता परमात्मा का देवता उसके गृह को भरण कर देते हैं। आज का विचार विनिमय क्या कि जीवन में एक महत्ता होनी चाहिए, ब्रह्म इस ब्रह्माण्ड के कण कण में व्याप्त है, उसको क्रियाशील बना रहा है। प्रत्येक लोक, एक मानव क्या प्राणी प्राणी अपने अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। जैसे वृक्ष अपनी छाया दे रहा है। वह निष्काम कर्म कर रहा है, प्रकृति उसे उन्नत बना देती है, प्राण शक्ति उसमें भरण कर देती है। परिणाम यह होता है कि वह छाया देता ही चला जाता है, उसे कोई स्वार्थ नहीं होता इसी प्रकार प्रत्येक मानव मानव को विचारना है कि हम अपने कर्त्तव्यवाद का पालन करते चले जाएं। हमारा यह कर्त्तव्य है। हमारे यहाँ परम्परा में ही ब्रह्मवेत्ताओं का संग विद्यमान होता रहा है, ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में ब्रह्म दर्शनों का चिन्तन होता रहा है और ब्रह्म चिन्तन का अभिप्राय कि ब्रह्म की आभा, ब्रह्म का जो यह व्याप्य जगत् है वह जो

परमात्मा का अमूल्य जगत है वह ब्रह्म में ही ओत प्रोत हो रहा है। ब्रह्म विचारक ब्रह्मवेत्ता विद्यमान हो रहे हैं, विचार विनिमय चल रहा है, उनके दर्शनों का जो मानो चिन्तन है उस विशेष चिन्तन को कौन श्रवण कर रहा है? उस निष्काम चिन्तन को मृगराज, सिंहराज, हिंसक प्राणी पान कर रहे हैं? क्यों कर रहे? क्योंकि वह दर्शनों की मीमांसा कर रहा है, वह परमात्मा की वाणी से ही परमात्मा की गाथा गा रहा है। बेटा! वह जो गाथा गा रहा है वह ब्रह्म का वर्णन कर रहा है। प्रत्येक मानव गाथा गा रहा है, माया का वर्णन कर रहा है। इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र एक माला का एक मनका है उस माला के मनके हैं जिसको ऋषि मुनि धारण करते हैं। वह मानो वेद के व्याख्यान हैं, सूत्र हैं, ऋचाएं हैं उन्हें अपने कंठ में धारण करता है, अपने अन्तरात्मा में धारण कर लेता है।

बेटा! कैसी अमूल्य वाणी है। वह एक ही सूत्र के मन्तव्य हैं जैसे नाना लोक लोकान्तर एक ही सूत्र में पिरोए हुए हैं। एक ही सूत्र के वे मनके हैं। एक माला सी दृष्टिपात आती है। कैसी प्रिय माला है बेटा! कैसा प्रिय मेरे प्यारे! प्रभु का यह जगत है जो एक ही सूत्र में पिरोया हुआ एक सर्वत्र ब्रह्माण्ड में व्यापक हो रहा है, कैसा है वह मानो एक ही सूत्र में नाना आकाश गंगाएं पिरोई हुई हैं, और उन आकाश गंगाओं मेंजो असंख्य लोक लोकान्तर हैं वे मानो एक ही सूत्र में पिरोए हुए हैं। जैसे वेद का प्रत्येक वेदमन्त्र पिरोया हुआ है। इसी प्रकार आगे और चिन्तन करोगे तो वेद का एक एक अक्षरा पिरोया हुआ है। आगे इसमें अनुसन्धान करोगे तो यह जो अक्षर हैं इन्हीं अक्षरों से तरंगें उत्पन्न होती हैं। एक एक तरंगें मानो पिरोई हुई उसी धागे में हैं और चिन्तन करोगे तो नाना प्रकार की जो तरंगें हैं यह उसी में पिरोई हुई हैं और आगे अनुसन्धान करोगे तो जितना विज्ञान है, जितना भी प्रकृतिवाद है वह सर्वत्र मानो देखो, उसी सूत्र में पिरोया हुआ है। हे मानव! तू उस मेरे प्यारे! महान प्रभु का चिन्तन कर और मनन करने से यह प्रतीत होता है कि हे मानव! तू निष्काम कर्म करता चल। तू अपनी आभा में रमण करता हुआ, अपनी मानवता में रमण करता है। तू देवता कहलाता है। हे मानव! तू देवता बन! कैसा देवता बन? तू निष्काम कार्य करता चला जा। ऐसा निष्काम बन मानो पुत्री

का पालन कर रहा है, कन्या याग कर रहा है बेटा! हमारे यहाँ कन्या याग का वर्णन आता है। एक समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से यह कहा कि महाराज! यह कन्या याग क्या है? तो महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कन्या याग का वर्णन किया है। उन्होंने कहा कन्या को पालन करने का नाम याग माना है। सबसे प्रथम कन्या देव लोक में रहती है, देवताओं के संरक्षण में रहती है और वह कन्या देवताओं के आश्रित रह करके विनोद करती रहती है, अपने आँगन में युक्त रहती है। जब वह प्रबल होने लगती है पितर लोकों को प्राप्त हो जाती है। वह पिता ही उसका लालन पालन कर रहा है। उसी के संरक्षण में रहती है जहाँ पिता वास करता है वहीं कन्या वास करती है। वह पितर लोक कहलाता है। उसके पश्चात् वह जब पितर लोक में पनपती रहती है और वह अग्नि की पूजा करती रहती है। गार्हपत्य अग्नि की पूजा क्या है? बेटा! वह तपती रहती है। ब्रह्मचर्य से तपती रहती है, वीरांगना बन जाती है और विदुषी बन करके वह मृगराजों से खिलवाड़ करती रहती है।

मुझे स्मरण आता रहता है कात्यायनी का जीवन और भी नाना जीवन मुझे स्मरण आते रहते हैं पुत्रियों के। उनके जीवन काल में वे मन्त्रों से विनोदित होती रहतीं और हिंसा उनके समीप नहीं आती थी। अहिंसा परमो धर्मः का पालन उनके जीवन में ऐसे अवतीर्ण हो रहा था। जैसे प्रातः काल का सूर्य प्रकाश को लेकर के आ जाता है। वह प्रकाश ही देता रहता है। इसी प्रकार इनके यहाँ अहिंसा का पालन होता रहा। हिंसा नाम की कोई वस्तु नहीं होती। ज्ञानी के द्वारा हिंसा नहीं होती।

मेरे प्यारे! आओ! मैं विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता। केवल परिचय देने के लिए आया हूँ कि ब्रह्मयाग होता रहता। पितर लोकों में प्रवेश करती है और गर्हपत्य नाम की अग्नि की पूजा करती है और अहिंसा परमोधर्मः का पालन करते हुए वह पति लोकों को प्राप्त हो जाती है और पति लोक को प्राप्त होने के पश्चात् बेटा! उस समय वह पति लोक को प्राप्त होने के पश्चात् बेटा! उस समय वह पति के प्राप्त होने तक वह याग करते हैं। याग कर्म करने का उन्हें अधिकार प्राप्त हो जाता है। वह याग है। वह मेरी प्यारी पुत्री देव लोक, पितर लोक और पति लोक को प्राप्त हो करके वह महान सन्तान

का याग करते हैं और ऊर्ध्व में याग को करते हुए मानो वह एक से द्वितीय की कल्पना करते हैं।
विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! ऋषि मण्डल में वैदिक साहित्य को चिन्तन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे यहाँ प्रत्येक शुभ कार्यों का नाम हमारे यहाँ याग मानो है। याज्ञमय मानव श्रेष्ठतम् ब्रह्मकर्मणाः। मेरे प्यारे! वह जो कर्म है वह महान कर्म हैं। प्रत्येक कार्य मानव का याग है जो निष्काम कर्म कार्य कर रहा है। वह सर्वत्र याग ही कहलाता है। वह सदैव जागरूक रहता है और वह विचारता रहता है वही संसार में कुछ प्राप्त कर लेता है और जोआलस्य और प्रमाद में अर्पित हो जाता है, कर्त्तव्यवाद तो रह नहीं पाता परन्तु वह अधिकार ही अधिकार को पुकारने लगता है उसका परिणाम प्रिय नहीं होता।
आओ मेरे प्यारे! आज तुम्हें विशेष चर्चा देते नहीं आया हूँ। केवल परिचय यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को यहाँ निष्काम कर्म करना चाहिए। जैसे मेरी प्यारी माता अपने बालक का निष्काम उसका पालन करती है, लोरियों का पान कराती रहती है, शिक्षा देती रहती है, वह माता निष्काम कर्म वाली है। आचार्य भी विद्यालय में शिक्षा दे रहा है, वह सुयोग्य बना रहा है, सुसज्जित बना रहा है वह मानो निष्काम कर्म कर रहा है। वह ब्रह्म लोकों को प्राप्त हो रहा है। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि मानव को ऐसा कार्य करना चाहिए संसार में जिससे उसको मोह न हो यदि मोह हो गया तो वह वहीं निचली स्थली पर आ जाता है।
मैं तुम्हें एक ऋषि की गाथा प्रकट कर रहा हूँ। बेटा! तुमने श्रवण किया होगा एक महर्षि शाकल्य मुनि महाराज हुए हैं। महर्षि शाकल्य मुनि महाराज तपस्वी थे। वह तपस्या करते हुए यह जो पञ्च महाभूतों का शरीर है, जो स्थूल है, उस स्थूल को जानते हुए सूक्ष्म को जानकर के कारण लिंग में पहुंचने वाले थे, मोक्ष के निकट जा रहे थे, तपस्या कर रहे थे। उनका तप विशालता में चल रहा था। जब वह तप कर रहे थे तो देखो, आसन पर विद्यमान रहते, विवेकी थे, महान थे, ज्ञान में पारायण थे, परमात्मा के निकट जा रहे थे एक हिरनी गर्भाशय से पूर्ण थी, उसको हिंसक प्राणी उसे वृत

करने लगे। हिरनी तीव्र गति कर रही थी। शाकल्य मुनि आश्रम में उस हिरनी का गर्भाशाय पृथक हो गया। वह तो भयभीत थी। अब ऋषि ने दृष्टिपात किया कि यह क्या है। उसने दृष्टिपात किया कि एक बाल्य हैं उन्होंने जल का कुछ परीक्षण किया और जल का परीक्षण करके श्वांसों की गति प्रबल हुई हो जाने के पश्चात् वह हिरनी का बालक जीवित हो गया। जीवित होने के पश्चात् उन्होंने उसे अपने हृदय में आलंगित किया और आलिंगन करते हुए उसकी पालना होने लगी। पालन करता हुआ ऋषि कर्त्तव्य से दूरी चला गया। पालन कर रहा था परन्तु उसकी ममता में व्यस्त हो गया। उसके मोह में इतना व्याकुल हो गया कि पूर्व भोजन वह हिरनी बाल्य करता उसके पश्चात् वह किया करते बेटा! वह समय आने पर वह हिरनी का बालक वृद्ध हो गया जब शरीर का विच्छेद हो गया तो ऋषि को उसकी एक वेदना लग गई। वह कह रहा था कि मेरा बाल्य कहाँ चला गया। उसे मोह हो गया उसी मोह वेदना में ऋषि ने अपने शरीर को भी त्याग दिया। जब शरीर को त्याग दिया तो वह आत्मा के ज्ञान से दूर हो गया था। एक सुन्धी नामक राजा थे, उन राजा के यहाँ उनकी पत्नी का नाम शकुन्तका था। उसके गर्भ में उस आत्मा ने प्रवेश किया। जब आत्मा ने प्रवेश किया तो आत्मा को ज्ञान पूर्ण था। जब माता के गर्भस्थल में सिंह गर्जना कर रहे हैं, वह नार्किकत्व में चला गया। वह कहता है अपने प्रभु से हे प्रभु! मैं पूर्व जन्म में मोह कर लिया था, हे प्रभु! मुझे इस नार्किकता से दूरी ले चल। प्रभु! मैं आगे मोह नहीं करूंगा। हे प्रभु! मैं ममता में नहीं जाऊँगा। मुझे आप यहाँ से पृथक कीजिए। वह नौ मोह पूर्ण होने के पश्चात् इस संसार में आ गया। उसे ज्ञान रहा कि तूने संकल्प किया हैं। उसे मोह नहीं रहा। राजा के यहाँ जब बालक का जन्म हुआ तो नाना ऋषियों का आगन हुआ। कहीं याग हो रहे हैं कहीं द्रव्य दान हो रहा है राजा के यहाँ एक आनन्द हो रहा है।

बालक कुछ समय के पश्चात् जब प्रबल होने लगा तो उसमें ममता नहीं थी, मोह नहीं था। जब ममता और मोह नहीं था तो व्याकुल हो रहा था। बुद्धि के चिकित्सकों के द्वारा निरीक्षण कराया गया, परन्तु उसका कोई निबटारा नहीं हुआ। बाटिका में स्थिर कर दिया। बाटिका को नष्ट करने लगा। राजा को जब क्रोध आया तो उस बालक को राष्ट्र

से पृथक कर दिया। उसका नामोच्चारण करके राजा ने कहा कि मेरे राज्य से पृथक हो जाओ। यह राष्ट्र तुम्हारे योग्य नहीं है। महा मूर्ख हो। तुम पामर हो। उच्चारण करके राजा मोहन हो गया और वह भयंकर वन को गति करने लगा।

आत्मा में लीन रहने वाला, आत्मा में स्थिर रहने वाला वह मानो पूर्व जन्म का महर्षि गति कर रहा था। भयंकर वनों में जड़ की भांति जैसे आत्मा में लीन उसी लोक के द्वार पर जाना चाहता था। ऐसा मुझे स्मरण है बेटा! । महाराजा नहूष अपने ज्येष्ठ पुत्र को सोमकेतु को राष्ट्र दे करके राजा ने यह विचारा कि किसी महापुरुष को गुरु बना करके मोक्ष के निकट जाना चाहता हूँ। राजा चार कहारों की पालकी में ओत प्रोत हो करके वह गति करने लगा। भयंकर वन में आ करके एक सेवक रुग्ण हो गया, उन सेवकों ने कहीं महात्मा जड़ जगत जिनका नाम करण था, वह कहीं था, उसको पालकी में निश्चित कर दिया। वह पालकी कहीं ध्रुवा में चली जाए कहीं ऊर्ध्वा में गति करने लगे। राजा ने कहा यह कौन धूर्त है? यह कौन पामर है? ऐसा कह करके जब राजा व्याकुल हो गया तो राजा ने अपनी पालकी स्थिर करके जड़ भरत पर आक्रमण करने लगे। जब क्रोध से आक्रमण करने लगा और आक्रमण करके शान्त हुआ तो ऋषि मग्न हो गया। जड़ भरत मग्न होने लगा। अब राजा आश्चर्य चकित हो करके बोले महाराज! आप कौन हैं? उन्होंने कहा मैं इस समय उच्चारण नहींकरूंगा। उन्होंने कहा तो प्रभु! आप मग्न क्यों हो रहे हैं? इसमें तो व्याकुल होना चाहिए। उन्होंने कहा हे राजन! मैं प्रभु से याचना कर रहा हूँ कि हे प्रभु! मैंने तो पूर्व जन्म में एक हिरनी के बालक से मोह किया था। मैं मोह के कारण मोक्ष के द्वार से संसार में आ गया। माता के गर्भाशय में प्रवेश हो गया। वहाँ भयंकर बन है, ऐसा भयंकर बन है, जहाँ कोई मार्ग नहीं, मैं संसार में आ गया तो राजा ने मुझे ताड़णा दी, मैं बन में आ गया तो मैं प्रभु से याचना कर रहा हूँ कि प्रभु! जब मोह के कारण मेरी यह दशा बन गई है और जो क्रोध भी करते हैं, कामी भी हैं लोभी भी हैं, संसार का वैभव उनके समीप है प्रभु! जब तेरे द्वार पर पहुंचेंगे तो उनकी क्या दशा होगी? उनकी क्या गति होगी जब आपके द्वार पर

पहुंचेंगे?

तो मेरे प्यारे! राजा मौन हो गया। अश्रुपात होने लगा और ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो गया और कहा महाराज! आप तो जड़ भरत प्रतीत होते हैं। हे प्रभु! मुझे क्षमा करो, मैं तो आपके गुरु बनाने का निश्चय करके आया हूँ। मैं तो आपसे ब्रह्मवेत्ता बनना चाहता हूँ।

तो मेरे प्यारे! जड़ भरत ने यह कहा। इस गाथा से मुझे दृष्टिपात हुआ कि मानव निष्काम कर्म करता है तो वह महान है और जब उसमें लिपायमान हो जाता है तो वही उसके लिए दुष्कर्म बन जाता है। वही दुष्कर्ममोक्ष के द्वार से संसार में ला देता है। मेरे प्यारे! सीमा में रहना निष्काम कर्म करना जैसे हिरनी का बाल्य था उसकी पालना ऋषि का कर्त्तव्य बन गया था। परन्तु उसके मोह में आ जाना वही मोक्ष के आँगन से संसार में आ गया। परिणाम क्या है कि जितना भी मानव कर्म करता जाए वह चाहे राजा हो प्रजा हो, माता हो, पुत्र हो उसको निष्कर्म कार्य करना चाहिए। अब आज का विचार हमारा समाप्त होने जा रहा है। मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हे मानव! तू निष्काम कर्म करता चल, मानवता में रमण करता हुआ इस संसार सागर से पार हो जा। यह है बेटा! आज का वाक्। मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। निवास स्थान श्री प्रणपाल सिंह राणा गांधी कालोनी, मुजफ्फर नगर समय रात्रि 8 30 बजे

१३ 07 04 1978 पुष्प 32 बुद्धि मेधा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है, जो महिमावादी है, जिसकी महिमा इतनी अनन्तता में

प्रतीत होती है। मानव चिन्तन करता रहता है अथवा मनन करता रहता है, उसकी प्रतिभा को दृष्टिपात करता रहता है। परन्तु उसकी महिमा इतनी महान और इतनी विचित्रतव मानी है, उसका ज्ञान और विज्ञान एक महत्ता में परणित रहा है जिसको विचारने वाले परम्परा से ऊँची उड़ान उड़ते रहे हैं।

आज मैं तुम्हें उन क्षेत्रों में नहीं ले जाना चाहता हूँ। आज महानन्द बेटा! कुछ वेद मन्त्रों की उपासना कर रहे थे अथवा कुछ उच्चारण भी कर रहे थे। आज का हमारा वेद का पठन पाठन क्या कह रहा है। आज का हमारा वेदज्ञ ज्ञान हमें किस मार्ग के लिए प्रेरित कर रहा है। यह हमें चक्राणी मात्र को जानना है। एक ही प्राणी की निधि नहीं होती। संसार के जितने प्राणी मात्र हैं सर्व में वह एक चेतना में कटिबद्ध हैं और उसी का आनन्द लेते रहते हैं। परन्तु बेटा! आज मैं तुम्हें विशेष क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ। केवल यह वाक्य प्रकट करने के लिए आए कि हमारे यहाँ यागों का यज्ञम् ब्रही लोकः जिसमें यागों का वर्णन आता रहता है। हमारे यहाँ नाना प्रकार के वर्णन आते रहते हैं। आज मैं तुम्हें उस वर्णमाला को धारण कराने के लिए आए हैं जिस माला की आभा मानव के मस्तिष्क मैं ओत प्रोत हो जाती है। आओ पुत्रो! मैं तुम्हें विशेषता में नहीं ले जाऊँगा। केवल वाक्य यह प्रकट करने के लिए आए हैं कि हमारा जो जीवन है। वह यौगिक होना चाहिए। यौगिक जीवन कैसे बनता है। आज पुत्र मैं तुम्हें यह विवेचना करने के लिए चलूं कि मानव के द्वारा अध्याम् गतऊ वशश्चम् वृत देवाः। मानो वेद के समीप जाना चाहता है और वह उन आभाओं में रमण करना चाहता है जिन आभाओं में रमण करने के पश्चात् मानव को जीवन में एक नवीनता आ जाती है। महत्ता ओत प्रोत होने लगती है।

हमारे यहाँ वर्णन आता है अष्ट चक्रा नव द्वारा अयोध्यापुरी विशेष गृति लोकाः। हमारे यहाँ वर्णन आता है कि अयोध्यापुरी है। इस अयोध्यापुरी में आठ चक्र और नव द्वार हैं। ऐसी पुरी के ऊपर मानव चिन्तन करता रहता है और मनन करता रहता है कि मैं इस अयोध्या को जानना चाहता हूँ। जो वास्तव में प्रिय अयोध्या है। जिसमें नौ द्वार हैं और आठ चक्र माने गए हैं। अयोध्यापुरी है। उस अयोध्यापुरी को हमें जानने में सदैव तत्पर

रहना चाहिए।

आज मैं अष्ट चक्रों की कुछ चर्चा प्रकट करने आया। हमारे यहाँ परम्परा से ही मनस्तत्व की भी भिन्न गतियां रहती हैं। सबसे प्रथम मानव जब इस मार्ग को अपनाना चाहता है कि आज मैं अष्ट चक्र नौ द्वारों वाली अयोध्यापुरी में अपना वास चाहता हूँ। तो वह कैसी प्रिय अयोध्यापुरी है? जिसमें नौ द्वार और अष्ट चक्र हैं। तो मानव यह जानता रहता है कि यह आठ चक्र क्या हैं? और इसी प्रकार इसके संदर्भ में मैं तुम्हें यह वर्णन कराना चाहता हूँ कि हमारे बीच चार प्रकार की बुद्धियां होती हैं सबसे प्रथम (1) बुद्धि (2) मेघा (3) ऋतम्भरा और (4) प्रज्ञा। ये चार प्रकार की धाराएं हमारे मस्तिष्कों में क्या मानो इन आभाओं में रहती हैं। जो मानव योग को जानना चाहता है, आभा में रमण करना चाहता है। परन्तु आज का हमारा वेद पाठ अष्ट चक्र और नौ द्वारों की विवेचना करने के लिए आया है। मेरे प्यारे! अष्ट चक्रों नौ द्वारा हमारे यहाँ पर माना गया है कि चार प्रकार की बुद्धियों का मैंने कई काल में तुम्हें विश्लेषण भी किया है और यह वर्णन भी कराया कि चार प्रकार की बुद्धियां होती हैं। सबसे प्रथम बुद्धि जो साधारणत्व मानी गई है और द्वितीय बुद्धि का नाम मेघावी है। मेधा उसे कहते हैं जो मानव लोकों की यात्रा करता है, वैज्ञानिक यन्त्रों के द्वारा और राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिए वह शान्त मुद्रा में विद्यमान रहता है।

मेरे प्यारे! अष्ट चक्र नौ द्वारों की चर्चा प्रारम्भ हो रही थी। उसके सन्दर्भ में नाना प्रकार की आभाएं उत्पन्न होती रहीं। मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें यह वर्णन करने आया हूँ कि बुद्धि किसे कहते हैं? बुद्धि उसे कहते हैं जो मानव संसार को दृष्टिपात कर रहा है और संसार को दृष्टिपात करके मानो उसकी अनुभूति ले रहा है और यह निर्णय करा देता है कि यह मंगल लोक है। बुद्धि यह कहती है कि यह सूर्य मण्डल है, मंगल इत्यादियों का वर्णन करता रहता है। परन्तु प्रायः ऐसा नहीं, बेटा! जिससे बुद्धि जब उत्पन्न होती है तो वह मेधा है और मेधा कैसी है? इस बाह्य जगत में जो नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न हो रही हैं उन तरंगों को जान रहा है, उनके ऊपर मनन हो रहा है। मेरे प्यारे! जैसे मानव का शब्द है। उच्चारण किया जा रहा है और उच्चारण करते उसका व्यापक

स्वरूप बन जाता है। वह वाणी की तरंगें यहीं नहीं रहती वह अग्नि में, वायु मण्डलों में गति करती है और उसके पश्चात् वह निश्चल हो जाता है वह जो अमूल्य गति मेघावी की है जिस पर वह यह जानता कि मेरा जो शब्द है वह अग्नि पर सवार हो करके तरंगित हो गया है। मानव यह जानता है कि मेरा शब्द व्यापक बन गया है। व्यापक शब्द बन जाने के पश्चात् मानव के जीवन में एक उत्थान का समय आ जाता है। वह मेघावी में वैज्ञानिक नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में चला जाता है। मेघावी के द्वार पर जाने से उसे अमोध बना दिया जाता है, तो ऊँचा परमोधर्म बन जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है कि जब मानव की वाणी में अमोधता आ जाती है, एक विचित्रता आ जाती है। तो यह वाणी अग्नि की तरंगों से उत्पन्न हुई है और वह लोक लोकान्तरों की यात्रा करने के लिए तत्पर हो रहा है। यह चन्द्र लोकों की यात्रा भी कर रहा है, अपनी आभा में भी रमण कर रहा है। तो वैज्ञानिक जनों ने यह कहा कि यह जो ब्रह्माण्ड है यह ऐसा अनन्त माना गया है जिसे मानव सीमा बद्ध नहीं कर सकता। यह सीमा से रहित है। तो मेघावी वादी लोक लोकान्तरों की यात्रा कर रहा है। अन्तरिक्ष में भी एक माला सी दृष्टिपात आती है। यह माला आकाश गंगा के मण्डलों की माला है इस माला को जो धारण कर लेता है वह देवता बन जाता है। इस माला को जो प्राप्त कर लेता है, शब्द सिद्धि कर लेता है वह मानव एक विचित्रतव में परणित हो जाता है। वैज्ञानिक जन लोक लोकान्तरों में गति करते हैं।

पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है, इस मेघावी के द्वारा ही मानव चन्द्र लोक की क्या मंगल की यात्रा कर रहा है। यह नाना लोकों की यात्रा क्यों कर रहा है? मानव का कौन सा मन्तव्य ऐसा है? मेरे प्यारे! मानव का स्वाभाविक गुण है कि वह इच्छुक रहता है। उसकी इच्छा जागरूक रहती है कि मैं इस प्रकृति के महान तन्तुओं को जानना चाहता हूँ। बेटा! ऐसी कल्पनाएं और ऐसा विचार अमूल्य धारा कैसे बनती है? मेरे प्यारे! देखो, वह आभा में, विचित्रता में गति कर रहा है। परन्तु वह संकल्प शक्ति के द्वार पर भौतिक विज्ञानवेत्ता यन्त्रों को जानकर के और लोकों की माला को धारण कर लेता है और धारण करके उसके ऊपर चिन्तन और मनन करता है। परिणाम यह होता

है कि वह मेघावी क्षेत्र में जाकर के इस प्रकृति के सूक्ष्म तन्तुओं को जानता है। क्योंकि मानव की जो यह पिपासा बलवती होती है उसका मूल कारण है कि जानकारी का कि वह मन प्रकृति के सूक्ष्मतम एक तन्तु हैं मन ही मनोवांछित रहता है, वाणी को इच्छित बनाता रहता है। कि मुझे वास्तव में इस संसार को जानना है। तो मेरे पुत्रो! मेघावी क्षेत्र का प्राणी मेघावी बन रहा है। कैसी मेधा बेटा! वह एक स्थली पर विद्यमान हो करके नाना प्रकार की तरंगों में तरंगित हो रहा है। नाना आभाओं में रमण करना उसका यह लौकिक गुण है।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा कि जैसे यह मेधा है इसी प्रकार ऋतम्भरा है। ऋतम्भरा किसे कहते हैं? बेटा! जो मानव जानता है कि मेघावी के द्वारा जो लोक लोकान्तरों को जाना है और उसे जानकर मौन हो जाना और अपने प्राणेश्वर मानो प्राण की उदबुध एक मौलिकता है उसका उद्घोष समय समय पर होता रहता है। ऋतम्भरा वह है जो निश्चयात्मक हो जाता है कि वास्तव में मुझे जानना है औश्र जानकर के जैसे समेट लेता है जैसे कच्छप मानो रेंगने वाला अपने अंगों को समेट लेता है इसी प्रकार जो मेघावी बन जाते हैं वह इस संसार से उदासीन होने लगते हैं, तो जो जाना है उसे संग्रह करते हैं और संग्रह करके अपने में धारण कर लेते हैं। वह मेधा और ऋतम्भरा वह कहलाती है जो निश्चल हो जाता है और यह जान लेता है कि परमात्मा है और न्यायकारी है, अनन्त है, आज है वह सरस्वती है। विचार विनिमय क्या कि वह उस महान ऋतम्भरा में पहुंचने के पश्चात् अव्याहत गति से निश्चल हो करके अपने को संसार को समेट करके वह अपने आत्मा में मानो रूप में परणित हो जाता है। रूप में आहुति प्रदान करता है औश्र प्रदान करता हुआ आभा में गति करने लगता है। वह संकल्प को ऊँचा बनाता है। वह संकल्पवादी बनता है और अपने को संकल्प में ले जाता है उसकी संकल्प शक्ति इतनी विचित्र बन जाती है कि वह संकल्प की आभा में रमण करता हुआ इस प्रकृति की आभा में रमण करने लगता है। परिणाम क्या कि जैसे वैज्ञानिक नाना प्रकार की तरंगों को एकत्रित करके धातुओं को आवरण करता हुआ यानों का निर्माण करता है मेघावी क्षेत्र में परन्तु वही जब ऋतम्भरा के क्षेत्र

में प्रवेश करता है तो वह ऋतम्भरा में प्रवेश करके इसको सुन्दर विशेष जानने लगता है और निश्चल बन जाता है कि यह संसार क्या है? इसमें वह मौन हो जाता है।

मेरे प्यारे! प्रत्येक मानव यह कहता है कि मैं यह नहीं जाना पाया हूँ कि परमात्मा निश्चल है अथवा नहीं। परन्तु इसके ऊपर जब ऋतम्भरावादी बन जाता है तो वह निश्चल बन जाता है। निश्चल बन करके संकल्पवादी बनता हुआ अपने संकल्प को ऊँचा बनाता है। उसका यहाँ तक संकल्प बन जाता है कि वह संकल्प शक्ति के द्वारा जो परमाणु वायु मण्डल में गति कर रहे हैं जैसे मानव का शव अग्नि में प्रवेश कर दिया जाता है तो मेरे पुत्रों! उसकी गति जानी नहीं जाती, कैसी विचित्र गति है कि वह परमाणु अपने अपने स्वरूप में प्रवेश कर जाते हैं। इन्हीं परमाणुओं को योगी एकत्रित कर लेता है संकल्प शक्ति के द्वारा। यह परमाणु उसके शरीर में उद्बुद्ध आस्ताम् उद्बुद्धयाम् देवा पोती। वह योगी कैसी बनता है? बेटा! एक क्षण समय में स्थूल है एक क्षण समय में वह सूक्ष्म स्वरूप बन गया है। तो वह मेरे प्यारे! इच्छा से अपनी बलवती माता के शरीर में न जा करके इच्छा से केवल संकल्प मात्र उसका निर्माण कर लेते हैं। निर्माण कैसे करते हैं पुत्र! म यह भी तुम्हें जानना होगा। जैसे वायु मण्डल में मानव का शब्द विद्यमान हो रहा है और शब्द के साथ में चित्र भी विद्यमान है परन्तु वह चित्र है उसी प्राणी का है। बेटा! मुझे तो ऐसा स्मरण आ रहा है कि मैं कहाँ जा रहा हूँ।

बेटा! मुझे एक ऋषि की वार्त्ता स्मरण आ रही है। एक उद्बोधक नाम के ऋषि थे। उनका जन्म उद्दालक गौत्र में था। एक समय वे भयंकर वन में विद्यमान थे। अब वे विचारने लगे, वे याग कर रहे थे और याग कर्म करते करते चिन्तन करने लगे। उनकी मानसिक क्रिया प्रारम्भ होने लगी कि यह शब्द के साथ में चित्र अन्तरिक्ष में गति कर रहे हैं इन चित्रों को साकार रूप में कैसे बना सकता हूँ। इनको दृष्टिपात कैसे करूं। तो मेरे पुत्रो! ऋषि ने वैज्ञानिक तथ्यों के ऊपर अनुसन्धान किया और जब अनुसन्धान करता रहा तो उन्ह्ोंने एक यन्त्र का निर्माण किया। उस यन्त्र का नाम था चित्रावली संचलन वृत यन्त्र। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि वह ऋषि अपने सौ जन्मों के चित्रों को उस चित्रावली में दृष्टिपात कर रहा था। अब बेटा! वह कैसे दृष्टिपात कर रहा था। क्योंकि शब्द आते

जो अन्तरिक्ष में गति कर रहे हैं, उन शब्दों के साथ में उसका चित्र विद्यमान है। उन चित्रा के द्वारा अपने जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों जन्म जन्मान्तरों के जो चित्त में बाह्य जगत में, बाह्य जो चित्त है उसमें उद्बुद्ध हो रहे थे, मानो उसमें शान्त थे। और जब यन्त्रों का निर्माण किया तो जो बाह्य चित्त है, ब्रह्माण्ड का जो चित्र है बाह्य जगत जिसमें जो चित्रावलिंग थीं उनका उन यन्त्रों के द्वारा दिग्दर्शन करने लगे।

तो बेटा! यह क्या है? यह ऋतम्भरा जब निश्चल हो जाती है कि वास्तव में यह संसार है, यह मानव है परन्तु मेरा किया हुआ कर्म ही मेरे साथ गति करता है। ऐसा जब उसको निश्चय हो जाता है कि परमात्मा है न्यायकारी है उसके पश्चात् वह अष्ट चक्रों में परणित होता है। हमारे यहाँ आया अष्ट चक्रा नव द्वारा अयोध्यापुरी। वह अष्ट चक्रों की आभा में गति करता है और वह शान्त निश्चल हो करके योगाभ्यास में गति करने लगता है। योगाभ्यासकरने लगता है वह केवल यह कौन है कि बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा में प्रवेश करता है।

प्रज्ञा हम उसे कहते हैं जहाँ योगी परमात्मा से वार्त्ता प्रकट करता है। वह ब्रह्मरन्ध्र से ले करके गति करता है सबसे प्रथम वह मूलाधार में प्रवेश करता है। योगी का सबसे प्रथम जो चक्र है वह मूलाधार है। जब प्राणों की उद्बुद्ध गति बनती है, प्राण और अपान जब मानो एक सूत्र में आते हैं तो योगी के समीप योगी की जो गतियां हैं यह प्रज्ञावी हैं और प्रज्ञावी में प्रवेश कर जाता है। प्रज्ञावी में प्रवेश करके सबसे प्रथम जो बन्द है वह मूलाधार है। मूलाधार में वह समाधिस्थ होने लगता है। मूलाधार के आगे गति करता है तो नाभि चक्र आ जाता है। यहाँ नाभि के द्वारा नाना प्रकार की पंखड़ियां होती हैं। ये गति करने लगती हैं। आगे चल करके वही हृदय चक्र आ जाता है। हृदय में जो गति हो रही है उसको वह जान रहा है उन गतियों की जो धाराएं हैं उनको जानकर के वह अपनी आभा में परणित हो जाता है। हृदय चक्र में जब रक्त की व्यापकता को दृष्टिपात करता है तो गद् गद् हो जाता है। आगे चल करके वह कंठ चक्र में प्रवेश करता है। कंठ चक्र में जब प्रवेश करता है तो वह जो कंठ है इसमें अभ्याम् गति रक्तम् कहलाती है, नाना गतियां होने लगती हैं। वह कंठ चक्र को जानता हुआ, उससे उपराम

हो करके इडा, पिंगला, सुषुम्ना ये तीन नाड़ियां कहलाती हैं। जिनका सम्बन्ध अग्रणीय भाग से ले करके ब्रह्मरन्ध्र से आ करके पिछले भाग में प्रवेशिका हो जाती है। वही योगेश्वर एक महान गतियों में प्रवेश करता हुआ वही कंठ चक्र में होता हुआ वह घ्राण चक्र में चला जाताहै। घ्राण चक्रों में गति करता हुआ मानो वह त्रिवेणी का स्नान करता है। त्रिवेणी जहाँ इडा, पिंगला सुषुम्ना तीनों नाड़ियां एक सूत्र में आ गई हैं उसको त्रिवेणी कहते हैं और यह आत्मा त्रिवेणी में प्राणत्व स्नान करता है। स्नान करके आगे ब्रह्मरन्ध्र में गति कर जाता है। ब्रह्मरन्ध्र में जब योगी गति करने लगता है तो ब्रह्मरन्ध्र में वहाँ पंखड़ियां मानो वह इडा, पिंगला सुषुम्ना नाम की जो नाड़ि हैं उनका ऊर्ध्व मुख हो जाता है और जितना भी यह ब्रह्माण्ड है इस ब्रह्माण्ड को वह मेघावी योगेश्वर अपने में इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करके बाह्य जगत में भी एक ही रस हो जाता है। मानो वह उस वस्तु को जानने लगता है जो वैज्ञानिक नहीं जानता, जिसको भौतिकवादी नहीं जानते, वह उन वस्तुओं को जानने लगता है, उनका बोध हो जाता है। वह समाधि में प्रवेश कर जाते हैं। समाधि में यह संसार उसके लिए एक खिलवाड़ बन जाता है।

तो आओ मेरे पुत्रों! आज मैं तुम्हें यह चर्चा प्रकट करने नहीं आया। यह परिचय देने के लिए आया हूँ कि जब ब्रह्मरन्ध्र से लेकर मूलाधार तक अपने मानवीय अष्ट चक्रा नव द्वारों को जान लेता है तो वह निश्चल बन जाता है। मानो महान बन जाता है औश्र विचित्र बन करके विचित्र वीणा को ले करके गति करने लगता है। इसकी जो स्मरण शक्ति है और जो बाह्य क्रिया कलाप हैं वह इतना विचित्र बन जाता है ब्रह्मणो कृतम् देवा चाम् लोकः रेणु अश्श्ताम् दिवायं दधिमय। मानो देखो, अच्छम व्रही कृताय। हमारे यहाँ यह माना गया है कि हम जब अपनी मानो ब्रह्म में समाधिस्थ हो जाते हैं, जब इस ब्रह्मरन्ध्र में गतियां होने लगती हैं, उससे ऊपरले भाग में एक पिपाग स्थान होता है। उस पिपाग स्थान में सोमरस आने लगता है। वह सोमरस सबसे प्रथम ब्रह्मरन्ध्र में आता है। उसके पश्चात् एक स्वाधिष्ठान स्थान होता है जिसको भी चक्र कहते हैं। वह इस स्थान में होता हुआ जहाँ दो कृतिका होती हैं वे गति करने लगती हैं प्राण की आभा में। इसके पश्चात् त्रिवेणी आता है और त्रिवेणी स्नान करके और भी अमृत को

पान करता हुआ घ्राण चक्र में होता हुआ कंठ चक्रों में, हृदय चक्रों में और नाभि चक्रों मेंऔर यह मूलाधार में जहाँ से प्रवेश हुआ था, वहीं तक सोम की धारा बहने लगती है और वह जो सोम की धारा है, जब इस प्रकार का सोम आ जाता है तो ब्रह्माण्ड का विज्ञान उसके समीप आ जाता है। क्योंकि मनस्तत्व ही इस प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु माना गया है और सबसे सूक्ष्म जो वह तन्तु है वही एक आभा है। मन की जो तरंगें हैं वे तरंगें ही स्थूल रूपों में, सूक्ष्म रूपों में परणित होती रहती हैं।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें योगी बनाने के लिए नहीं आया। मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि जो इस प्रकार का क्रिया कलाप वाले योगी होते हैं उनकी स्मरण शक्ति, उनका कार्य व्यापार, मानो उनको धारण करना, त्यागना यह उनके लिए खिलवाड़ बन जाता है। वह आश्चर्य में नहीं रहता। लाखों वर्षों का योगी जीवन मुक्त होता हुआ शरीरों को प्राप्त कर लेता है। केवल संकल्प शक्ति के द्वारा। जैसे परमपिता परमात्मा ने एक संकल्प मात्र से ब्रह्माण्ड की रचना हो सकती हैं मैंने तुम्हें वैज्ञानिक तत्त्वों का वर्णन किया कि जैसे मानव के एक शब्द में चित्र विद्यमान है मानो आकाश के परमाणु उसमें गति कर रहे हैं उनको स्थूल में लाना, उनकी शब्दों के साथ में गति करना वह योगी के लिए कोई आश्चर्य नहीं होता। वे योगी कैसे होते हैं! बेटा! उनका शरीर का एक एक बिन्दु एक आभा में रहता है। उनकी जो जीवन शक्ति है वह महान और विचित्र कहलाती है।

आओ मेरे पुत्रो! यह चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आए। मैं केवल तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या है? हमें इन वाक्यों को जानना चाहिए और जो मानव यह नहीं जान पाता कि तेरे पिछले भाग में क्या वस्तु है? आज वह योग और परमात्मा के द्वारा पर जाना चाहता है। वह मानो उसका खिलवाड़ है। यह उनकी आश्चर्यजनक एक कल्पना है परन्तु जो अपने मानवीय शरीर को धारण कर रहा है और शरीर में जो चेतना है उसको नहीं जानता जो निकल जाती है शव रह जाता है वह कौन सी वस्तु है? अरे, उसके ऊपर तो प्रत्येक मानव परम्परा से अनुसन्धान करता रहा

है।

एक समय महर्षि वरुणेश्वर ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। उनके परम शिष्य सुधेश्वर ऋषि ने कहा महाराज! मैं बहुत समय से आपके चरणों की वन्दना कर रहा हूँ परन्तु मैं यह नहीं जान पाया हूँ कि मानव मानव कैसे बनता है। उन्होंने कहा कि मानव मानव कैसे बनता है, यह तो आश्चर्य वाला वाक्य नहीं। मृत्यु को विजय करना ही मानवता है। जब मानव मृत्यु को जानने लगता है, मृत्यु के ऊपर उड़ान उड़ने लगता है वही तो उसका स्वर्णमय जीवन है, आनन्दमय जीवन है। मृत्यु बेटा! अज्ञान है। बहुत पुरातन काल में कहा था कि मृत्यु अज्ञान है। मृत्यु से खिलवाड़ करना है। मृत्यु से पार होना है और आभा को अपनाना है। यह मानव का कर्त्तव्य है।

तो आज मैं तुम्हें यह वर्णन करने चला हूँ कि प्रत्येक मानव को योगी बनना है, योगेश्वर बनना है। ये जो चार प्रकार की गतियां हैं इनको जानना है। बुद्धि, मेधा ऋतम्भरा और प्रज्ञा ये चार प्रकार की अवस्था मन की अवस्था कही जाती हैं। बेटा! तुम्हें प्रतीत हो गया होगा बुद्धि जानकारी कराती है, मेधा विज्ञान में ले जाती है और ऋतम्भरा निश्चल बना देती है। अन्तःकरण में जो संस्कार हैं उनको समेट करके वह निश्चल बन जाती है। जिससे बाह्य जगत है, बाह्य विज्ञान है इसको जान करके मेघावी में अन्तर मुखी हो जाता है तो अन्तर जगत को जानते हुए परमात्मा सर्वत्र प्रकृति की जो ग्रंथियां हैं उनका जब तक स्पष्टीकरण नहीं हो जाता तब तक इस संसार के ज्ञान विज्ञान को जाना नहीं। यह ऋतम्भरा है और प्रज्ञावी उसे कहते हैं जहाँ अष्ट चक्रा नव द्वारों को जान करके अयोध्या में व्यापक बन जाता है। अयोध्या में छा जाता है।

यह शरीर कैसी अयोध्यापुरी है यह शरीर स्थूल सूक्ष्म और कारण मानो यह सूक्ष्म भी धारण कर सकता है स्थूल भी और कारण लिंगों में भी प्रवेश कर जाता है। यह जो प्रवेश होता है, यह प्रवेशिका, यह एक आश्चर्यजनक शब्द है। यह जब क्रिया में लाया जाता, जब यह प्रतीत होता है कैसे बन में चला गया। बेटा! यह तो एक विचारक क्षेत्र है। आज हमें बुद्धि मेधा ऋतम्भरा और प्रज्ञा को जानना है। इनको जानकर मानव अपने जीवन की आभा को महान बनाता है। परन्तु यह बनता कैसे है? यह कैसे आती है

क्रियाएं बेटा! मुझे स्मरण है जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वार पर विद्यमान होते थे तो वह वर्षों तक हमें पञ्चांगों का पान कराते, स्थूल अन्न नहीं देते थे, सूक्ष्म देते थे। मानोअग्नि में पुट लगाते थे, तपाते जाते थे और प्राण की गति को जानते थे। प्रकृति में कैसा प्राण गति कर रहा है, कितनी गबति से कर रहा है, उसमें रजो गुण प्रधान है या सतो गुण। यह कैसे जानता है प्राणी? यह जो प्राणेश्वर प्राण हमारे शरीर में है इसमें जो नाना यन्त्र हैं, जब मानव पवित्र आहार करता है, पंचागों का पान करता है, शुद्ध पवित्र स्वाध्याय करता है, प्राणायाम करता है उस समय मानव की यह हैं। यह अग्रणीय गति बन करके परमात्मा की आभा में परणित हो जाती है।

आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिएआया हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन को अव्याहत गतियों में ले जाना है। सु समिधाअग्रे। मानो इस मानव जीवन को समिधा बना करके भस्म कर देना है। चेतनता में मैं बेटा! कल तुम्हें वर्णन करूंगा कि यह याग कितना व्यापक शब्द है और ऋषि मुनियों ने किस प्रकार और कहाँ से जाना है? आज मैं तुम्हें एक ऐसी वार्त्ता प्रकट कराने लगा हूँ, महानन्द जी मुझे ऐसी प्रेरणा देते रहते हैं। यह एक ऐसा अध्याय है जिसको बहुत पुरातन काल में पुत्रों! जाना था। उसको क्रिया में लाने का प्रयास किया। आज इस सम्बन्ध में कुछ चर्चा नहीं करूंगा। केवल विचार यह कि हम इन सब क्रिया कलापों को जान करके संसार सागर से पार होना है। इस संसार सागर को जो मानव पार होते हैं वे मोक्ष और परमपिता परमात्मा से वार्त्ता प्रकट करते हैं। आज का हमारा विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आभा को जानते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, वेदज्ञ बन करके इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा उसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। निवास स्थान श्री प्रणपाल सिंह राणा गांधी कालोनी, मुजफ्फर नगर समय रात्रि 8 30 बजे

१४ 09 04 1978 पुष्प 32 देव यज्ञ

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने

पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का अथवा उसके यज्ञमय स्वरूप का वर्णन किया जा रहा था। यह जो ब्रह्माण्ड है यह उस परमपिता परमात्मा की यज्ञशाला है औश्र आत्मा इस यज्ञ का यज्ञमान बना हुआ है और ब्रह्म स्वयं क्रिया दे रहा है और होता गण जितने पञ्च महाभूत हैं। ये सर्वत्र होता बन करके इस संसार रूपी यज्ञवेदी को क्रियाशील बना रहे हैं। यह मेरे प्यारे! प्रभु का कितनी आनन्दमयी एक यज्ञशाला है।

पुत्रो! तुम्हें प्रतीत होगा कि हमारे यहाँ देवासुर संग्राम की विवेचना होती रहती है। देवासुर संग्राम जब होता है तो देवता दैत्यों को विजय कर लेते हैं और देवताओं की सभा में एक ध्वनि उत्पन्न होती है और उस ध्वनि में यह विशेषता होती है कि जो श्री श्रवण करता है वही देवता बन जाता है। जब यह संसार देवताओं का बनने लगा तो दैत्यों ने एक सभा की औश्र उन्होंने अपने सभापति विरोचना को निमन्त्रण दिया और महाराजा विरोचना जी दैत्यराज थे। उनसे कहा कि महाराज! हम दैत्यों का क्या बनेगा? यह संसार देवताओां का ही बनता चला जा रहा है। महाराजा विरोचना ने कहा कि हे देत्यो! जाओ वृक को छलो। उस ध्वनि के प्रतिनिधि को छल लो। मेरे पुत्रो! वह मनस्तत्व था, वृक था। दैत्यों ने मध्य रात्रि में उसे छला। वह अशुद्धता से छला गया। महाराजा विरोचना ने उसका मन्थन किया तो वह जो छलने वाला वृक था। मनस्तत्व था, उसकी ध्वनि रेणुका में समाहित कर दी। अब वह तो रेणुका में समाहित हो गई और अब जब विरोचना ने उसका मन्थन किया उसमें वह ध्वनि ही नहीं थी। जिससे संसार देवताओं का बना रहा था। उन्होंने नतमस्तक होकर दैत्यों से कहा कि वह ध्वनि कहाँ गई? उन्होंने कहा कि वह ध्वनि तो रेणुका में समाहित हो गई।

पुत्रों! अब रेणुका को छलने का क्रम बनाया गया वह भी छली गई। उसे प्रतीत हो गया कि दैत्यों के द्वारा छली जा रही है। उसने देवताओं की उस धरोहर को, ध्वनि को अग्नि में समाहित कर दिया। वह अग्नि में समाहित हो गई। जब महान रेणुका को छला गया तो रेणुका का भी मन्थन हुआ। अब रेणुका में वह ध्वनि नहींथी जिससे देवता

बनते थे। महाराजा विरोचना से दैत्यजन बोले कि महाराज! यह ध्वनि कहाँ चली गई! उन्होंने कहा कि वह ध्वनि तो अग्नि में समाहित हो गई है। जब दैत्यराज ने अगले दिवस मध्यरात्रि अग्नि को छलने का क्रम बनाया। बेटा! उन्होंने अग्नि को भी छल लिया। अग्नि को छलकर के जब दैत्यराज के सन्मुख लाए और अग्नि को यह ज्ञान हो गया कि तू छली जा रही है, तो उसने उस ध्वनि को यज्ञ के दस पात्रों में समाहित कर दिया (यज्ञ के दस पात्रों में वह ध्वनि चली गई। जब अग्नि को लाया गया तो महाराजा विरोचना ने पुनः से मन्थन किया और जब मन्थन किया तो उसमें वह ध्वनि नहीं थी, जिससे यह संसार देवताओं का बन रहा था। मेरे पुत्रो! अग्नि को जब लाए तो महाराजा विरोचना ने कहा हे दैत्यराजों तुम ध्वनि को नहीं पकड़ पाओगे, वह ध्वनि तो चली गई यज्ञ के दस पात्रों में। उन यज्ञ के दस पात्रों में से तुम उस ध्वनि को नहीं निकाल पाओगे।)

तो जहाँ प्रभु ने यह यज्ञ रूपी ब्रह्माण्ड को रचा वहाँ इस मानव शरीर को रचा। इस मानव शरीर में याग हो रहा है और पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां यज्ञशाला के दस पात्र हैं। उन पात्रों में कौन समाहित हो रहा है जिसे दैत्य समाहित नहीं कर पाते? वह बेटा! धर्म कहलाता है। यह धर्म ध्वनि कहलाती है।

आओ! अब मैं यज्ञ के कुछ अवाशेषों को प्रकट करूंगा। क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी की प्रबल इच्छाएं हैं कि मैं भी दो शब्द उच्चारण करूं। परन्तु इससे पूर्व शब्दों में हम यह उच्चारण करना चाहते हैं कि पुत्रो! यज्ञशाला में यज्ञमान विद्यमान है और वह याग कर रहा है। अपनी मनोनीत भावनाओं से उज्ज्वल बना रहा है, और वह देवताओं की पूजा कर रहा है। देवताओं की। पूजा करने का नाम याग है और जितना भी संसार का शुभ कार्य है उन सर्वत्र कार्यो का नाम याग कहलाता है। जितना भी निष्काम कर्म, योग निष्काम कर्म है वह सर्वत्र मानो एक याग है। यागों के कर्म करने वाले परम्परा से ऋषि ब्रह्मा थे। आदि सृष्टि में ब्रह्मा के चार शिष्य कहलाते थे। उन्होंने सबसे प्रथम याग किया। उन्होंने याग को कैसे विचारा। वाणी के द्वारा, श्रोत्रों के द्वारा, चक्षु के द्वारा, घ्राण इन्द्रियों के द्वारा, त्वचा के द्वारा यह जो पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं, इनके विषयों को अपने

में धारण किया, और धारण करके उनमें जो साकल्य था वाणी में शब्द का साकल्य घ्राण में परमाणुओं का साकल्य, श्रोत्रों में शब्द का साकल्य चक्षुओं में रूप का साकल्य, यह सब मानो पञ्च महाभूत आ गए। इनका जो साकल्य था उसको एकत्रित करके उन्होंने आत्म योग किया और आत्म याग करके, आत्मा में स्वाहा कहते हुए आहुतियां प्रदान कीं। आत्म याग उसे कहते हैं जो विवेकी पुरुष होते हैं, जो योगिजन किया करते हैं। मुनिवरों! उन्हीं महापुरुषों ने बाह्य याग किया कि बाह्य जगत् तो हमें शोधन करना है और आन्तरिक जगत् उसके पश्चात् शोधन होगा। उन्होंने बाह्य साकल्य एकत्रित किया। उन्होंने नाना प्रकार की समिधाओं, नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करके अग्न्याधान किया और उसके पश्चात् अग्नि ब्रह्म वृतानि देवतम् अग्नि। मेरे प्यारे! उन्होंने बाह्य अग्नि को जागरूक किया जैसे आन्तरिक जगत में अग्नि प्रदीप्त हो रही थी। वह अग्नि कैसी अग्नि? जो देखो, योगी बना रही थी, वह जो अग्नि जागरूक हो करके ज्ञान रूपी अग्नि चेतना में प्रवेश कर रही है और यह जो बाह्य अग्नि है जो वास्तव में विद्यमान है, वृक्ष के रूप में विद्यमान है, नाना रूपों में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है जो उनमें ओतप्रोत है। मेरे पुत्रो! यह जो अग्नि है यह बाह्य है। इसके द्वारा यज्ञमान सपत्नीक विद्यमान होकर के याग करताहै, और याग का अभिप्राय केवल यह है कि हम अग्नि की पूजा करने योग्य हों।

हमारे द्वारा एक अग्नि और उत्पन्न होती है जिसको प्रतिभा व्रतयन अग्नि कहते हैं। उस अग्नि में जो सन्तान को जन्म देने वाले पति पत्नी होते हैं माता पालन कर रही है, निर्माण हो रहा है परमाणु अपनी अपनी स्थली को प्राप्त हो रहे हैं, यह विचित्र याग है। यह कैसा प्रिय याग है। पुत्र पुत्रियां उत्पन्न हो रही हैं। वह मेरे प्यारे! कैसे प्रिय हैं, कैसे महान हैं, मानो उनके हृदय में माता पिता एक ओज, अपने हृदय की ऊर्ध्व वेदना उनके हृदय में प्रवेश करा देते हैं, वह बालक महान बन करके कोई योगी बन रहा है, कोई राजा बन रहा है। कोई महापुरुष बन रहा है, मेरे प्यारे! यह कैसा सुन्दर याग हो रहा है। आज मैं इन यागों में प्रवेश करना नहीं चाहता हूँ। यह तो एक विशाल याग है।

परन्तु विचार विनिमय यह कि आज हम याग करने वाले बनें।

इसी याग का जो दूसरा स्वरूप है, पति पत्नी उस याग को कर रहे हैं। इसी में से एक शाखा उत्पन्न होती है। कि वह जो तरंगें उत्पन्न होती हैं, स्वाहा उच्चारण करते हैं, वह अग्निकी तरंगों पर विराजमान हो जाते हैं, अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके उसकी गति ऊर्ध्व है, देव लोक में चली जाती हैं, द्यु लोक, स्वः लोक, महः लोक, जनः लोकों में प्रवेश करती हैं और प्रवेश करती हुई मानो वह ज्ञान की तरंगों को जानने लगता है अग्नि की धाराओं में परणित हो जाता है, उसके गर्भ में प्रवेश कर जाता है और वह अन्तरिक्ष में गति कर जाता है। यही उस यज्ञशाला का दूसरा स्वरूप है, यज्ञमयता है, मन्थों का विशाल संसार है, उन तरंगों को जान करके नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करता है, निर्माण करता हुआ उसमें आभा को प्राप्त होता है। यज्ञशाला का एक बाह्य स्वरूप है।

द्वितीय स्वरूप यह है कि सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में मानो बाह्य जगत में दृष्टिपात करके अपने अन्तरात्मा मकें धारण करता है और अन्तरात्मा में ही सर्वत्र ब्रह्माण्ड की गति के द्वारा दृष्टिपात कर रहा है, यह याग की ही एक प्रतिभा है।

आज इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने के लिए उत्सुक हूँ मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्दों की विवेचना करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् तनु माम्! हिरण्यम् रथश्वां देवतम् ऋताः

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। कल्पना ही नहीं मानो चिन्तन का विषय दे रहे थे, और हमारे लिए कुछ सामग्री त्यागते हुए वे अपनी एक महान और ऊर्ध्व में उड़ान उड़ रहे थे। यज्ञमय स्वरूप का वर्णन कर रहे थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यज्ञमय स्वरूप का वर्णन करते रहते हैं। परन्तु आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ परिचय कराने आया हूँ कि जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ हम एक याग का दिगदर्शन कर रहेहैं। मेरे पूज्यपाद! यज्ञ की आभा को दृष्टिपात करके मेरा अन्तरात्मा गद् गद् हो रहा था। वास्तव में जहाँ तक कर्म काण्ड का सम्बन्ध है वह कर्म काण्ड तो भावनाओं के

सहित रहता है परन्तु कर्म काण्ड में स्थिरता नहीं आनी चाहिए। पूर्व काल के जो याग होते थे मुझे वह याग स्मरण आते रहते हैं, जब महाराजा अश्वपति के यहाँ याग होता था। महाराजा युधिष्ठिर के यहाँ इन्द्रप्रस्था में याग हुआ। उन यागों में ब्राह्मण सचेत और चैतन्य में रहते। आज उससे ऊर्ध्व गति में मानव जा रहा है। परन्तु मैं कर्मकाण्ड के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहूँगा कि ब्राह्मण कर्म काण्ड को दृष्टिपात करके कर्म काण्ड में विचार करना चाहिए और होता जनों पर दृष्टि रहनी चाहिए। इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणियां नहीं दूंगा केवल विचार विनिमय यह कि आज हम जिस याग को करने जा रहे हैं वह हमारी दृष्टि में रहना चाहिए और पवित्रता में रहना चाहिए।

मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करने आया हूँ कि आधुनिक जगत का जो मानव है, उसका जो मार्ग है वह द्वितीय बन गया है। आधुनिक जगत में जब मैं राष्ट्रवाद और मानव वाद की चर्चाएं करता रहता हूँ और जब मुझे यह आधुनिक काल स्मरण आता रहता है तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव तक इन वार्त्ताओं को लाने का प्रयास करता रहता हूँ। आधुनिक काल का जो विज्ञानवाद है मानो विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है। जिस काल में, जिस समाज में विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है। जिस काल में, जिस समाज में विज्ञान का दुरूपयोग करने के लिए तत्पर हो जाए, उस राष्ट्र की जो परम्पराएं हैं, उस राष्ट्र का जो क्रिया कलाप है वह दीर्घ समय तक नहीं रह पाता, ऐसा मुझे दृष्टिपात होता है। क्योंकि हमारे यहाँ पुरातन काल में जब महाराजा अश्वपति और भी नाना राजा हुए, उनकी शिक्षा की प्रणाली पवित्र, मेरी पुत्रियों की शिक्षा की प्रणाली महान कहलाती थी। आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हे यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ हो और तेरे सौभाग्य का जीवन अखण्ड बना रहे। जिससे तेरे मनों में पवित्रता और मानवता का सदैव प्रसार होता रहे। आज मैं यह इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि आधुनिक काल का जो राष्ट्रवाद है इसमें विज्ञान का दुरूपयोग है, और जब विज्ञान के दुरूपयोग में मानव समाज परिणत हो जाता है, तो उस राष्ट्र में प्रणालियां पवित्र नहीं बन करतीं। उसमें तर्कवाद चलता ही रहता है। पर कुतर्कवाद का परिणाम यह होता है कि मानव की मानवता भ्रष्ट हो जाती है, जब कुतर्क

आ जाता है। तर्क तो होना ही चाहिए। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से नाना तर्कों में चला जाता हूँ।

परन्तु आधुनिक काल में जो नाना प्रकार की धर्म की रूढ़ियां बन गई हैं आज इन रूढ़ियों से मैं कष्ट में रहताहूँ और यह विचारता हूँ कि समाज में रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। नाना प्रकार की उन रूढ़ियों को आधुनिक राष्ट्र धर्म कहता है।

अरे, भोले प्राणियों! तुम विचारो कि धर्म तो एक होता है। यह नाना धर्म कहाँ से आ गए? किस स्थली से नाना धर्म उत्पन्न हो गए हैं? धर्म तो एक ही कहलाता है। इसलिए धर्म को विचारना चाहिए। मानो एक सुगन्धि का विरोध कर रहा है और जब उससेकहा जाता है कि अरे, सुगन्धि का विरोध क्यों कर रहे हो! तो कहते हैं कि ऐसा हमारे धर्म में नहीं है। परन्तु सुगन्धि तो तुम्हारे धर्म है। हां सुगन्धि है। जब सुगन्धि है तो तुम इसका विरोध क्यों करते हो? विरोध करते हैं। क्योंकि विरोध करना उसका एक लक्ष्य बन गया है और यह क्यों बन गया है? क्योंकि राष्ट्र की यह सूक्ष्मता है। राष्ट्र उनको विचारता नहीं है कि ऐसा क्यों हो रहा है।

जब यहाँ नाना प्रकार की चित्रावलियों का वर्णन आता रहा अब जहाँ उन चित्रावलियों में ऋषि मुनियों के चरित्र, ऋषियों मुनियों की आभाएं, जहाँ मेरी पुत्रियों का चरित्र महत्ता में आता हो, उनके चरित्र आते हों वहाँ मेरी पुत्री नृत्य करके अपने उदर की पूर्ति करती हैं। उसको कौन पान कर रहा है? उनको राष्ट्र का छात्रबफल, राष्ट्र का जो विद्यार्थी वर्ग उसको ग्रहण कर रहा है। ब्रह्मचारी विद्यालय में प्रवेश से पूर्व उन नृत्यों के नृत्य में प्रवेश करते हैं और जब प्रवेश करते हैं तो उनके सन्मुख नृत्य दृष्टिपात करके उनका ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है, और ब्रह्मचर्य के दूषित होने पर क्या बनता है कि उनमें आलस्य और प्रमाद आ गया है। आधुनिक जगत की चर्चा कर रहा हूँ कि आज जहाँ संसार में राष्ट्र की शिक्षा एक भविष्य बनाने वाले छात्र वर्ग आज आलस्य और प्रमाद में परणित हो गए, उनके ब्रह्मचर्य दूषित होने का एक परिणाम है! उस समय छात्र क्या कहता है कि मुझे अधिकार प्राप्त होना चाहिए। अधिकार अधिकार की पुकार करता है, और जब वह अधिकार की पुकार करता है, कर्त्तव्य का पालन करता नहीं

तो क्या होगा समाज में? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! उस समय यह होगा कि समाज रक्त भरों क्रान्ति में परणित हो जाएगा। क्योंकि जिस समाज में, आधुनिक काल का जो जगत है उसमें अधिकार की पुकार हो रही है, चाहे वह छात्र बल है, ब्राह्मण समाज है, क्षत्रिय समाज है, चाहे वैश्य समाज है अधिकार की पुकार हो रही है।
अरे, तुम अधिकार की पुकार क्यों करते हो कर्त्तव्य का पालन क्यों नहीं कर रहे हो। जब तुम कर्त्तव्य का पालन करोगे तो अधिकार तुम्हें स्वतः प्राप्त हो जाएगा। उसकी तुम चिन्ता ही न करो वह तो तुम्हें प्राप्त होगा। जब तुम स्वतः कर्मठ बन जाओगे, सुसज्जित बन जाओगे, सुयोग्य बन जाओगे, विद्या अध्ययन करोगे तो उस समय अधिकार तुम्हें स्वतः प्राप्त हो जाएगा। उसकी तुम चिन्ता न करो कर्त्तव्य का पालन करो।
माता की तो पूजा कर नहीं पाते, पितर याग कर नहीं पाते पितर याग कर नहीं पाते। वे कहते हैं कि पितर हमारा शत्रु बन गया है। क्यों बन गया है? क्योंकि वह द्रव नहीं दे पाता, हमें दुष्कर्मों के लिए द्रव नहीं दे पाता इसलिए वह हमारा शत्रु बन गया है। यह जो शत्रुता की भावनाएं हैं, अरे, तुम सेवा करो, द्रव्य की इच्छा ही न करो, तुम कर्त्तव्य का पालन करते चले जाओ।
मैं यह विचार रहा था कि यह क्यों? क्योंकि यह विज्ञान का दुरूपयोग है। जब तक राजा के राष्ट्र में राजा यह चाहता है कि मेरे समाज में महत्ता आ जाए, नैतिकता आ जाए तो जब तक वह विज्ञान के दुरूपयोग पर प्रतिबन्ध नहीं होगा तब तक यह दुराचार की भावना समाप्त नहीं होगी। अतः विज्ञान का सदुपयोग करो। विज्ञान में जहाँ मेरी पुत्रियों के नृत्य होते हैं वहाँ मेरी पुत्रियों के सुन्दर चरित्र आने चाहिए। मन्दालसा के चरित्र आएं, गार्गी के चरित्र आएं। वेदान्तों के शास्त्रार्थ चित्रावलियों में दृष्टिपात किए जाएं तो यह समाज बहुत ही शीघ्र समय में परिवर्तित होता दृष्टिपात होगा। जब मैं यह विचारता हूँ कि राजा के राष्ट्र में राजा कौन सी घोषणा कर रहा है कि समाज पवित्र हो। अरे, यह समाज कैसे पवित्र होगा? हमारे यहाँ राजा संन्यास को प्राप्त हो करके, राज्य को त्याग करके, मानो राष्ट्र को त्याग करके वह समाज में भ्रमण करते थे। भ्रमण करते हुए जो शिक्षा थी वह महान राष्ट्रीय पद्धति है उसका वर्णन कराते रहे और जब

उसका वर्णन होता रहा तो समाज उनके वाक्यों को श्रवण करेगा। श्रवण करके वह अग्रणी बनेगा और अग्रणी बन करके महान समाज में श्रद्धा, आस्था उत्पन्न हो जाएगी। जब इस प्रकार का विचार समाज में होता है, राष्ट्र में होता है, राष्ट्र को उन्नत बनाने का होता है तो समाज उन्नत बन सकता है।

भगवान मनु ने जब राष्ट्र का निर्माण किया तो यहाँ कोई राजा नहीं था। सबसे प्रथम भगवान मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया और जब उन्होंने राष्ट्र का निर्माण किया तो उन्होंने समाज को कर्त्तध्यवाद में लाने के लिए राष्ट्र का निर्माण किया। आज का जो राष्ट्रवाद है वह मानवता बनाने की तो चेष्टा कर रहा है परन्तु यह भी कहता है कि अराजकता न होगी तो राजा का निर्वाचन कौन करेगा? यह भी साथ भावना रहती है। देखो, एक मानव सुरक्षा का अधिकारी है वह दैत्य प्रवृत्ति वालों को जो दूसरों के द्रव्य को हनन करने वाले उनकी वह रक्षा करते हैं। उनको नष्ट करने के लिए अथवा उन्हें दंडित करने के स्थल पर उनकी रक्षा करते हैं, तो दैत्यवाद बलवान होता चला जाता है। परिणाम क्या है कि उनके दुष्ट विचारों को ज्ञान के द्वारा उपदेश के द्वारा और अस्त्रों शस्त्रों के द्वारा वह नष्ट कर देना चाहिए।

देखो, भगवान मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया था और यह कहा था कि राजाओं का जो निर्वाचन है वह बुद्धिमानों के द्वारा होना चाहिए और वे कैसे बुद्धिमान हों! वह ब्रह्मवेत्ता हों, ब्राह्मण हों, विवेकी पुरुष हों, उनके द्वारा राष्ट्र का निर्वाचन हो। वह जो राजा निर्वाचित्त होता है वह महान है परन्तु आधुनिक काल में मनु के उलट कार्य हो रहा है। वह क्या कि जहाँ बुद्धिमानों को राजा का निर्वाचन करना था वहाँ मूर्खों का समाज एकत्रित हो करके राष्ट्र का निर्माण कर रहा है। जहाँ एक बुद्धिमान जो वेद का पठन पाठन करने वाला और ब्रह्म को जानने वाला वह और जो मूर्ख प्राणी जब एक ही स्थली पर आ जाते हैं तो जानों कि राष्ट्र की प्रतिभा समाप्त होने जा रही है।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ विचार विनिमय यह कि मेरा यह अनुभव है परम्परा से ही मूर्ख जिस राष्ट्र का निर्वाचन करते हैं वह प्रथम मूर्खों की विचारेगा और बुद्धिमानों का उसके पश्चात् विचार विनिमय करेगा तो राष्ट्र में साम्य प्रवृत्ति

नहीं रह पाती। इसलिए यहाँ निर्वाचन की घोषणा बुद्धिमानों के द्वारा और वह राजा हो जो समाज को कर्त्तव्यवाद पर लाने वाला हो। परन्तु आधुनिक जगत में मेरी पुत्रियों के श्रृंगारों का हनन हो रहा है, मानव दृष्टिपात कर रहा है। परन्तु मानव में इतना आत्म बल नहीं रहा कि जो मैं अपनी पुत्री की आभा की रक्षा कर सकूं। मैं अरक्षक बन गया हूँ। भक्षक बन गया आज का समाज। मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि समाज को ऊँचा बनाना। ये तो बहुत वार्त्ताएं हैं जो मैं प्रकट करता रहूँगा। परन्तु मैं केवल तुम्हें इस वाक्य पर ले जाना चाहता हूँ कि ऐसा क्यों है? क्या कारण है जो समाज में ऐसा हो रहा है? एक तो धर्म में नाना प्रकार की रूढ़ियां बन गई हैं, और एक विज्ञान का दुरूपयोग है, ये दो कारण हैं समाज के पतित होने का। जब समाज पतित होता है तो दो कारणों से होता है एक तो विज्ञान का दुरूपयोग होता है तो अधिकार की पुकार होने लगती हैं मूर्ख समाज बन जाता है और वही राष्ट्र का निर्वाचन करता है और द्वितीय जो कारण है रूढ़ियां। रूढ़ियां कौन सी हैं? कोई भी पक्ष अपनाने के लिए जब नाना रूढ़ियों से भयभीत होने लगता है। तो वह राजा नहीं कहलाता। वह रूढ़ियों के वशीभूत राष्ट्र बन गया है। आज रूढ़ियां नहीं रहनी चाहिए। मैंने बहुत पुरातन काल में अपना विचार देते हुए कहा था कि आज के राष्ट्रवाद को कहीं मुहम्मद के मानने वालों का भय लगा हुआ है वहीं ईसा के मानने वालों का भय लगा हुआ है, कहीं महावीर के मानने वालों का भय लगा हुआ है, कहीं कृष्णा के पुजारियों का भय लगा हुआ है, कहीं गुरु नानक के मानने वालों का भय लगा रहता है। यह राष्ट्र तो भयभीत हो रहा है। यह राष्ट्र क्या मानव का मनो बल समाप्त होने जा रहा है। जब रूढ़ियों के भय ही भय लगे रहेंगे, अरे, राजन्! यदि तू अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है तो रूढ़ि समाप्त होनी चाहिए। क्योंकि जितने भी महापुरुष हुए हैं उनके मौलिक विचारों को लेना चाहिए। उनके मौलिक विचारों को लेकर के राजा के समीप शास्त्रार्थ होना चाहिए। नाना रूढ़ियों के आचार्य हों और उनमें एक प्रकार का प्रश्नोत्तर होना चाहिए और उनमें शास्त्रार्थ होना चाहिए औश्र जो विचार, धर्म, विज्ञान और मानवता पर मानवीय दर्शन से सिद्ध हो जाए उसे अपनाने में राष्ट्र की कोई हानि नहीं होती। अपनाना चाहिए। उसको जो

मानव अपना लेता है तो शुद्ध पवित्र वेद का प्रकाश हो जाता है।

वेद नाम ज्ञान का है, वेद नाम विवेक है, वेद नाम मानवीय दर्शन का है। जितनी भी सुन्दरताएं, मानवता को ऊँचा बनाने वाली हों। वे सब वेद की आभा कहलाती हैं। विचार मैं यह देने के लिए आया हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैंने बहुत पुरातन काल में यह अपना निर्णय दिया था कि आज हम याग कर्म करने में तत्पर हो जाएं। याग का राजा के राष्ट्र में खण्डन नहीं होना चाहिए। क्योंकि याग तो शुभ कर्म है। याग तो देवताओं की पूजा है। याग तो राष्ट्र को शनैः शनैः ऊर्ध्व बनाने वाला है। इसलिए हमारे यहाँ याग होने चाहिए। भिन्न भिन्न प्रकार के याग हैं। आज मैं यागों के सम्बन्ध में कोई विवेचना देने नहीं आया हूँ। केवल विचार विनिमय करने के लिए आए हैं कि पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देना चाहता हूँ। जो आभा है उसे प्रकट कर रहा हूँ कि प्रत्येक मानव को ऊँचा बनने के लिए अपने कर्त्तव्य का पालन करना है, और कर्त्तव्यवादी ही प्राणी आनंदित हो सकता है, और जो कर्त्तव्यवादी नहीं होता वह आनंदित कैसे होगा? दूसरों के द्रव्य का हनन कर रहा है परन्तु जब स्वतः उसका हनन होता है तो उसे उस समय ज्ञान होता है कि वास्तव में यह त्रुटिपूर्ण कर्म है। उस समय उसे ज्ञान की आभा प्राप्त होती है और वहीं उसे स्थिर रह करके उसको त्याग देते हैं। वही तो एक आभा और विचित्रता कहलाती है।

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देना चाहता हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में ऊँचा बनाने के लिए सुगन्धि को उत्पन्न करना होगा। मेरे हृदय में यह वेदना रहती है कि नाना प्रकार की रूढ़ियां राष्ट्र से समाप्त हों, नाना प्रकार का जो धर्म राष्ट्र रहता है। वास्तव में धर्म एक होता है, एकागी धर्म को अपना लेना चाहिए। धर्म कहाँ एक होता है, एकागी धर्म को अपना लेना चाहिए। धर्म कहाँ रहता है? मानव की इन्द्रियों में धर्म समाहित रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते हैं कि इन्द्रियों में धर्म समाहित रहता है। जैसे अभी अभी प्रकट कर रहे थे कि चक्षुओं में रूप रहता है, श्रोत्रों में शब्द रहता है, वाणी में एक कृति अस्तुता रहती है, नाना प्रकार की धाराएं रहने वाली इन्द्रियों में एक तरह से दृष्टिपात कर रहा है। एक इन्द्रिय से दर्शन कर रहा

है एक सुन्दरी के दर्शन कर रहा, सुन्दरी ब्रह्मचारी के दर्शन कर रही है। यदि कुदृष्टि बन गई तो पाप बन गया। व्यापक दृष्टि बन गई है तो पुण्य और धर्म बन गया है। इसीलिए धर्म एक ही वस्तु है जो मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता है। इसीलिए प्रत्येक इन्द्रिय के विषयों को जान करके राजा को अपने राष्ट्र में धर्म की स्थापना करनी चाहिए और राजा का निर्वाचन इसलिए होता है कि वह धर्म की रक्षा करे, कर्त्तव्यवाद में प्राणी को लाता चला जाए। जहाँ कर्त्तव्यवाद होता है वहाँ न राष्ट्र की आवश्यकता है और न राजा की आवश्यकता है। वहाँ तो प्रत्येक मानव अपने अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है और वही कर्त्तव्य का पालन मानव को ऊँचा बनाता है।

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देने के लिए आया हूँ कि इस समय जो संसार के प्राणियों की गति हो रही है वह समय दूर नहीं है जब यहाँ देखो, जितने अन्तरिक्ष में लोक लोकांतर हैं वहाँ वैज्ञानिकों का आदान प्रदान होने जा रहा है। क्योंकि मंगल का प्राणी मंगल का वैज्ञानिक पृथ्वी पर भ्रमण करने आता है और यहाँ का प्राणी मंगल में चला जाएगा कुछ काल के पश्चात् और चन्द्रमा में गति करने वाले चन्द्रमा के प्राणी यहाँ गति करेंगे। वह समय आ रहा है और यदि यह समय भयंकर अनधिकार चलता रहा तो यहाँ अग्नि भी प्रदीप्त हो जाएगी। परिणाम क्या है कि आज मैं यह विचार देने के लिए आया हूँ, अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देने आया हूँ कि आधुनिक काल का जो राष्ट्रवाद है वह भयभीत हो रहा है। वह अपने में यह संकुचित्त विचार बना रहा है। परन्तु ये जो नाना प्रकार की रूढ़ियां हैं इनका मूल कारण ये ही रूढ़ियां हैं। ये रूढ़ियां नहीं रहनी चाहिएं। यदि ये रूढ़ियां राष्ट्र की क्षेत्र बन जाएंगे तो राष्ट्र छिन्न भिन्न हो सकते हैं। रक्त भरी क्रान्तियां आ सकती हैं। इसलिए मैं अपने विचारों को अब विराम दे रहा हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा चाहता हूँ। जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ समायन यागू हो रहा था। मैं यज्ञमान के लिए अपनी शुभ कामना प्रकट करता रहता हूँ। कि हे यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ हो और जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। सर्वत्र शुभ कार्य होते रहें। मनों में प्रतिभा बन करके तेरी मानवता को ऊँचा बनाती रहें। जितने भी शुभ कर्म हैं, मानवीय कर्म हैं, मानवीय दर्शन

है, सर्वत्र मानों याग हो रहे हैं। जो प्रथम मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने दर्शनों की भाषा में तुम्हें वर्णन कराया। अब मैं अपने पूज्य गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा! हे यज्ञमान! तेरी आभा महान द्यु लोकों तक गति करती रहे, सत्यता में रमण करता रहे। यह मेरी कामना है। इसके साथ मैं अपने विचारों को विराम देने जा रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य...। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी उन्हीं पुरातन काल की वार्त्ताओं की पुनरुक्ति करते चले गए। इनके हृदय में एक वेदना रहती है कि रूढ़ियां समाप्त होनी चाहिए। इन रूढ़ियों को शक्तिशाली प्राणी ही समाप्त किया करते हैं जो ज्ञानी होते हैं वेद की पोथी उनके समीप होती है। क्योंकि वेद के पक्षपात से रहित विचार हैं और जो पक्षपात से रहित विचार हैं यह परमात्मा की अमूल्य वाणी है। वह मानव के लिए शिक्षा प्रद हैं और जो मानवीय दर्शनों की विवेचनाएं हैं वह मानवीय दर्शनों में ही ओत प्रोत रहती हैं। मानव को स्वतः ही अपना दर्शन करना चाहिए। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपनी एक सुन्दर विवेचना प्रकट की कि मेरी पुत्रियों के अश्लील नृत्य नहीं होने चाहिए। इसका परिणाम भी इन्होंने प्रकट किया। वास्तव में इसका परिणाम बड़ा विचित्र है कि जब ब्रह्मचर्य मानव का दूषित हो जाता है और दूषित होने पर मानव के हृदय में चंचलता आ जाती है अब जो शिक्षा प्रणाली है जो शिक्षा की प्रतिभा है जो गार्हपत्य अग्नि की पूजा की घोषणा करता है ब्रह्मचारी के लिए, यमाचार्य जैसा ऋषि कर रहा है, वेद का वाक्य भी कहता है मानो उस पथ से ब्रह्मचारी विचलित हो जाता है। विज्ञान के दुरूपयोग होने पर रावण जैसे साम्राज्य समाप्त हो गए। महाभारत भी देखो, इस विज्ञान के दुरूपयोग में समाप्त हो गया।

मुझे अपने पुत्र की विवेचना बहुत सुन्दर लग रही थी कि विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए, रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। मानव मानव की धर्म और व्यापकता एक महान आभा में रमण करती हुई उज्ज्वल स्वरूपों को प्राप्त होती रहे। और मेरे प्यारे! महानन्द जी अभी अभी यज्ञमान को शुभ कामना प्रकट कर रहे थे। मेरी भी सदैव यह कामना रहती है कि द्रव्य का अपने गृह में सदुपयोग होता रहे और देव पूजा होती रहे, देवताओं का आह्वान होता रहे। स्वाहा होता ही रहे। उसके पश्चात् उनके जीवन की आभा मेरे

हृदय की कामना है कि जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, पवित्रता में सदैव धारण करता रहे। इन वाक्यों के साथ अब मैं अपने विचारों का समापन कर रहा हूँ। अब कुछ वेद मन्त्रों का पठन पाठन होगा और उसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त। निवास स्थान श्री प्रणपाल सिंह राणा गांधी कालोनी, मुजफ्फर नगर समय रात्रि 9 00 बजे

१५ 12 04 1978 पुष्प 31

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रां का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता हैं जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र जब उस परमपिता परमातम की गाथा गा रहा हैं टिवा उसकीमहिमा का का वर्णन कर रहा है

हमारे यहाँ परम्परा से ही ऋषि मुनि विद्यमान हो करके आत्मा और परमात्मा की विवेचना करते रहे हैं क्योंकि उनकी चिन्तन करने की जो एक शैली रही हैं अथवा उनके चिन्तन करने की एक स्थली और विचार रहा हैं वह मान और पवित्रतम रहा है आज हम उन वेद मन्त्रों की महिमा अथवा उनमे जो क्रियाकलाप उनका जो अमूल्य विषय है उस स्थली पर हम तुम्हें ले जाना नही जाना चाहते हैं जहाँ ऋषि मुनि एक एक वेदमन्त्र का अध्ययन करते हुए और आत्म चिन्तन करते रहे हैं और तआत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में प्रायः ऊँची ड़ान उड़ते रहे हैं ऐसे महान ऋषि जिन्होंने मानो बाहर बारह वर्षों तक वायु कासेवन करते हुए उस अन्नाद को पान करते जिस पर किसी का अधिकर न हो केवल प्रभु की रचयिता स्वीकार करके उसको पान करते रहे हैं और आत्म साधना में ऊँची उड़ान उड़ते रहे हैं

आओ, मेरे पुत्रों! मैने कई काल में तुम्हे निर्णय करते हुए कहा है इससे पूर्व काल में भी हम तुम्हें वैशम्पायन की चर्चाएं कर रहे थे वैशम्पायन के विचार विनिमय करने की जो धाराएं हैं वह प्रायः हमारे ऋषि मुनियों में विचित्तत्रं रही हैं क्योंकि महर्षि भारद्वाज, याज्ञवल्क्य ऋषि और भी नाना ऋषि हुए हैं जैसे गाड़ी वान रेवक उन ऋषि मुनियों के

जीवन में महान तप रहा है और तपस्या करने के पश्चात उन्होंने गागर में सागर की कल्पनाएं की हैं कल्पनाएं ही नही की हैं उन्होंने विचार देने का भी प्रयास किया हैं आज हम तुम्हें उन ऋषि मुनियों के कुछ विचार देने के लिए आऐ हैं।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें वैशम्पायन ऋषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ आत्मा की विवेचना होती रही हैं परमात्माका चिन्तन होता रहा उसका आश्रय ले करके वह सर्वत्र प्रकृति की ग्रन्थियों को ऋषि मुनि उनका स्पष्टीकरण करते रहे हैं उनमें एक आभा परणित होती रही हैं आज मैं तुम्हें वैशम्पायन, महर्षि विभाण्डक, महर्षि सुकेता, ब्रह्मचारी रोहिणी केतुआदि ऋषि मुनि विद्यमान हो करके कुछ चिनत कर रहे हैं अथवा मनन कर रहे थे उनके समीप उद्दालक गोत्र मे उत्पन्न होने वाले महर्षि पणपेतु ऋषि उनके द्वार पर विद्यमान हैं वैशम्पायन ऋषि वा महर्षि से प्रश्न कर रहे थे कि महाराज! जब तुमने भौतिक विज्ञान के द्वारा नाना चित्रावलियों का दिग्दर्शन किया है और तुमने उन चित्रों में अपने पिताओं महापिताओं से प्रश्न उत्तर किया हैं यह जो बाह्य जगत हैं इस बाह्य जगत में नाना प्रकार की तरंगें तरेंगित होती रही हैं और वह जो तरंगें मानो वे अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष को प्राप्त हाती रही हैं कि हम अपने महापिता के ही दर्शन कर रहे हैं जो हम चित्रावलियों में दर्शन कर रहे हैं यह अपने महापिताओं के ही दर्शर कन रहे हैं।

मेरे पुत्रों! उस समय पणपेतु ऋषि महाराज महान तपस्वी थे और उनके तप का प्रकाश उनकी आत्मा से प्रतीत होता था उनके हृदय की आभा से मानव को प्रतीत होता था जब उन्होंने कहा तो ऋषि कहते है। हमारा जो मानव शरीर हैं इस शरीर में नाना परमाणु गति कर रहे हैं मानो तरंगें गति कर रही है और उन तरेंगों को हम जानते रहते हैं उन तरंगों को समाधि के द्वारा सात्विक अन्न को प्राप्त करने हुए मानो जल समिध के द्वार सात्विक अन्न के प्राप्त करते हुए मानो जल इत्यादि को पान करते हुए हम अपने को समाधि के क्षेत्र में ले जाते हैं और जब समाधि के क्षेत्र में ले जाते हैं तो जो नाना मानवीय तरंगें हैं जो हमारे अरबों खरबों माने असंख्य जिनको हम गणित नही कर सकते वह एक एक परमाणु के साथ में नाना प्रकार की तरंगों में ओत प्रोत

रहती हैं उन तरंगों को और उनमें एक सूक्ष्म स्वरूप जो विद्यमान हैं उन सूक्ष्म स्वरूपों को हम अपने समाधि के द्वारा अपने चित्त मण्डल में दृष्टिपात करते रहते हैं

मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि तुम और कैसे दृष्टिपात करते हो उन्होंने हा कि हम अपने इस स्थूल शरीर को जानते हुए सूक्ष्मत्व रहस्य में परणित होते हुए हम अपने सूक्ष्म शरीरों को दृष्टिपात करने लगते हैं समिध के द्वारा क्योंकि जहाँ तक हमारी गम्भीर और आवृत्तियां हैं मानो जहाँ प्रवृत्ति प्रवेश करती हैं वहाँ हम प्रवेष्ठ हो जाते हैं महर्षि पणपेतु ऋषि महाराज ने वास्तव में यह निर्णय किया हैं और निर्णय देते हुए उन्होंने कहा कि इन्हीं तरंगों के द्वारा जब हम पात दृष्टिपात करते हैं हम भौतिक विज्ञान के द्वारा साक्षात्कार करते हैं हम यागों की और औषधियों को सुगन्धि जब सूक्ष्म अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके हम जब उन्हें यन्त्रों में यन्त्रालयों में उन्हें प्रवेश करने की क्षमता बना लेते हैं तो वह चित्र हमारे समीप आने प्रारम्भ हो जाते हैं मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब ऐसा निर्णय दिया तो ऋषियों ने कहा कि आज हम यह जानना चाहते हैं कि यह जो नाना प्रकारके रूप शब्दों के दृष्टिपात होते हैं जो अन्तरिक्ष में विद्यमान हैं इन अन्तरिक्ष वाले जो चित्र रमण कर रहे हैं वह चित्र नित्य रहते हैं या अनित्य रहते हैं

मेरे प्यारे! ऋषियों ने जब यह प्रश्न किया तो उन्होंने हा कि जब तक यह प्रकृति का मण्डल अथवा चिता का मण्डल बना रहता हैं तब तक वे उसमें ओत प्रोत रहते हैं क्योंकि बाह्य आभा में बाह्य जगत में यह जो अन्तरिक्ष का स्वरूप है यह तरंगों वाजा हैं इसमें महान तरंगें होती हैं इतनी धाराएं होती हैं कि उनको कोर्ठ मानव गणित नही कर सकतायह असंख्य होती हैं जिसकी कोई गणना नही की ाती इसीजिलए इसमे ओत प्रोत रही हैं और वह नित्य अनित्य के ही स्वरूप में रहती हैं जब तक वह प्रकृति का मण्डल बना रहता हैं और जब तक उनके मण्डल आभाओं ममें परणित होते रहते है। तब तक वह मण्डल नित्य रूप में अनित्य रूपों में दोनों में ही परणित रहते हैं

मेरे पुत्रों! जब नित्य अनित्य दोनों कावर्णन किया तो इसमें और भी एक गम्भीरता उत्पन्न हो गई और गम्भीरता यह उत्पन्न होने लगी कि यदि वह नित्य है तो कैसे है अनित्य है तो कैसे हैं तो मेरे पुत्रों! उन्होंने वर्णन किया हैं कि नित्य स्वरूप हैं वह तो

जबतक वह अन्तरिक्ष की आभा में मण्डल बना रहता हैं जब तक उसमें विद्यमान होता है क्योंकि तब तक वह मण्डल नित्य बनते रहते हैं परन्तु मण्डल समाप्त हो जाने के पश्चात वह चित्त का मण्डल सूक्ष्म रूपों में परणित हो जाता हैं परणित हो जाने के पश्चात वह नित्य रूप को भी धारण करता रहता हैं क्योंकि जैसी आभाएं होती हैं जो ऊर्ध्वा ओर ध्रुव से प्राप्त होती हैं उनका आभा में परितवर्तन होता रहता हैं परन्तु आज में पुत्रों! उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ वह विशल क्षेत्र हैं आज का जो हमारा वेद का मत्र कुछ कह रहा था आज मैं तुम्हें नवीन वैशम्पायन ऋषि की आभाओं में ले जाना चाहता हूँ दकर जरे अपना मन्तव्य हैं उस आधार पर अपनी आभा प्रकट करीने के लिए हम तत्पर हैं

मेरे प्यारू हमारे यहाँ आत्मा परमात्मा का विषय परम्परा से ऋषि मुनियों के मसितष्कों ममें बना रहा है और वह बनता रहेगा जब तक यह पृथ्वी का गर्भ है यह ऐसा अनुपम विषय है जिसके ऊपर प्रत्येक मानव अनुसनधान करता रहता हैं और अनुसन्धान करना चाहिए क्योंकि मानव का स्वभाव रहता हैं कि वह अनुसनधन करता रहता हैं जैसे हमारे इस मानव शरीर में एक मनस्तव है यह मनस्तव का स्वभाव है संसार को जानना है क्योंकि हय प्रकृति के जानने की इसी उत्कट इच्छा बनी रहती हैं उसके पश्चात उसके आत्म चिन्तन की आत्मा को जानने की इच्छा बनी रहती हैं आत्मा के स्वरूप को मानो अपने स्वरूप में परणित करता है तो यह परमात्मा का अनुभव करने लगता हैं मानो उसके स्वरूप को भी जब तक बाह्य प्रवृत्ति रहती हैं बाह्य जगत में लगा रहता है तो उसको प्राप्त करने की उत्सुकता बनी रहती हैं कि मैं इस प्रकृति के मण्डल में इस प्रकृति की आाा में उस चेतना को जानना चाहता हूँ जिस चेतना के कारण यह जड़ जगत प्रकृति गति मान हो रहा हैं यह गतिशील हो रही है नाना प्रकार के रूप इसमें मुझे दृष्टिपात आते हैं तो ऐसा एक मानव का स्वभाव बना रहता है प्रत्येक मानव इस आभा में परणित रहता है। अपने कुछ वाक्यों से उपराम होता है ता ेइसके पश्चात यही विचार रहता है मनन करता रहता हैं और चिन्तन करने कही जो उसकी शैली है यह परमपरा में जो इसके मौलिक संस्कार होते हैं उन संस्कारों के आधार पर संस्कारों की

प्रतिभा पर उसके चिन्तन करने की आभा प्रारम्भ हो जाती हैं।
आओ मेरे पुत्रों! आज मैं तुम्हें कुछ चर्चाएं करते चले कि वह महर्षि वैशम्पायन और महर्षि विभाण्डक अपने आरम में चर्चाए करते रहते उनके चर्चा करने का जो विषय और जो शैली है आज उसे मैं तुम्हें वर्णन कराना चाहूँगा महर्षि वैशम्पायन जब यह विचारते रहे चिन्तन करते रहे कि यह जो तरंगें हैं यह प्रकृतिवाद की ही धारा है इसके ऊपर जब उनका अध्ययन चलता रहा तो यह विचार में आने लगा कि प्रकृति का जो संचालन करने वाला है वह कौन हैं इन वाक्यों को भी उन्होंने त्याग दिया उन्होंने यह कहा कि जो मानव का शरीर है इसका कौन संचालन कर रहा हैं कौन सा खिलचाड़ हो रहा हैं इसके ऊपर जब चिन्तन करने लगे तो ऋषि वेशम्पायन कहते हैं कि मेरे विचार मे तो यह आता है कि आत्मा इस शरीर में रहता हैं शरीर की गुफा में रहता हैं हृदय रूपी अनुपम गुफा में रहता हैं यही शरीर को संचालन करता रहता हैं सन्निधान मात्रसे इसका क्रिया कलाप होता रहता है सन्निधान मात्र से इसका क्रिया कलाप हो जाता हैं क्योंकि प्रकृति का मण्डल बना हुआ हैं और प्रकृति के मण्डल के सन्निधान मात्र से ही यह प्रकृति का सर्वत्र मण्डल चल रहा है। लोक लोकान्तर एक सूत्र में पिरोए हुए मानो गतिशील और अपनी अपनी आभा में गतिशील दृष्टिपात आ रहे हैं। इसी प्रकार जो मानव का शरीर है यह एक चेतना के मानो हृदय रूपी अनुपम गुफा की दो कृतियाँ स्पष्ट मानी गई हैं। आत्मा के दो स्रोत माने गए हैं। किन्हीं आचार्यों ने लघु मस्तिष्क के ऊपरले भाग में कृतिभा एक मस्तिष्क होता है, इस मस्तिष्क में किन्हीं आचार्यों ने बेटा! देखो,! वैशम्पायन और आदि ऋषियों ने यहाँ किन्हीं किन्हीं के विचार देते हुए उन्होंने यह कहा है कि एक आसन स्थान माना गया है। परन्तु कुछ ऋषियों का यह कथन है कि हृदय रूपी जो गुफा है उसमें आत्म तत्त्व रहता है, आत्म बृही रहता है। एक आभा में रमण करता रहता है, वह देखो, सन्निधान मात्र से ही इन शरीरों को गति देता रहता है। जैसा हमारा यह स्थूल शरीर है, इस स्थूल शरीर में ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, मन है बुद्धि है और जैसे हमारे पञ्च तन्मात्राएँ मानी जाती हैं। वह सर्वत्र देखो, केवल सन्निधान मात्रा से अपना काम चल रहा है। यह जो

चित्त के मण्डल में जो नाना प्रकार के संस्कार होते हैं वे संस्कार एक सूत्र से सम्बन्धित होते हैं। क्योंकि मानव के शरीर में एक चित्त होता है, एक चित्त बाह्य जगत में मानो देखो, शिष्य मण्डल में भी होता है। क्योंकि ऋषिजन चित्त के मण्डल से ही, आन्तरिक मण्डल से ही, मानो देखो, जो आन्तरिक मण्डल है उसी से बाह्य मण्डल को दृष्टिपात करते हैं। जैसे हमारे यहाँ ऋषि मुनि समाधि लगाने वाले नाना ऋषि हुए हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भी जब समाधि में प्रवेश करते थे, तो वे अपनी चित्त की धारा को बाह्य चित्त में प्रवेश करा देते थे, और जहाँ बाह्य चित्त में प्रवेश हुआ, यह जो प्रकृति का सर्वत्र चित्त है जिस चित्त के गर्भ में, प्रकृति के गर्भ में, चित्त रूपी गर्भ में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड अपना क्रियाशील दृष्टिपात होता है, यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड, लोक लोकांतर एक आभा में, एक चित्त में दृष्टिपात होते हैं, मानो इन सबको दृष्टिपात कर लेते हैं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक वाक्य ऐसा कहा करते थे कि आंतरिक जगत से जब बाह्य जगत में प्रवृत्तियों को प्रवेश कर देते हैं और जो परमात्मा का अमूल्य हृदय रूपी चित्त है उस चित्त में जब हमारे चित्त का समन्वय होता है तो कोई लोक ऐसा नहीं रह पाता। जिसको यह समाधि के द्वारा दृष्टिपात न कर लें, और जितना भी मण्डलवाद है, जितना भी तरंगवाद है, जितना भी रथवाद है, जितना भी मानो मानव के चित्र बन करके शब्द वह इसके द्वारा प्रवेश करके मानो अपने में अनुभव करने लगता है। अब विचार आता है, चिन्तन करने से प्रतीत होता है कि वह जो अनुभव कर रहा है, उस मानव शरीर में जो अनुभव कर रहा है वह मानो एक चेतना है। यह चेतना देखो, मन के द्वारा दृष्टिपात करता रहता है। वह अनुभव में लगा हुआ है, वह अपने ऐसे सूक्ष्म जगत में चला जाता है जिस जगत में नाना प्रकार के जो मोक्ष के निकट आत्माएँ होती हैं। वह भी कहीं कहीं उनके लोकों में गति करने लगता है। उन गतियों में जब प्रवेश हो जाता है तो वास्तव में दृष्टिपात करने लगता है।

तो महर्षि वैशम्पायन ऋषि महाराज ने अपना वाक्य ऐसा निर्णय देते हुए कहा कि आत्मतत्त्व जो है यह अणु रूप माना है। हृदय रूपी गुपफा में इसका वास रहता है और हृदय रूपी गुपफा में जब वास रहता है तो वह जो लघु मस्तिष्क है ब्रह्मरन्ध्र

अवरेत मस्तिष्क है, शम्भूत मस्तिष्क है, ग्रीतीपात मस्तिष्क है, नाना प्रकार के जो मस्तिष्क हैं उनसे उसका सम्बन्ध रहता है। क्योंकि वह कोन्द्राणी व्री क्रिता। मानो वह इस आभा में रमण करता हुआ, मस्तिष्क में एक विचार विनिमय चिन्तन करने की एक धारा है। क्योंकि जब तक मानव समाधि के द्वारा अपने प्राण और मनस्तत्व दोनों का समन्वय करके जब योगाभ्यास के लिए गति करने लगता है, मन और प्राण दोनों का ही मिलान होता है और दोनों का मिलान करके जब ऊर्ध्व गति बनने लगती है मानो त्रिवेणी के स्थान में जाते ही इसे त्रि विद्या का भान हो जाता है। यह त्री विद्या से अपना संस्कार कर लेता है। उससे अपना मिलान करता है और जब मन और प्राण दोनों की वितकृति बन करके ब्रह्मरन्ध्र को चेताती हैं और वह ऐसा चक्र बन जाता है, गति करने लगता है और उसमें से ऐसी तरंगें उत्पन्न होती है, जिससेयह ब्रह्माण्ड उसके लिए एक खिलवाड़ बन जाता है, यह अपने अन्तरात्मा में, अंतर हृदय में वाक्यों को जानने लगता है। अपने अंतरात्मा में मानो जो ध्वनि हो रही है, यह जो अंतरात्मा में नाना प्रकार के यन्त्र मेरे देव ने नियंत्रित किए हैं, निर्धारित किए हैं उनके शब्द या शब्दावलियों को श्रमण करने लगता है और वह श्रवण करता हुआ उसी से अपने कंठ के द्वार से, जहाँ शब्दों की रचना होती है, शब्दों की ऐसी रचना होती है व्याकरण वाले मानो शब्दों से ही व्याकरण उत्पन्न होने लगता है। वह जो स्वर ध्वनि उत्पन्न होती है, स्वर ध्वनि उत्पन्न होते ही शब्दों की रचना प्रारम्भ हो जाती है। केसा शब्द विज्ञान है कि शब्द आता है, रचना हो रही है कंट में, रचना हो करके बाह्य जगत हो रहा है। वही तरंगें हैं परन्तु शब्द ले करके पुनः बाह्य जगत में प्रवेश कर जाती हैं। परिणाम क्या होता है कि वही शब्द है जो पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है, वही शब्द है जो सूर्य की किरणों के साथ में गति करने लगता है।

आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। केवल तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या है? देखो, कंठ में ही वह ध्वनि उत्पन्न होने लगती है, आंतरिक जगत की ध्वनि है जो कंठ से उत्पन्न होने लगती है, और कंठ से जब ऊर्ध्व भाग में गति करती है त्रिवेणी के स्थान पर वहाँ मैंने बहुत पुरातन काल में

तुम्हें निर्णय कराते हुए कहा था कि वहाँ दो कृतिकाएँ होती हैं। उन दो कृतिकाओं में जब मन और प्राण की वृत्त होती हैं। मानो दो कृतिकाओं की गति होने लगती है, नृत्य करने लगती है और उससे ऊर्ध्व गति एक मूलाधार अव्रेहा मानो जिसे हम ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं जिसका सम्बन्ध मूलाधार से भी है, नाना चक्रों से कहलाया जाता है।

मेरे प्यारे! आज मैं योगाभ्यास में नहीं ले जा रहा हूँ। केवल विचार यह देने के लिए आया हूँ कि वह जो चित्त का मण्डल है, जिस चित्त के मण्डल में नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान रहते हैं मन और प्राण के साथ में जब उसकी ब्रह्मरन्ध्र में उसकी उदबोधता होती है। वह चित्त स्थान से मानो वह सूक्ष्म परमाणु, शब्द विज्ञान की आभा में मानो देखो, वह मन और प्राण की आभा का उनका तारतम्य वह जो चित्रात्मक है वह जो प्राण रूपी सूत्र है जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड में पिरोया हुआ है। मनस्तत्व उस प्राणत्व की गतियों का अनुभव कर रहा है, और अनुभव करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र से जो ज्ञान रूपी चेतना है। जिसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड की चेतना है मानो जिसमें ज्ञान और विज्ञान विद्यमान है, वह एक अणु रूप में सन्निधान मात्र से गति कर रहा है।

मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि ऋषि मुनियों का जो मन्तव्य है, उनकी जो विचारधारा है, उनका इस सम्बन्ध में क्या सम्बन्ध रहा है? जब अणु रूपों में परिणत रहती है तो इसका बाह्य जगत और आंतरिक जगत दोनों में किसी प्रकार का अंतरद्वन्द्व इस महाकृत के लिए नहीं रहता।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें कहाँ ले गया हूँ। मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने के लिए नहीं आया हूँ। क्योंकि हमारे यहाँ ऐसा माना है इस प्रिय मार्ग में हम आत्मा को क्या स्वीकार करें। परन्तु वैदिक आचार्यों ने नाना रूपों में इस आत्मा को अणु रूपों में माना है, और यह अणु ऐसा है कि सन्निधान मात्र से इस मानव शरीर की प्रक्रियाएँ या गति कर रही हैं और गति करती हुई, इसका केवल सन्निधान मात्र प्रकृति से मण्डल का व्यापार प्रारम्भ हो जाता है, और जब वह प्रारम्भ हो जाता है इससे ज्ञान की तरंगें आती हैं। परन्तु यह सन्निधान मात्र से अपना कार्यक्रम प्रारम्भ हो रहा है। बेटा! ऐसा मन्तव्य महर्षि वैषम्पायन का रहा है। ऐसा ही मन्तव्य हमारे यहाँ महर्षि विभाण्डक मुनि

महाराज का रहा है।

आगे रहा यह वाक्य कि आत्मा निर्भय निवैर है या कृतिकदा है। परन्तु यह अनुभव का विषय रह जाता है। यह केवल अनुभव ही कर सकता है। यह आनंद ले रहा है, यह आनंद केवल एक अनुभव का विषय रहा जाता है। क्योंकि आनंद का जो विषय है वह कारण शरीर में ही इस मानव का आत्मा होता है। यही आनंदत्व माना जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ स्थल से सूक्ष्म शरीर है और सूक्ष्म से कारण शरीर कहलाता है। यह जो कारणमय शरीर है यह जो एक पुष्प बना हुआ है। उस कारण शरीर में जो अनुभव होता है, वह जो चेतना का अनुभव होता है वह अनुभव का विषय रहता है। उस आनंद से सृष्टि से प्रारम्भ से क्या मध्यम काल में भी नाना ऋषिवर आनंदित होते चले गए हैं। परन्तु आनंद का जो स्वरूप है उसको कोई वर्णन नहीं कर सका है। वह केवल एक अनुभव का विषय रह गया है।

आज इस सम्बन्ध में वैशम्पायन आदि ऋषियों का कथन है। परन्तु हमारे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि सर्वत्रता में यह आनंद है। अपने सामान्य जिसको हम सामान्य बनाए हुए विद्यमान हैं उससे जब हम व्यापक क्षेत्र में प्रवेश कर देते हैं तो व्यापकता का जो ज्ञान है, व्यापकताकी जो तरंगें हैं, वह जो विवेक है उस आनंद में ही मानव को मग्न रहना चाहिए। क्योंकि उससे आगे यह अनुभव करता रहे तो मानो उसका एक अनुपम चिन्तन है और मनन है। क्योंकि वह संसार के क्षेत्र से उपराम हो गया है। क्षेत्र से उपरामता हम उसी को कहते हैं जब हम अन्तर्द्वन्द्व स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकृति में, प्रकृति का जितना मण्डलवाद है, जितना भी यह जगत है, भौतिक विज्ञान है यह आध्यात्मिकवाद में जब प्रवेश कर दिया जाता है अथवा इसमें प्रविष्ट हो जाता है तो मुनिवरों! देखो,! कोई अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहता। यह हमारे यहाँ आदि ऋषियों का कथन है। आदि ऋषियों की एक विचारधारा है।

मेरे प्यारे! देखो,! हमें न अभिमान रहता है, न कामना रहती है। मानो जो इंद्रियों का विषय है, वह विषय इस साकल्यता में प्रविष्ट हो जाता है। जिससे वे इंद्रियाँ जिस तथ्य की धारा बन करके आईं, उसी में वे प्रवेश हो जाती हैं, उसी में वे रमण करने लगती

हैं। तो उस मानव का एक व्यापक स्वरूप बन जाता है, और व्यापक स्वरूप बन करके यह पर्वतों की अनुपम गुफाओं में और मानो देखो, सुंदरता में, आभा में कोई अन्तर्द्वन्द्व स्वीकार नहीं करता। वह अपने में मग्न रहता है। अनुसन्धान करता रहता है। परन्तु कुछ ऐसे भी प्राणी हैं, ऐसे भी महापुरुष हुए हैं जिन्होंने वेद के अनुपम प्रकाश को ले करके बाह्य जगत को ऊँचा बनाया, और आंतरिक जगत को ऊँचा बनाया, और अपने को व्यापक बना करके ब्रह्म की चरी को सदैव चरते रहे हैं।

मेरे पुत्रो! आज का हमारा विचार क्या कह रहा है? आज का हमारा विचार यह कह रहा है कि हम आत्मतत्व को अनुभव में लाने का प्रयास करें। अनुभव होता भी रहता है। इसी अनुभव में मानो लगा रहता है। आनंदित होता रहता है। परन्तु इसमें मानव के समीप एक धारा उत्पन्न होती है कि मोक्ष की प्रवृत्ति मानव को कैसे प्राप्त होती है? देखो, यह एक जो मोक्ष का विषय है यह एक ऐसा अनुपम विषय है कि मोक्ष भी हमारे ऋषि मुनि इसे स्वीकार करते चले आए हैं। जिसमें परमआनंद लेता रहता है। परमआनंद को प्राप्त होता रहता है। इसमें आनंदित होता रहता है। मग्न होता रहता है, और ये संसार के नाना प्रकार के जो विषय हैं ये इससे समाप्त हो जाते हैं। यह उन्हीं धाराओं में रमण हो जाते हैं जिस धारा में थे। जैसे आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता याग करता है और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता याग कर रहाह ै? यह जो अपने इंद्रियों के विषय हैं जैसे रूप, रस, गंध इन विषयों को एकत्रित करता है और एकत्रित करके इनके ऊपर चिन्तन करता है और चिन्तन करता हुआ इसकी जो चिन्तन रूपी प्रतिभा मानो प्रचंड अग्नि जो जागरूक हो रही है उसमें इनका स्वाहा करता है। उसमें स्वाहा करता हुआ जब वह उसमें स्वाहा कर देता है तो इसका जो स्वरूप है रूप रूप में प्रवेश कर जाता है और शब्द शब्द की धाराओं में प्रविष्ट हो जाता है। प्रत्येक इन्द्रियों का विषय अपने ही स्वरूप में परणित हो जाता है और परणित हो करके इन्द्रियाँ यहाँ केवल ज्ञान रूपी वस्त्रों को धारण कर लेती हैं। ज्ञान रूपी अग्नि को मानो धारण करती हुई स्वभाव में गति करने लगती हैं। वही तो एक अमूल्य जगत है। जैसे एक प्राणी संसार में आता है और आने के पश्चात दो धाराओं के शरीर में यह किसी काल में आया और वह धाराएँ क्या थीं

ज्ञान और प्रयत्न।

ज्ञान और प्रयत्न यह दोनों ऐसी धाराएँ हैं कि ज्ञान का प्रतिनिधि तो मनस्तत्व माना जाता है और जो क्रिया है उसका जो माध्यम है वह प्राणतत्व माना जाता है। यह प्राण और मन उस मानव के शरीर में, जब ज्ञान के द्वारा एक आभा में उस प्राण के विभाग होने लगे। प्राण के पाँच विभाग हो गए जब पाँच विभाग हो गए तो उसके पश्चात उनको कार्य दे दिया। प्राण सारे प्राणों का जो सूत्रतम है, मूल है। वह नाभि केन्द्र से ब्रह्मरन्ध्र से होता हुआ नासिका के द्वारा प्रकृति का सर्वत्र मण्डल चल रहा है। लोक लोकांतर एक सूत्र में पिरोए हुए मानो गतिशील और अपनी अपनी आभा में गतिशील दृष्टिपात आ रहे हैं। इसी प्रकार जो मानव का शरीर है यह एक चेतना के मानो हृदय रूपी अनुपम गुफा की दो कृतियाँ स्पष्ट मानी गई हैं। आत्मा के दो स्रोत माने गए हैं। किन्हीं आचार्यों ने लघु मस्तिष्क होता है, इस मस्तिष्क में किन्हीं आचार्यों ने बेटा! देखो,! वैशम्पायन और आदि ऋषियों ने यहाँ किन्हीं किन्हीं के विचार देते हुए उन्होंने यह कहा है कि एक आसन स्थान माना गया है। परन्तु कुछ ऋषियों का यह कथन है कि हृदय रूपी जो गुफा है उसमें आत्म तत्त्व रहता है, आत्म बृही (यत्रवान) रहता है। एक आभा में रमण करता रहता है, वह देखो, सन्निधान मात्र से ही इन शरीरों को गति देता रहता है। जैसा हमारा यह स्थूल शरीर है, इस स्थूल शरीर में ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, मन है बुद्धि है और जैसे हमारे पञ्च तन्मात्राएँ मानी जाती हैं। वह सर्वत्र देखो, केवल सन्निधान मात्र से अपना काम चल रहा है यह जो चित्त के मण्डल में जो नाना प्रकार के संस्कार होते हैं वे संस्कार एक सूत्र से संबंधित होते हैं। क्योंकि मानव के शरीर में एक चित्त होता है, एक चित्त बाह्य जगत में मानो देखो, शिष्य मण्डल में भी होता है। क्योंकि ऋषिजन चित्त के मण्डल से ही, आन्तरिक मण्डल से ही, मानो देखो, जो आंततरिक मण्डल है उसी से बाह्य मण्डल को दृष्टिपात करते हैं। जैसे हमारे यहाँ ऋषि मुनि समाधि लगाने वाले नाना ऋषि हुए हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भी जब समाधि में प्रवेश करते थे, तो वे अपनी चित्त की धारा को बाह्य चित्त में प्रवेश करा देते थे, और जहाँ बाह्य चित्त में प्रवेश हुआ, यह जो प्रकृति का सर्वत्र चित्त है जिस चित्त

के गर्भ में, प्रकृति के गर्भ में, चित्त रूपी गर्भ में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड अपना क्रियाशील दृष्टिपात होता है, यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड, लोक लोकांतर एक आभा में, एक चित्त में दृष्टि पात होते हैं, मानो इन सबको दृष्टिपात कर लेती हैं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक वाक्य ऐसा कहा करते थे कि आंतरिक जगत से जब बाह्य जगत में प्रवृत्तियों को प्रवेश कर देते हैं और जो परमात्मा का अमूल्य हृदय रूपी चित्त है उस चित्त में जब हमारे चित्त का समन्वय होता है तो कोई लोक ऐसा नहीं रह पाता। जिसको यह समाधि के द्वारा दृष्टिपात न कर ले और जितना भी मण्डलवाद है, जितना भी तरंगवाद है, जितना भी रथवाद है, जितना भी मानो मानव के चित्र बन करके शब्द वह इसके द्वारा प्रवेश करके मानो अपने में अनुभव करने लगता है। अब विचार आता है, चिन्तन करने से प्रतीत होता है कि वह जो अनुभव कर रहा है, उस मानव शरीर में जो अनुभव कर रहा है वह मानो एक चेतना है। यह चेतना देखो, मन के द्वारा दृष्टिपात करता रहता है। वह अनुभव में लगा हुआ है, वह अपने ऐसे सूक्ष्म जगत में चला जाता है जिस जगत में नाना प्रकार के जो मोक्ष के निकट आत्माएँ होती हैं। वह भी कहीं कहीं उनके लोकों में गति करने लगता है। उन गतियों में जब प्रवेश हो जाता है। तो वास्तव में दृष्टिपात करने लगता है।

तो महर्षि वैशम्पायन ऋषि महाराज ने अपना वाक्य ऐसा निर्णय देते हुए कहा कि आत्मतत्व जो है यह अणु रूप माना है। हृदय रूपी गुफा में इसका वास रहता है, और हृदय रूपी गुफा में जब वास रहता है तो वह जो लघु मस्तिष्क है ब्रह्मरन्ध्र अवरेत मस्तिष्क है, शम्भूत मस्तिष्क है, ग्रीती पात मस्तिष्क है, नाना प्रकार के जो मस्तिष्क हैं उनसे उसका सम्बन्ध रहता है। क्योंकि वह कोन्द्राणी व्री क्रिता। मानो वह इस आभा में रमण करता हुआ, मस्तिष्क में एक विचार विनिमय चिन्तन करने की एक धारा है। क्योंकि जब तक मानव समाधि के द्वारा अपने प्राण और मनस्तत्व दोनों का समन्वय करके जब योगाभ्यास के लिए गति करने लगता है, मन और प्राण दोनों का ही मिलान होता है और दोनों का मिलान करके जब ऊर्ध्व गति बनने लगती है मानो त्रिवेणी के स्थान में जाते ही इसे त्रि विद्या का भान हो जाता है। यह त्री विद्या से अपना संस्कार

कर लेता है। उससे अपना मिलान करता है, और जब मन और प्राण दोनों की वितकृति बन करके ब्रह्मरन्ध्र को चेताती हैं और वह ऐसा चक्र बन जाता है, गति करने लगता है, और उसमें से ऐसी तरंगें उत्पन्न होती हैं, जिससे यह ब्रह्माण्ड उसके लिए एक खिलवाड़ बन जाता है, यह अपने अंतरात्मा में, अंतर हृदय में वाक्यायें को जानने लगता है। अपने अंतरात्मा में मानो जो ध्वनि हो रही है, यह जो अंतरात्मा में नाना प्रकार के यन्त्र मेरे देव ने नियंत्रित किए हैं, निर्धारित किए हैं उनके शब्द या शब्दावलियों को श्रवण करने लगता है और वह श्रवण करता हुआ उसी से अपने कंठ के द्वार से, जहाँ शब्दों की रचना होती है, शब्दों की ऐसी रचना होती है व्याकरण वाले मानो शब्दों से ही व्याकरण उत्पन्न होने लगता है। वह तो स्वर ध्वनि उत्पन्न होती है, स्वर ध्वनि उत्पन्न होते ही शब्दों की रचना प्रारम्भ हो जाती हैं। केसा शब्द विज्ञान है कि शब्द आता है, रचना होरही है कंट में, रचना हो करके बाह्या जगत हो रहा है। वही तरंगें हैं परन्तु शब्द ले करके पुनः बाह्य जगत में प्रवेश कर जाती हैं। परिणाम क्या होता है कि वही शब्द है जो पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है। वही शब्द है जो सूर्य की किरणों के साथ में गति करने लगता है।

आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहात हूँ। केवल तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ, और वह परिचय क्या है? देखो, कंठ में ही वह ध्वनि उत्पन्न होने लगती है, आंतरिक जगत की ध्वनि है जो कंठ से उत्पन्न होने लगती है और कंठ से जब ऊर्ध्व भाग में गति करती है त्रिवेणी के स्थान पर वहाँ मैंने बहुत पुरातल काल में तुम्हें निर्णय कराते हुए कहा था कि वहाँ दो कृतिकाएँ होती हैं। उन दो कृतिकाओं में जब मन और प्राण की वृत्त होती हैं। मानो दो कृतिकाओं की गति होने लगती है, नृत्य करने लगती है और उससे ऊर्ध्व गति एक मूलाधार अव्रेहा मानो जिसे हम ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं जिसका सम्बन्ध मूलाधार से भी है, नाना चक्रों से कहलाया जाता है।

मेरे प्यारे! आज मैं योगाभ्यास में नहीं ले जा रहा हूँ। केवल विचार यह देने के लिए आया हूँ कि वह जो चित्त का मण्डल है, जिस चित्त के मण्डल में नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान रहते हैं मन और प्राण के साथ में जब उसकी ब्रह्मरन्ध्र में उसकी

उदबोधता होती है। वह चित्त स्थान से मानो वह सूक्ष्म परमाणु, शब्द विज्ञान की आभा में मानो देखो, वह मन और प्राण की आभा का उनका तारतम्य वह जो चित्रात्मक है वह जो प्राण रूपी सूत्र है जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड में पिरोया हुआ है। मनस्तत्व उस प्राणत्व की गतियों का अनुभव कर रहा है और अनुभव करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र से जो ज्ञान रूपी चेतना है। जिसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड की चेतना है मानो जिसमें ज्ञान और विज्ञान विद्यमान है, वह एक अणु रूप में सन्निधान मात्र से गति कर रहा है।

मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि ऋषि मुनियों का जो मन्तव्य है, उनकी जो विचारधारा है, उनका इस सम्बन्ध में क्या सम्बन्ध रहा है? जब अणु रूपों में परणित रहती है तो इसका बाह्य जगत क्या शून्य रहता है? मेरे प्यारे! बाह्य जगत और आंतरिक जगत दोनों में किसी प्रकार का अंतरद्वन्द्व इस महाकृत (योगी आत्मा) के लिए नहीं रहता।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें कहाँ ले गया हूँ। मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने के लिए नहीं आया हूँ। क्योंकि हमारे यहाँ ऐसा माना है इस प्रिय मार्ग में हम आत्मा को क्या स्वीकार करें। परन्तु वैदिक आचार्यों ने नाना रूपों में इस आत्मा को अणु रूपों में माना है, और यह अणु ऐसा है कि सन्निधान मात्र से इस मानव शरीर की प्रक्रियाएँ या गति कर रही हैं और गति करती हुई, इसका केवल सन्निमात्र प्रकृति से मण्डल का व्यापार प्रारम्भ हो जाता है और जब वह प्रारम्भ हो जाता है इससे ज्ञान की तरंगें आती हैं परन्तु यह सन्निधान मात्र से अपना कार्यक्रम प्रारम्भ हो रहा है। बेटा! ऐसा मन्तव्य महर्षि वैशम्पायन का रहा है। ऐसा ही मन्तव्य हमारे यहाँ महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज का रहा है।

आगे रहा यह वाक्य कि आत्मा निर्भय निवैर है या कृतिकदा है। परन्तु यह अनुभव का विषय रह जाता है। यह केवल अनुभव ही कर सकता है। यह आनंद ले रहा है, यह आनंद केवल एक अनुभव का विषय रह जाता है। क्योंकि आनंद का जो विषय है वह कारण शरीर में ही इस मानव का आत्मा होता है यही आनंदत्व माना जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ स्थूल से सूक्ष्म शरीर है और सूक्ष्म से कारण शरीर कहलाता है। यह जो

कारणमय शरीर है यह जो एक पुष्प बना हुआ है। उस कारण शरीर में जो अनुभव होता है, वह जो चेतना का अनुभव होता है वह अनुभव का विषय रहता है। उस आनंद से सृष्टि से प्रारम्भ से क्या मध्यम काल में भी नाना ऋषिवर आनंदित होते चले आए हैं। परन्तु आनंद का जो स्वरूप है उसको कोई वर्णन नहीं कर सका है। वह केवल एक अनुभव का विषय रह गया है।

आज इस सम्बन्ध में वैशम्पायन आदि ऋषियों का कथन है। परन्तु हमारे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि सर्वत्रता में यह आनंद है। अपने सामान्य जिसको हम सामान्य बनाए हुए विद्यमान हैं उससे जब हम व्यापक क्षेत्र में प्रवेश कर देते हैं तो व्यापकता का जो ज्ञान है, व्यापकता की जो तरंगें हैं, वह जो विवेक है उस आनंद में ही मानव को मग्न रहना चाहिए। क्योंकि उससे आगे यह अनुभव करता रहे तो मानो उसका एक अनुपम चिन्तन है और मनन है। क्योंकि वह संसार के क्षेत्र से उपराम हो गया है। क्षेत्र से उपरामता हम उसी को कहते हैं जब हम अन्तर्द्वन्द्व स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकृति में, प्रकृति का जितना मण्डलवाद है, जितना भी यह जगत है, भौतिक विज्ञान है यह आध्यात्मिकवाद में जब प्रवेश कर दिया जाता है अथवा इसमें प्रविष्ट हो जाता है तो मुनिवरों! देखो,! कोई अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहता। यह हमारे यहाँ आदि ऋषियों का कथन है। आदि ऋषियों की एक विचारधारा है।

मेरे प्यारे! देखो,! हमें न अभिमान रहता है, न कामना रहती है। मानो जो इंद्रियों का विषय है, वह विषय इस साकल्यता में प्रविष्ट हो जाता है। जिससे वे इंद्रियाँ जिस तथ्य की धारा बन करके आईं, उसी में वे प्रवेश हो जाती हैं, उसी में वे रमण करने लगती हैं। तो उस मानव का एक व्यापक स्वरूप बन जाता है, और व्यापक स्वरूप बन करके यह पर्वतों की अनुपम गुफाओं में और मानो देखो, सुन्दरता में, आभा में कोई अन्तर्द्वन्द्व स्वीकार नहीं करता। वह अपने में मग्न रहता है। अनुसन्धान करता रहात है। परन्तु कुछ ऐसे भी प्राणी हैं, ऐसे भी महापुरुष हुए हैं जिन्होंने वेद के अनुपम प्रकाश को ले करके बाह्य जगत को ऊँचा बनाया और आंतरिक जगत को ऊँचा बनाया, और अपने को

व्यापक बना करके ब्रह्म की चरी को सदैव चरते रहे हैं।

मेरे पुत्रो! आज का हमारा विचार क्या कह रहा है? आज का हमारा यह विचार यह कह रहा है कि हम आत्म तत्त्व को अनुभव में लाने का प्रयास करें। अनुभव होता भी रहता है। इसी अनुभव में मानो लगा रहता है। आनंदित होता रहता है। परन्तु इसमें मावन के समीप एक धारा उत्पन्न होती है कि मोक्ष की प्रवृत्ति मानव को कैसे प्राप्त होती है? देखो, यह एक जो मोक्ष का विषय है यह एक ऐसा अनुपम विषय है कि मोक्ष भी हमारे ऋषि मुनि इसे स्वीकार करते चले आए हैं। जिसमें परमआनंद लेता रहता है। परमआनंद को प्राप्त होता रहता है। इसमें आनंदित होता रहता है। मग्न होता रहता है, और ये संसार के नाना प्रकार के जो विषय हैं ये इससे समाप्त हो जाते हैं। यह उन्हीं धाराओं में रमण हो जाते हैं जिस धारा में थे। जैसे आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता याग करता है और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता याग कर रहा है? यह जो अपने इंद्रियों के विषय हैं जैसे रूप, रस, गंध् इन विषयों को एकत्रित करता है और एकत्रित करके इनके ऊपर चिन्तन करता है, और चिन्तन करता हुआ इसकी जो चिन्तन रूपी प्रतिभा मानो प्रचंड अग्नि जो जागरूक हो रही है उसमें इनका स्वाहा करता है। उसमें स्वाहा करता हुआ जब वह उसमें स्वाहा कर देता है तो इसका जो स्व्रवरूप है रूप रूप में प्रवेश कर जाता है। और शब्द शब्द धाराओं में प्रविष्ट हो जाता है। प्रत्येक इंद्रियों का विषय अपनेही उस्वरूप में परणित हो जाता है और परणित हो करके इंद्रियाँ यहाँ केवल ज्ञान रूपी वस्त्रों को धारण कर लेती हैं। ज्ञान रूपी अग्नि को मानो धारण करती हुई स्वभाव में गति करने लगती हैं। वही तो एक अमूल्य जगत है। जैसे एक प्राणी संसार में आता है और आने के पश्चात दो धाराओं के शरीर में यह किसी काल में आया और वह धाराएँ क्या थीं ज्ञान और प्रयत्न।

ज्ञान और प्रयत्न यह दोनों ऐसी धाराएँ हैं कि ज्ञान का प्रतिनिधि तो मनस्तत्व माना जाता है और जो क्रिया है उसका जो माध्यम है वह प्राणतत्व माना जाता है। यह प्राण और मन उस मानव के शरीर में, जब ज्ञान के द्वारा एक आभा में उस प्राण के विभाग होने लगे। प्राण के पाँच विभाग हो गए जब पाँच विभाग हो गए तो उसके पश्चात उनको

कार्य दे दिया। प्राण सारे प्राणों का जो सूत्रतम है, मूल है। वह नाभि केन्द्र से ब्रह्मरन्ध्र से होता हुआ नासिका के द्वारा यह बाह्य जगत को धारण कर लेता है। सारे बाह्य से परमाणुओं को लाना एक ऐसा तारतम्य बना रहता है इसके पश्चात अपान का भी अपना कार्य परणित कर देता है, उदान का भी, सपान का भी व्यान का भी इन सबका अपना कार्य वाहक प्राणों को प्रदान कर दिया। इसके पश्चात इसकी और भी ज्ञान की जो आभा हैं प्रकृति की तरंगें आती रही यह और इसके साथ विभाजित बना हुआ है। नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और कृकर ये पाँच और प्राण बना दिए और बनाने के पश्चात देखो, इसका एक जगत बन गया, प्राणों के दस भाग हो गए। दस भाग से उसके विशेष भाग नहीं हो सकते। क्योंकि इसकी इतनी सीमा थी इस मानव शरीर में।

इसके पश्चात् जब शरीर में कार्य चलता रहा नाग प्राण को भी कार्य प्रदान कर दिया, देवदत्त, धनञ्जय को भी कार्य प्रारम्भ कर दिया। इसके पश्चात देखो, शान्त होने लगे। यह जो ज्ञान का चित्त था वह समाप्त नहीं हुआ। इसका क्रिया कलाप चलता रहा, तो ये दस इन्द्रियाँ बन गईं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ। यह बाह्य जगत को दृष्टिपात करने लगीं। जब यह बाह्य जगत को दृष्टिपात करने लगीं तो दृष्टिपात करते करते जब इन्होंने संसार को दृष्टिपात किया तो उनके विषय बन गए।

इसके पश्चात काम और क्रोध बन गया। मानो काम क्रोध, मद, लोभ मोह बन गया, क्योंकि ये प्रकृति के समन्वय से ये प्राप्त हो गए। इसके पश्चात् एक तृष्णा नाम की बलवती कामना के रूप में शरीर में प्रवृष्टि हो गई। जब यह जगत इतना व्यापक बन गया, मानव की तृष्णा इतनी बलवती हो गई इसके पश्चात मानव को इस संसार से घृणा होने लगी। जब घृणात्मक होने लगी कि अरे, तू इस संसार में किस लिए आया? क्या करने लगा? उसके पश्चात अब ऋषि मुनियों ने अपना विचारविनिमय किया, चिन्तन किया। सबसे प्रथम तृष्णा को अपने वशीभूत किया। तृष्णा से दो तरंगें उत्पन्न होती हैं, मान और अपमान की।

मान और अपमान को त्यागने का प्रयास किया। इसके ऊपर ज्ञान के द्वारा, यौगिकता के द्वारा इस पर नियन्त्रण करना प्रारम्भ किया। नियन्त्रण करते हुए एक नवीन संसार

बन गया। बाह्य जगत को कैसे समेटता है? इस प्रक्रिया को मैं तुम्हें उच्चारण करूँगा। वह सबसे प्रथम अपने आहार को सूक्ष्म बनाता है। वह अपने आहार को पवित्र बनाने का प्रयत्न करता है। क्योंकि आहारों से ही विचार उत्पन्न होते हैं। जब विचार पवित्र बने तो तृष्णा पर नियन्त्रण होने लगा। तो मान अपमान भी मानव के सूक्ष्म बन गए। जब वह अपनी एक विरह के रूप में अपनी गति बना लेता है तो मान अपमान भी समाप्त हो जाता है। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि पर भी वह ज्ञान के द्वारा उन पर नियन्त्रण करता है, चिन्तन के द्वारा कि इनका कौन सा स्वरूप है, कौन सी आभा है? इसके पश्चात जो बाह्य इन्द्रियों का विषय बन गया था उन इन्द्रियों के विषय को भी समेट लेता है, और इन्द्रियों के विषय को समेट करके इन इन्द्रियों पर नियन्त्रण करता है दस इन्द्रियां के द्वारा श्रोत्र इन्द्रियाँ हैं, देखो, रूप, रस गन्ध इत्यादि जो प्रकृति में प्रवेश हो गए थे, वे जो प्रकृति की आभा में गति करने लगे थे, वे प्रकृति के तथ्यों को जान करके उसी में त्याग देते हैं, और त्याग करके उन प्राणों का जो नाम देवदत्त, धनञ्जय कूर्म, कृकर हैं इन प्राणों के ऊपर वह नियन्त्रण करता हुआ प्राणायाम करता है। कहीं भस्त्रिका करता है, कहीं राज योग की आभा में प्रवेश कर जाता है, कहीं धारणा, ध्यान समाधि में प्रवेश करता है परन्तु ऐसे गम्भीरतम रहस्य की आभा में प्रवेश करता है, मानो वह इन प्राणों पर संयम करने के लिए तत्पर हो जाता है। वही सिमट करके प्राणों पर चला गया। इन पाँचों प्राणों का स्वरूप बन गया। यही केवल मानों प्राणत्व रह गया, यही मनस्तत्व रह गया।

ये मेरे प्यारे! अणु के दो स्वरूप माने गए हैं जिसको हम आत्मा कहते हैं। यह तो प्रकृति तत्त्व बन गया, यह मानो चेतनावदी बन करके, इनके भी आचार्यों ने कहा कि यह भी आत्मा के स्वरूप माने हैं, यह मानो प्रकृति के स्वरूपों से ही प्राणों के सन्निधान मात्र से ही बाह्य और आंतरिक जगत बना है।

मेरे प्यारे! देखो, ऐसा एक आचार्य ने अपना वर्णन किया है। आचार्यों ने अपना मन्तव्य दिया है। आचार्यों ने कहा है कि एक मानव बाह्य बन गया है। आंतरिकता में जाना है इससे सर्वत्रता को जानते हुए मेरे प्यारे! । जब ये दोनों ज्ञान और प्रयत्न एक स्वरूप

में केवल दो रह जाते हैं इसके पश्चात ऋषि मुनियों ने कहा है कि इनका कैसे निकास होता है? कैसे इतने समाहित हो जाते हैं? यह एक अनुभव का विषय रह जाता है। इसको अनुभव करते हैं और इसको अनुभव करके इसको हम मोक्ष कहते हैं या आनंद कहते हैं। इसको हम कुछ भी उच्चारण कर सकते हैं। ऋषि मुनि तो इसको आनन्द कहते चले आए हैं कि इसी में हम अपने दोनों स्वरूपों में प्रवेश करके इसी का आनन्द लेते रहते हैं। इस आनन्द की एक आयु प्रबल बन जाती है उस आयु में प्रवेश कर जाते हैं। तो प्रतिनिधियों का यह एक विचार निर्णय करने की एक धारा रही है। यह आज से नहीं परन्तु परम्परा से रही है। परम्परा से इसके ऊपर अनुसन्धान और अन्वेषण होते रहे हैं और होना चाहिए। सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक इसके ऊपर विचार विनिमय होता ही रहता है। होना चाहिए। हम मुनिवरों! देखो, अपनी आभा को इस आभा में परणित कर जाएँ, यही हमारा योगाभ्यास, यही आभा है इसको जानना और इसके ऊपर हमारा अनुसन्धान होना चाहिए।

आज मैं विचार देता हुआ दूर चला गया हूँ। विचार यह दे रहा था कि हमारे यहाँ वैशम्पायन, महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज का विचार मैंने बेटा! यह विस्तार रूप में नहीं केवल सूक्ष्म परिचय दिया है और सूक्ष्म परिचय क्या? सूक्ष्म परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है। बेटा! आज का विचार विनिमय क्या कि हम परम पिता परमात्मा की आभा का वर्णन करते हुए, यौगिकता के द्वारा, वेद रूपी अनुपम प्रकाश को अपनाते हुए, ज्ञान को अपनाते हुए अपने मानवत्व को जानते हुए इस मानव शरीर से यह जो संसार रूपी सागर है, जो सागर वाला मानो नाना प्रकार की तरंगें मानव को तरंगित कररही हैं इनसे हमें उपराम होना है। इसके लिए हमें आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश करना है। आत्मा को बेटा! अपने में अनुभव रूप में ही अपने में अपने पन को दृष्टिपात करना है। अपने आंतरिक जगत को जानना और बाह्य जगत दोनों का एक स्वरूप बनाना ही यौगिकता है। यह आज का विचार अब समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

१९ 14 04 1978 पुष्प 31 मान अपमान की धारा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र परमात्मा की गाथा गा रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है अथवा माता का वर्णन कर रहा है। उसी प्रकारयह जितना भी सर्वत्र ज्ञान विज्ञान हमें यह जगत दृष्टिपात आ रहा है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड का नियंता अथवा निर्माण करने वाला और ब्रह्मा बन करके उसमें हुत करने वाला मेरा परम देव कहलाता है।

आज मैं तुम्हें कोई विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। केवल कुछ परिचय देने के लिए चला आता हूँ और वह परिचय क्या है? बेटा! कई समय हो गए हैं वैशम्पायन की चर्चाएँ चल रही हैं। वहाँ महर्षि विभाण्डक और नाना ऋषियों की चर्चाएँ रहती हैं, अथवा उनका संसार के सम्बन्ध में, आत्मा के सम्बन्ध में, ब्रह्मा के सम्बन्ध में जो अपना अपना दृष्टिकोण है वह मुनि एकन्त स्थली पर विद्यमान हो करके उसको निर्णीत करते रहे हैं। क्योंकि यह संसार एक प्रकार की विचारशाला है। यहाँ प्रत्येक मानव विचारता रहता है अथवा चिन्तन करता रहता है और मनन करता रहता है। हमारे यहाँ जितने भी चिन्तन करने वाले विषय हैं त्रिवा धाराएँ हैं वह परम्परा से ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में रही हैं। मुझे वह काल भी स्मरण आता रहता है जब महर्षि मेधाकल और महर्षि श्वेतकेतु विचार विनिमय करते रहते थे, और अपने विचारों की उड़ान उड़ते रहते थे विचारों की नहीं, वह इस प्रकृति की तरंगों को भी जानते रहते थे। मन आभाओं में रमण करते रहते और यह विचारते थे कि यह जगत क्या है? यह कैसा अमूल्य जगत है मेरे प्रभु का? जिसमें प्रत्येक मानव अपना अनुभव करता रहता है, मनन करता रहता है। परन्तु ऐसा अनुभव का विषय रह जाता है कि मेरे प्यारे! अन्तरात्मा को जिसका अनुभव किया जाता है यह अनुभव का कौन सा विषय रह जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा, इससे पूर्व काल में कहा है कि मानव मोक्ष का मार्ग बनाता है और कैसे मोक्ष के निकट से संसार क्षेत्र में आता है। मैंने बहुत पुरातन काल में यह

विवेचनाएँ कीं आज भी हमें स्मरण आ रहा है। मानो हृदय ग्राही बनता हुआ जो शब्द है, हृदय ग्राही जो चिन्तन करने वाले अनुपम विषय हैं जिससे मानव को अपने अंतरात्मा का ज्ञान होता है।

कैसा विचित्र यह मानव है? जिस शरीर में रहता है उसके यन्त्रों को ही नहीं जानता। योगी जब यह कहा करते हैं कि इसमें समाधि की आवश्यकता है। इसमें नाना प्रकार के यन्त्र हैं। मेरी प्यारी माता कृतार्थ कहलाती है, बालक का निर्माण हो रहा है, बुद्धि का निर्माण, मनस्तत्व का निर्माण हो रहा है। परन्तु मेरी भोली माँ विंचत रहती है उसके ज्ञान से। कैसे परमाणु अपने अपने आसन पर गति करते हैं, कैसा विचित्र यह मानव जगत है। एक मेरी प्यारी माता के गर्भस्थल में महात्मा दधीचि और अश्विनी कुमार ने यह कहा है कि माता गर्भ स्थल में एक बिंदु का प्रवेश होने के पश्चात चतुर्थ माह में यह परमाणु अपने अपने स्थलों को प्राप्त होते हैं। अस्थियों के परमाणुओं से अस्थियों का निर्माण हुआ है, नेत्रों के परमाणुओं से नेत्रों का निर्माण हो रहा है, मस्तिष्क के परमाणुओं से मस्तिष्क का निर्माण हो रहा है, मतस्तत्व की आभा से मनों का निर्माण का वृत हो रहा है। कैसी मेरी प्यारी यह माँ है कि निर्माण हो रहा है, चतुर्थ माह में। परमाणु अपने अपने स्थलों पर जाना प्रारम्भ करते हैं। परन्तु कौन परमाणुओं को गति प्रदान कर रहा है? ऐसा कौन पुरुष है? जो माता के गर्भ में बिंदु के विभाजन कर रहा है। मेरे प्यारे! कैसा विभाजन हो रहा है? उससे मानव शरीर का निर्माण होता है, अष्ट चक्र नव द्वारों वाली इस अयोध्यापुरी का निर्माण हो रहा है।

मेरे प्यारे! कैसा अनुपम यह कार्य है। यह माता इतनी भोली है परन्तु निर्माण हो रहा है परन्तु माता को कोई ज्ञान नहीं होता है। कैसा अनुपम विचित्र जगत है, मानो कैसा एक खिलवाड़ हो रहा है। जबकि माता को जानना चाहिए। कौन परमाणुओं को ऐसी अनुपम गति दे रहा है कि परमाणु स्वतः विभाजन करप रहे हैं, विभक्त हो रहे हैं। विभक्त स्वतः ही कैसे होंगे यह नहीं जान पाते।

मेरे प्यारे! मानव के शरीर में कहीं आज्ञा चक्र बना हुआ है, कहीं सूचना केन्द्र बना हुआ है, इन्द्रियों के प्रत्येक विषय की आभा का निर्माण हो रहा है। कैसी यह अयोध्या पुरी

है जो संसार के ज्ञान और विज्ञान का एक क्षेत्र है, एक स्थली है उसमें एक आभा नियुक्त हो रही है। मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ।

मेरे प्यारे! देखो, एक बिन्दु भी निर्माण हो रहा है। अरबों खरबों परमाणु आ रहे हैं परन्तु आवागमन लगा हुआ है, आदान प्रदान हो रहा है। यह मानव का शरीर कैसा विचित्र है? हमारे ऋषियों मुनियों ने इस पर प्रत्येक अनुसन्धान किया है। बहुत ही विचारा है। परन्तु अन्तिम परिणाम उस विचार का केवल एक अनुभव ही रह जाता है। मुझे स्मरण है, मैंने चर्चाएँ पुरातन काल में भी प्रकट की हैं। वैशम्पायन ऋषि महाराज एक समय मध्य रात्रि में जागरूक हो गए, और यह विचार आने लगा, वेदमन्त्र स्मरण आने लगे। वेदमन्त्र की सूक्ति वह कह रही थी विश्वम् रिहि कृताम् लोकाम् हिरणायम् गत्य देवाः मनोवृत देवाः। कि यह जो मनसतत्व है यह विभाजन कर रहा है और प्राणतत्व का विभाजन हो रहा है। यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड में मानव विभाजन दृष्टिपात आ रहा है। जो दर्शनों के ऊपर मननशील प्राणी हैं, उन्हें यह जगत विभक्त होता दृष्टिपात आता है, और एक विभक्त करने वाला है। दो ही वस्तु दृष्टिपात आती हैं। इन पर परम्परा से ही ऋषि मुनियों में एक विचारधारा प्रारम्भ रही है। आज मैं नवीन वाक्य प्रकट नहीं कर रहा हूँ, यदि आदि ऋषि मुनियों का भी मन्तव्य रहा है।

मुझे स्मरण आता रहता है ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा थे वह महर्षि आंगिरस मुनि महाराज से विचार विनिमय करते रहते थे और इस सम्बन्ध में बहुत विचारा गया। पुत्रों! में महर्षि वैशम्पायन के गृह में जा रहा था। महर्षि वैशम्पायन चिन्तन करने लगे कि यह क्या है? उन्हें द्वितीय मन्त्र स्मरण आ गया रथं दिव्यां लोकं हिरणायम् रथक प्रति देवा। वेद का ऋषि कहता है कि यह तो अन्तरिक्ष में रथ जा रहा है। यह कैसा रथ बना हुआ है, जो द्यु लोक को जा रहा है? यह भी वेद का मन्त्र उन्हें स्मरण आ गया। परन्तु हम पहिले वाक्य पर कुछ विचार कर लें। हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया है कि जब मानव अपने ऊपर नियन्त्रण करता है और यह विचारता है कि मैं मोक्ष में जाना चाहता हूँ, यह चिन्तन करता है कि यह जो दुःखद संसार है, मान अपमान वाला जो जगत है, मैं इससे उपराम होना चाहता हूँ। उपराम होने के लिए मुझे कोई न कोई वस्तु चाहिए।

तो सबसे प्रथम वह यह विचारता है कि तेरे द्वारा वह कौन सी वस्तु है? जो तुझे इस संसार में बारम्बार आवागमन के क्षेत्र में ला रही है। वह मन में यह विचारता है कि मेरे हृदय में एक वस्तु है ऐसी मान और अपमान की दो धाराएँ हैं। दो ही धाराएँ हैं जो मानव को विचलित कर देती हैं। कहीं महान से महान योगेश्वर एक योग माया के आभा में परणित हो जाते हैं, और इसमें ऐसे गड्ढे में चले जाते हैं कि अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिपात होता है।

मेरे प्यारे! यह मान अपमान कहाँ से उत्पन्न होता है मान अपमान की जो ममतव है वह तृष्णा कहलाती है। यह जो तृष्णा है यह ऋषि मुनियों ने इसके ऊपर गम्भीरता से विचार विनिमय किया। इसी तृष्णा से काम, क्रोध, मद, लोभ मोह इत्यादियों का जन्म होता है। तृष्णा जब बलवती बन जाती है मानव की तो इस तृष्णा में एक भयंकर अग्नि होती है और वह जो अग्नि है, वह मानव के पुण्यों को निगलती रहती है, पापों को त्यागती रहती है। वह जो एक ममता है जिसे तृष्णा कहते हैं तृष्णा कहते हैं अति कामना का बलवती हो जाना। ऋषि मुनि यह विचारने लगे कि अब मुझे वह काल स्मरण आ गया है, जिस काल में नाना ऋषि विद्यमान हो करके आत्म चिन्तन करते रहे हैं। उस समय जब वैशम्पायन ऋषि इस चिन्तन में लगे तो उनके द्वारा महर्षि विभाण्डक, महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिल्क, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेवक, महर्षि सोमकैतु, महर्षि शादीकृत देवा, मुद्गल, कोड़ली, विश्वेशम् ऋषि महाराज, विश्वश्रवा उद्दालक, सोमकैतु आदि नाना ऋषियों का एक समूह विद्यमान हो गया नाना गोत्रों के ऋषि थे। एकत्रित हो करके यह चिन्तन करने लगे कि मानव अपने आत्मा को उत्थान कैसे कर सकता है? इस सागर से कैसे उपरामता को प्राप्त हो सकता है?

मेरे पुत्रो! मुझे वह काल स्मरण आता रहा है कि ऋषि विश्वश्रवा ने यह विचारा कि यह जो मानव का मन है, इसको संयम में कैसे बनाया जाए। क्योंकि यह जो मन है यह विभाजन करता रहता है। यह प्राण शक्ति का विभाजन करता रहता है। जिससे मानव क्रियाशील बना रहता है। उसका विभाजन करता रहता है, और उसको विभाजन करने वाला यह मन कहता है। इस मन को कैसे पवित्र किया जाए। क्योंकि मन ही

जो शरीर रूपी रथ है इस रथ को नियन्त्रणा में लाने वाला यह मन कहलाता है। इस मन सारथी को हम अब कैसे उज्ज्वल बनाएँ? कैसे इसको आभा में युक्त बनाने वाले बनें। क्योंकि यह वेग से इन्द्रियों को स्थिर किए रहता है! ऋषि मुनियों ने यह विचारा। इसके ऊपर किसी ने कहा कि इसके ऊपर चिन्तन होना चाहिए। किसी ने कहा चिन्तन नहीं मनन होना चाहिए, किन्हीं ने कहा मनन नहीं याग होना चाहिए। एक ने कहा इस मन को स्थिर करने के लिए स्वाध्याय होना चाहिए। दूसरे ने कहा कि मन को पवित्र बनाने के लिए ब्रह्मचर्य होना चाहिए। अपना अपना मन्तव्य प्रकट किया। इतने में ब्रह्मचारी नचिकैता उपस्थित हुए। क्योंकि उनके पिता विश्वश्रवा वहाँ सभा में विद्यमान थे। नचिकैता ने उपस्थित हो करके कहा कि ब्रह्मवेत्ताओ यह ब्रह्मवेत्ताओं का समुद्र है। मेरे विचार में यहाँ मैं भी कुछ अपनी टिप्पणी देना चाहता हूँ। ऋषियों ने कहा हे नचिकेता! तुम टिप्पणियाँ क्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! जो यह मन है यह उस काल में वश में आता है जब आन्तरिक चित्त को बाह्य चित्त में प्रवेश करा दिया जाता है। यह वाक्य कहकर वे शान्त हो गए।

मेरे प्यारे! वहाँ माता गार्गी भी उपस्थित थीं। वे कहती हैं कि मैं भी अपना कुछ मन्तव्य देना चाहती हूँ। उन्होंने कहा बोलो देवी! तुम ब्रह्मवादी भी हो तुम क्या चाहती हो? उन्होंने कहा कि मेरे विचार में आता है कि इसका उपाय यदि जानना है मन को ऊँचा बनाने के लिए तो यहाँ महर्षि श्रुतिकैतु ऋषि महाराज विद्यमान हैं जिनका निरस गोत्र में जन्म हुआ है वे उसका निर्णय दे सकेंगे। वे इतना कहकर शान्त हो गईं।

महर्षि श्रुतिकैतु ऋषि महाराज उपस्थित हो गए और उपस्थित हो करके उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मवेत्ताओ! मैं इतना ब्रह्मवेत्ता तो नहीं हूँ, जितना गार्गी ने मुझे ऊर्ध्व बनाया है। मैंने जो सूक्ष्म सा जाना है वह निर्णय मैं अवश्य दे सकता हूँ। इस मन को यदि पवित्र बनाना है तो मन को पवित्र बनाने के लिए मानव को आहार की आवश्यकता है। आहार पवित्र होना चाहिए। क्योंकि मन की जो तरंगें उत्पन्न होती हैं वह आहार से होती हैं। आहार से व्यवहार बनता है, और व्यवहार से चिन्तन बनता है। चिन्तन से मनन होता है। मनन से ब्रह्मचारी रहता है। ब्रह्मचर्य से वह ब्राह्मण बनता है। ब्राह्मण बनने के पश्चात्

वह ब्रह्मवेत्ता बन करके और परमात्मा के प्रकाश रूपी राष्ट्र में चला जाता है। जब उन्होंने यह निर्णय दिया तो ब्रह्मवेत्ता इस बात को स्वीकार कर गए।
उन्होंने कहा कि अन्न अब कैसा होना चाहिए? पुत्रो! मुझे स्मरण है कुछ ऋषि ऐसे होते हैं, ऐसे मननशील होते हैं जिनके मनन करने की धाराएँ बड़ी विचित्र होती हैं। ऋषियों ने इस मन को उज्वल बनाने के लिए उस अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया। जिस अन्न पर किसी भी प्राणी का अधिकार नहीं था। क्योंकि वह अन्ना कहलाता है। अन्न की जितनी वस्तु पान की जाती हैं। उस सर्वत्र का नाम अन्ना कहलाता है। हमारे ऋषियों ने शिल अन्न को ग्रहण किया और अन्न को ग्रहण करके एकान्त स्थली में चिन्तन करते रहे। चिन्तन करने के पश्चात उन्होंने मन को पवित्र किया। जब मन पवित्र होने लगा तो जो मानव की मानसिक दशा थी जिससे यह मानव व्याकुल हो रहा था, मानो यह तृष्णा के कारण व्याकुल हो रहा था तो सबसे प्रथम मान अपमान पर संयम होने लगा। जब मान अपमान पर संयम होने लगा तो जो तृष्णा बलवती हो रही थी मान अपमान के कारण उसमें सूक्ष्मता आने लगी, काम की उत्तेजना समाप्त होने लगी, ब्रह्म की चरी उसे दृष्टिपात आने लगी।
ब्रह्म की चरी क्या है? जितना भी यह प्रकृतिवाद है, लोक लोकान्तरवाद है यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसे एक सूत्र में पिरोया हुआ दृष्टिपात आता है। बेटा! एक ही सूत्र है नाना प्रकार के लोक लोकान्तर हैं तुम्हें प्रतीत हो गया होगा मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि एक एक आकाश गंगा के सूर्य की मानव गणना नहीं कर सका और वह एक सूत्र में पिरोया हुआ जगत है। यह प्राणत्व में पिरोया हुआ जगत दृष्टिपात होने लगा। पुत्रो! तृष्णा के समाप्त होने पर इन्द्रियों का जो विषय है मानो रूप, रस, गन्ध इत्यादि इनका वह साकल्य बनाने लगा। वह ऋषि इनकी सामग्री बनाने लगा और विचारों की मानों ज्ञान रूपी जो धाराएँ हैं उनकी समिधा बनाकर हृदय रूपी यज्ञशाला में याग करने लगा। कैसा प्रिय याग करता है महापुरुष। इन्द्रियों का जो विषय है रूप है, रस है, गन्ध है, शब्द है सबको साकल्य बना करके और ज्ञान रूपी अग्नि चेता करके उसमें हुत कर रहा है। आत्मा यज्ञमान बन करके यज्ञशाला में ब्रह्म

को उद्गाता, ब्रह्म उसमें आभा प्रकट करता। उस भयंकर अग्नि को प्रदीप्त करता है। जिस अग्नि के प्रदीप्त होने के पश्चात अन्तरिक्ष में जो नाना प्रकार के शब्दों के साथ चित्र भ्रमण करते रहते हैं, उनको वह दृष्टिपात करने लगता है।
मुझे स्मरण आता रहता है, पुत्रो! मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि एक समय कोंडली ब्रह्मचारी अश्वेत ऋषि के द्वार पर पहुँचे। अश्वेतम ऋषि क्रिया कर रहे थे योगाभ्यास कर रहे थे। उनके हृदय पटल पर अन्तरिक्ष में जो उनके पिता महापिताओं के जो शब्दों के साथ चित्र गति कर रहे थे। वे उनके हृदय पटल पर उन्हें दृष्टिपात होने लगे। पुत्रो! आज मैं तुम्हें बहुत गम्भीर क्षेत्र में ले गया हूँ। आज गम्भीर क्षेत्र में तो ले जाना नहीं था, परन्तु मैं इसका परिचय देने आया हूँ कि अपनी आभा में मानव कितना परणित रहता है।
आओ पुत्रो! मैं कहाँ चला गया। विचार यह दे रहा था कि हमारे ऋषि मुनियों ने इसको एक याग माना है। आत्म याग करने लगा और जब इन्द्रियों के विषय याज्ञिक बन गए तो अब पाँच प्राण और रह गए। मानो नाग देवदत्त धनंजय कर्म और कृकर पाँच उप प्राण कहलाते हैं जो इन्द्रियों को बाह्य जगत में ले जाते हैं। इन पाँचों उप प्राणों का एक समूह बन गया। अब पाँचों उप प्राण बाह्य जगतब्रह्मचित्त में योगी ले जाता है। यह ब्रह्माण्ड जो लोक लोकान्तरों का है वैज्ञानिक जो भौतिक विज्ञानवेत्ता है उसे तीन सौ आकाश गंगाएँ दृष्टिपात आती रही हैं परन्तु योगी को अरबों खरबों आकाश गंगाएँ दृष्टिपात आती हैं। एक आकाश गंगा जो लोकों की गणना करने लगे तो जब एक महर्षि जब एक लोकों की गणना करने लगे क्या? एक ही आकाश गंगा के लोक में ध्रुव और सूर्यों की गणना करने लगा तो मौन हो गया। क्योंकि एक ही आकाश गंगा में जब अरबों खरबों सूर्य ही सूर्य दृष्टिपात आते हैं, ऐसी ऐसी आकाश गंगाएँ उन महापुरुषों ने समाधि के द्वारा प्राणों को एकाग्र करने के द्वारा देखी। इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र अरबों खरबों आकाश गंगाएँ उन्हें दृष्टिपात आती हैं। यह तो बेटा! प्रभु का ब्रह्माण्ड है, प्रभु का अनुपम विज्ञान है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के नाना वैज्ञानिक हुए हैं परन्तु

इस विज्ञान को सीमा बद्ध नहीं कर सका। परमात्मा का विज्ञान सीमा से रहितहै।

आओ पुत्रो! मैं कहाँ चला गया हूँ? वाक्य यह प्रारम्भ हो रहा था कि हमारे यहाँ ऋषि मुनि अपने को कैसे ऊर्ध्व बनाते हैं। उसके पश्चात बेटा! पाँच प्राण रह जाते हैं। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ये पाँच प्राण हैं। जब इन्द्रियाँ एक सूत्र में आ जाती हैं तो केवल प्राणत्व रहता है। ज्ञान और प्रयत्न अन्तिम धारा इस आत्मा के क्षेत्र में रह जाती हैं। प्रयत्न में प्राणत्व और ज्ञान में मनस्तत्व माना जाता है। मन प्रकृति का प्रतिनिधि है और यह जो प्राण है यह ब्रह्म का प्रतिनिधि है। आगे जो मानव यह कहता है कि जब यह एक सूत्र में चले जाते हैं।

जब मन और प्राण एक सूत्र में आ गए हैं। तो इसको मोक्ष की संज्ञा कहते हैं। ऋषि मुनि सभी ने इसको मोक्ष माना है। परन्तु यह मोक्ष है अथवा नहीं है यह सब अनुभव का विषय रह जाता है। यहाँ वाणी आगे कार्य नहीं कर पाती। वाणी वहाँ तक कार्य करती हैं जहाँ तक प्रकृति आंकुचन हो करके एक ही सूत्र में रह जाते हैं। वहाँ तक बुद्धि और मानव की वाणी निर्णय करती है। इस वाणी का जो निकास हुआ है वह प्रकृति से हुआ है। वाणी का निकास सम्बन्ध से हुआ है और ब्रह्म केवल शब्द ही शब्द रह जाता है। उस शब्द का वर्णन करना अथवा कि वह शब्द कैसा है? शब्द अणु हैं, परमाणु है, विभु है, इसका अभी तक कोई ऋषि वर्णन नहीं कर सका है। समाधि के द्वारा ऋषियों ने प्रकृतिवाद का वर्णन किया है। ब्रह्मवाद का वर्णन नहीं कर सका है। जो कर रहा है वाणी तक ही सीमित रहता है। जहाँ तक वाणी ब्रह्म का वर्णन करती है। उसकी रचना का वर्णन कर रही है। उसकी रचना कितनी विचित्र है? अभी अभी मैंने तुम्हें वर्णन कराया कि एक आकाश गंगा में अरबों खरबों सूर्य दृष्टिपात आने लगते हैं। मानो गणना समाप्त हो जाती है। ऐसा जो ब्रह्माण्ड है, ऐसे जो आकाश गंगाएँ हैं बेटा! यह उसकी रचना है। वाणी यहाँ तक ही वर्णन कर सकती है इससे आगे वह मौन हो जाती है। यह है बेटा! आज का हमारा विचार। अब शेष चर्चाएँ कल होंगी।

अब वेदों का पाठ होगा।

१७ 20 05 1978 पुष्प 33 भैतिक तथा आध्यातित्मक विज्ञान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, कुछ मनोहर वेद मन्त्रें का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रें का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा मनीषि है अथवा कवि है। यह ब्रह्माण्ड उसका काव्य माना गया है। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। अथवा उसको निर्णीत आभा में परणित कर रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता का निर्णय दे रहा है अथवा माता की गाथा गा रहा है। इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है अथवा उसका वर्णन कर रहा है। वह ब्रह्माण्ड को अनुपम रचना के ऊपर नाना प्रकार का अपना मन्तव्य दे रहा है। जिसके ऊपर प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्याएं, प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल विचार विनिमय करता चला आया है।

उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का प्रायः वर्णन होता रहा है। वेद का एक एक मन्त्र हमें यह वर्णन करा रहा है। अपना निर्णय दे रहा है कि प्रकृति का एक एक परमाणु मानो विज्ञान से गुथा हुआ है। विज्ञानमयी धारा उसकी मौलिकता मानी जाती है। क्योंकि विज्ञान और ज्ञान दोनों एक दूसरे की आभा में निहित रहते हैं, और अपना अपना निर्णय देते रहते हैं। हमारे ऋषि मुनि एक एक वेद के मन्त्र के ऊपर नाना प्रकार का विचार विनिमय और उनकी अनुसन्धान करने की प्रवृत्ति बनी हुई है। मेरे प्यारे! वे उसके ऊपर मनन करते हैं, चिन्तन करते रहे हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि वैशम्पायन का जीवन महर्षि वैशम्पायन जब विचार विनिमय करते थे, तो रात्रि समाप्त हो गई दिवस आ गया, दिवस समाप्त हो गया। परन्तु वे ऐसे गम्भीर सागर में चले जाते, वेद के मन्त्र के गम्भीर गर्भ में परणित हो जाते, जहाँ उन्हें संसार का और अपना ज्ञान नहीं रहता एक समय बेटा! महर्षि वैशम्पायन,

महर्षि विभाण्डक, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी केतु और सुषुप्त ऋषि इत्यादि उनके आश्रम में विद्यमान थे। महर्षि मध्य रात्रि से एक मन्त्र के ऊपर विचार विनिमय कर रहे थे, और वह नित्य प्रति उस वेद की आभा पर उसके अर्थ पर विचार विनिमय पर संलग्न हैं। वे अन्तर्मुखी हो गए थे। परन्तु महर्षि विभाण्डक मुनि बोले, ऋषिवर! न आप आसन को ही त्याग हैं। आप कौन से गम्भीर क्षेत्र में चले गए हैं? महर्षि वैशम्पायन बोले कि मेरे समीप एक वेद का मन्त्र आ रहा है, और वह वेद का मन्त्र यह कहता है कि यह जो संसार दुःखित हो रहा है, प्रत्येक मानव इस आभा में लगा हुआ है प्रत्येक मानव इस चिन्तन में लगा हुआ है कि मुझे परम शान्ति की स्थापना हो जाए। परन्तु शान्ति कैसे स्थापित हो? परन्तु कहीं पत्नी चली जाती है, व्यापार कष्ट अन्धकार के गहरे सागर में चला जाता है। कहीं पुत्र चला जाता है तो गम्भीर अन्धकार में चला जाता है। शान्ति और आनन्द के स्थान में एक अपार कष्ट दायक ममता मां की आभा हमारे समीप आ जाती है। परन्तु हम ऐसे अन्धकार में परणित हो जाते हैं जहाँ मानव अपने तन को भी शान्त कर देता है। तो महर्षि वैशम्पायन यह विचार विनिमय कर रहे थे कि यह क्या है? यह कौन सा ऐसा नृत्य है जिसमें यह ब्रह्माण्ड सर्वत्र नृत्य कर रहा है।

जब इसके ऊपर विचार विनिमय होने लगा तो महर्षि वैशम्पायन से विभाण्डक मुनि बोले, ऋषिवर! तुम्हारा इसमें क्या मन्तव्य है? वेद का मन्त्र क्या कहता है? उन्होंने कहा कि वेद का मन्त्र तो यह कहता है, एक एक वेद के मन्त्र के आधार पर मन्त्रण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ मानव को वैज्ञानिक बनना चाहिए। जहाँ ज्ञानी बनता है जहाँ आत्मीयता में रमण करता है वहाँ मानव को वैज्ञानिक बनना चाहिए। वैज्ञानिक दो प्रकार का बनना चाहिए। एक तरंगित वैज्ञानिक, एक आत्सिक वैज्ञानिक। दोनों प्रकार के विज्ञान में मानव को अपने संलग्न रहना चाहिए। विचारना चाहिए कि हमारा विज्ञान क्या कहता है? हमारा ज्ञान क्या कहता है? हमारा विवेक क्या कहता है? और विवेक के साथ हमारी जो मानो स्वकीय प्रतिभा है वह क्या कहती है? तो एक एक शब्द के ऊपर ऋषि विचार विनिमय करने लगे। महर्षि वैषम्पायन कहते हैं कि मेरे विचार में तो यह आता है कि मानव जब विज्ञान के क्षेत्र में जाता है, तो अपने शब्छ, अपनी आभाएं

वायु मण्डल में अग्नि की धाराओं पर, अग्नि की तरंगों पर उसको चित्रहार करता रहता है। मानो चित्रण करता रहता है आगे क्या कहने लगा ऋषि? उसके पश्चात आत्मीयता के लिए क्या कहता है? आत्मीयता वाला वह प्राणी होता है, न उसके द्वारा ममता होती है, न मोह होता है, न क्रोध की मात्र होती है, न संसार की कामना होती है। परन्तु कोई भी वस्तु नहीं होती तो आत्मिक विज्ञान उसे कहते हैं। आत्मीय विज्ञान में प्रवेश करता है।

परन्तु यह जो प्रकृति का विज्ञान है यह क्या है? यह प्रकृति का विज्ञान मानो जैसे शब्द उत्पन्न होता है शब्द को वह धाराओं में दृष्टिपात करने लगता है। परन्तु जैसे मानव शब्दों की आभा उत्पन्न होने लगती है, श्वासों की गतियां वायु मण्डल में प्रवेश कर जाती हैं और वह श्वास की गति कितने प्रकार की हैं? मेरे प्यारे! मोह में जो श्वास आता है उसकी गति विलक्षण और ही प्रकार की मानी जाती है। परन्तु वही श्वास की गति यदि क्रोध में आती है तो उसमें विषांकुर होते रहते हैं परन्तु वही श्वास की गति यदि कामना के क्षेत्र में आती है तो वहाँ एक एक परमाणु श्वास का कितना अन्धकार में गति कर रहा है। इसी प्रकार जब मानव के द्वारा आभ! वृत ज्ञान का क्षेत्र होता है प्रीतम की स्थली पर विद्यमान है ज्ञान के सागर में है, गम्भीर अध्ययन कर रहा है जब मानव को श्वास आता है तो स्वच्छ और निर्मल होता है।

परन्तु इसी प्रकार कितने प्रकार हैं पुत्रे! एक एक वस्तु के कितने ही प्रकार हैं? उन्हीं श्वासों की गति में मानो रजो गुणी, तमेगुणी गतियां हैं, तमोगुणी परमाणु हैं, रजोगुणी तरंगें हैं सतोगुणी तरंगें हैं। इसी प्रकार रज में भी अनन्त प्रकार के भेदन माने गए हैं। वे जो नाना प्रकार के भेदन हैं वह वायु मण्डल को निर्मित कर रहे हैं। वायु मण्डल को बना रहे हैं। मानो गृहपति का निर्माण कर रहा है। उसी श्वासों की गति से उसी मानो आभा से ऋषि विचारने लगा। वैशम्पायन यह कहते हैं कि एक एक वस्तु का वित्रहार होना चाहिए। मानो यन्त्र होने चाहिए।

मुनिवरों! ऋषि वैषम्पायन ऋषि महाराज के पिता थे स्वर्णकेतु। स्वर्णकेतु ऋषि महाराज कृतिकी ददददीय गोत्र कहलाते थे। वे बोले कि मेरे पितर ऐसा करते थे कि वे एक

समय इन वाक्यों पर चिन्तन करने लगे। उन्होंने मानो यज्ञ प्रारम्भ किया। जब यज्ञ प्रारम्भ किया तो उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया। उस एक ही यन्त्र में चित्रवली, स्वांगति त्रिकेतु यन्त्र, कहते थे। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि जो मानव जिस प्रकार का श्वास लेता था उसी प्रकार का यन्त्र में चित्र बन जाता था। मानो जिसस प्रकार का वह रजोगुणी ममता का श्वास ले रहा है तो जिसके प्रति वह ममता कर रहा है, जिसके प्रति वह मोह कर रहा है वह आत्मा चला जाता है। परन्तु चित्त के साथ वह माता के अन्तःकरण में प्रवेश कर जाता है। परन्तु वह जो पुत्र चला गया है या पुत्री चली गई है, पत्नी चली गई है, मानो संसार का कोई भी प्राणी ममता जिसके साथ लगी हुई है, जिस प्रकार का वह श्वास लेता था उसी प्रकार का मेरे प्यारे! चित्र उस यन्त्र में आता हुआ ऋषि को दृष्टिपात आने लगा। परन्तु उसका किसी काल में एक पुत्र समाप्त हो गया मेरे पितर का। परन्तु उसका चित्र भी उसे दृष्टिपात हुआ, और उस चित्र ने यह संकेत दिया कि वह चित्र कहता है चित्र मेरा बना हुआ है। तुम ममता किसलिए कर रहे हो? तुम्हारी ममता का मूल क्या है संसार में? मेरे प्यारे! ऋषि कहता है कि तुम इस समय सतोगुणी श्वास लो। सतोगुणी मानो चित्र आएंगे। तो वह उस समय मुनिवरों! दस यन्त्र में ममता का नाना प्रकार का श्वास आया। ममता उसे ऐसे घेरे हुए थी मानो प्रकाश उसके समीप नहीं आ रहा था। मेरे प्यारे! देखो, जब क्रोध में उन्होंने श्वास की गति को जाना तो वह भी अन्धकार और घनिष्ठ अन्धकार में ही थी। मानो इसी प्रकार वेद का ऋषि कहता है कि मेरे पितर ने यह वर्णन कराया है मुझे कि आगे मैं श्वास सतोगुणी लेने लगा। अध्ययन करने लगा। दर्शनों का अध्ययन प्रारम्भ है। उसमें जो श्वास ले रहा था वह जीवाणु वह परमाणु इतने सतोगुणी कि वह द्यु मण्डल को आभा में वर्णित कर रहे थे, मानो पवित्र बना रहे थे। इसी प्रकार मैं जब योगाभ्यास करने लगा, योगाभ्यास का जो श्वास गति कर रहा था वह सत्मय और ऋतमय स्वरूप को लांघता हुआ ब्रह्म के समीप जा रहा था। वह ब्रह्म की आभा में जाता हुआ ऋषि यन्त्र में दृष्टिपात होने लगा। वह चेतना में लिप्त होता हुआ ऋषि को दृष्टिपात होने लगा।

हे ऋषिवर! मेरे विचार में तो यह आता है कि मानव की आभा में एक एक चित्रण इस

प्रकार का होना चाहिए, जिस चित्रणा के साथ में चित्रवली के साथ में एक मानव का निधन हो गया है। निधन क्या वह चला गया है। परन्तु उसके चित्र वायु मण्डल में परणित हो रहे हैं। जब मानव को स्वप्न आता है तो स्वप्न् के क्षेत्र में मेरे प्यारे! करोड़ों जन्मों के स्वप्न भी प्राणी को आते हैं। क्यों आते हैं? इसलिए आते हैं क्योंकि वे जो जन्म जन्मान्तरों के चित्र वायुमण्डल में गति कर रहे हैं वह मानव के मस्तिष्क के साथ में उनकी सुगंठितता रहती है और वह परमाणु भी चित्र बनकर के अंकुर बनकर के मानव के समीप आ सकते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने यह वर्णन कराया कि वेदमन्त्र यह कहता है कि हम किसी काल में पितर लोकों को प्राप्त होते हैं। मानो देखो, यही आभा में गति करने वाला एक यन्त्र है।

उस यन्त्र को लेकर के मेरे प्यारे! यज्ञमान याग करता है। तो इसीलिए ऋषि मुनियों ने सृष्टि के प्रारम्भ में मेरे पुत्रे! देखो, एक रथ का निर्माण किया और वह रथ क्या है? वह यज्ञशाला है। उस यज्ञशाला रूपी रथ पर यज्ञमान, होता, अध्वर्यु उद्गाता, ब्रह्मा विद्यमान होकर द्यु लोक को जाते हैं। मानो वे वायु मण्डल को आभायित करते रहते हैं। उसी के द्वारा माता पिता यज्ञ करते हैं। तो मुनिवरों! हमें यह विचारना है कि कितना वेदमन्त्र गाथा गा रहा है। इस ब्रह्माण्ड की एक एक प्रकृति की गाथा गा रहा है। ज्ञान और विज्ञान की तरंगों में मानव परणित हो जाता है। जिन तरंगों को वह अपने में तरंगित करता रहता है। अपने को आभायित करता रहता है। अपने ही मानवीय दर्शन को दर्शाता रहता है।

परन्तु देखो, वैशम्पायन ऋषि कहते हैं, हे महर्षि विभाण्डक! हे ऋषिवरो! मेरे विचार में आता है कि मेरे पितर का जो ज्ञान था वह विशाल था। मेरे वे सत्रहवें महापिता कहलाते थे। जिनका मैं वर्णन कर रहा हूँ वे यन्त्रवलियों का निर्माण करते रहते थे। किसके द्वारा करते? एक एक शब्द के ऊपर मानव का ज्ञान होना चाहिए। क्योंकि मेरे पितर ने बाह्य जगत् में, जब बाह्य तरंगों में, अग्नि की धाराओं में और उनकी गति को जाना तो उसके पश्चात् मेरे पिता आध्यात्मिकवाद में चले गए। आध्यात्मिकवाद में जब उन्होंने अपने चित्त मण्डल को दृष्टिपात किया। योगाभ्यास योग उसी को कहते हैं जहाँ योगी के आन्तरिक

चित्त और बाह्यचित्त दोनों का मिलान हो जाता है। दोनों का समन्वय हो जाए उसी का नाम यौगिकता कहलाता है। योगश्चः। आत्मा कहते हैं। मेरे प्यारे! वह आत्मा योगी वर्ग का तो होता है। तो विचार यह मेरे पुत्रे! देखो, चित्त का मण्डल और बाह्य चित्त कैसे एकाग्र होते हैं? दोनों का एक रूप कैसे बनता है? यह मेरे प्यारे! मैं सूक्ष्म सी चर्चा तुम्हें करूंगा। परिचय दूंगा। केवल व्याख्या तो नहीं कर सकूंगा।

वह परिचय यह है कि जिस समय मानव अपने चित्त की वृत्तियों को निरोध करता है। बाह्य जगत् को अपने में सबसे प्रथम जानता है। यह विज्ञान क्या है? जो मैंने अभी अभी वर्णन किया है। एक एक श्वास की गति के ऊपर विज्ञान होना चाहिए। अग्नि की तरंगों पर यह जगत् चला जाता है। जब यह मानव अपने को दृष्टिपात करने लगता है मानो सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने को पञ्चीकरण में ले जाता है। पञ्चमहाभूतों का राष्ट्रीयकरण पञ्चीकरण हो जाता है। आत्मीकरण कैसे होता है? उसके गुणों का ज्ञान होना चाहिए। मानो पृथ्वी का ज्ञान, जल का ज्ञान, अग्नि का ज्ञान, वायु का ज्ञान और अन्तरिक्ष का ज्ञान यह पञ्च महाभूतों का हमारा ेसमीप ज्ञान होना चाहिए। इनका क्या क्या कार्य है? क्या क्या इस संसार में क्रीड़ा और कैसे हो रही हैं? इसी प्रकार जो इसमें रहने वाले हमारे शब्द हैं, हमारी क्रिया हैं, हमारा जितना भी क्रिया कलाप है वह इसमें जो क्रीड़ा करता है, उसको यन्त्रें के द्वारा दृष्टिपात करता है। दृष्टिपात करके इतना व्यापक हमारा क्रिया कलाप बन जाए, हम इसमें इतनी दूर चले जाएं उसके पश्चात् हम अपने चित्त की जो प्रवृत्ति हैं जो चित्त हैं चित्त नाम के जहाँ अकुर विराजमान रहते हैं। इन अंकुरों को हमने उपजाया है। यह अंकुर हमारे अन्तःकरण में विद्यमान हैं चाहे ये इस जन्म के हों, पूर्व जन्म के हों, करोड़ों जन्म के संस्कार क्यों न हों। परन्तु वे बीज रूप में जहाँ रहते हैं, उसका नाम चित्त कहलाता है। वह जो चित्त नामक स्थान है उस चित्त की प्रवृत्तियों को रोको। यौगिक प्राण और मन दोनों का निधान करता है अथवा दोनों को समकालीन बनाता है और दोनों का मिलान करता है। प्राण, अपान, उदान समान, व्यान, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म कृकर और पाञ्चाल मुनिवरों! देखो, इन दस प्राणों को एक सूत्र में पिरो देता है। और वह पिरोता कैसे है? मुनिवरों! देखो, मन और प्राण दोनों

का मिलान, दोनों का तारतम्य लग जाता है। मानो वह निद्रा में हो, जागरूक में हो, एकान्तस्थली में जब वह ध्यानाव स्थित हो जाता है तो चित्त की प्रवृत्तियां स्वतः एकाग्र होनी, अपने अपने अंकुर जागरूक होकर के, उत्पन्न होकर के मेरे प्यारे! देखो, वह जो चित्त नाम का स्थान है, वहाँ पुष्प उत्पन्न होने लगते हैं और उस वाग वाटिका को मेरे प्यारे! मन और प्राण एक सूत्र में होकर के वह उसके क्षेत्र में आकर के मुनिवरों! अंकुर उसके समीप आ जाते हैं जहाँ वह बाह्य जगत् को योगी अपनी अन्तर्रात्मा में दृष्टिपात करने लगा। वह चित्त की पुष्पांजली को अपने में दृष्टिपात करता हुआऋ मेरे प्यारे! इसी का आगे तारतम्य लगाकर यह अपने में उस ब्रह्माण्ड को बाह्य जगत् में दृष्टिपात करता है। अपने में दृष्टिपात, करके और वह जो चित्त नाम का स्थान है इस जगत् को जो बाह्य चित्त है वह आन्तरिक चित्त में प्रवेश करके दोनों चित्तों का मिलान हो जाता है। अब बेटा! देखो, योगी यह जानने लगता है कि अमुक मानव शरीरान्त हो गया है। शरीर की क्या गति हुई उन परमाणुओं की। परन्तु चित्त कहाँ गए? वह चित्त मानो चित्त के मण्डल में चले गए। माता अपने पुत्र को दृष्टिपात कर सकती है। पिता अपने पुत्र को दृष्टिपात कर सकता है। अन्तर्रात्मा में अपने ही मानवीय दर्शन में बेटा! उसका दिग्दर्शन कर रहा है। तो मेरे पुत्रे देखो, कौन दर्शन कर रहा है? योगी ही तो कर रहा है। परन्तु योग के द्वारा ममता का ममतव रहता है। मानो दोनों चित्तों का मिलान हो जाता है। मन और प्राण अपनी स्थिति में चले गए। बेटा! गुणी से कदापि गुण पृथक नहीं होता। वह आत्मा परमब्रीही परमोजयः जिसे कहते हैं वह चेतना में रत्त रहने लगता है। आनन्द को ग्रहण करने लगता है। बेटा! परम आनन्द उसे ही कहा जाता है।

आओ मेरे प्यारे! महर्षि वैषम्पायन ऋषि महाराज का कितना गम्भीर अध्ययन है। एक एक मन्त्र को विचारने से ऐसा प्रतीत होता है कि वह इतना विशाल विज्ञान है। इतनी विशालता है उसमें कि वह जिससे मानव अपने रथ का निर्माण करता है। आओ मेरे पुत्रे! आज का विचार यह क्या कहता है? मैं व्याख्याता नहीं हूँ। मैं बुद्धिमान् नहीं हूँ। केवल सूक्ष्म चर्चा करने आया हूँ। केवल परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या है? मेरे प्यारे! इस संसार में न तो ममता ही मानव के साथ जाती है, न क्रोध ही

साथ जाता है। न यह संसार का वित्त जाता है। केवल जो इसके चित्त में अंकुर विद्यमान हैं वह इसके साथ रहते हैं। चित्त का जिसने बाह्य जगत् के चित्त से मिलान कर लिया वह सर्व ज्ञानी बन गया। प्रभु को प्राप्त हो गया और जो मुनिवरों! देखो, आन्तरिक चित्त में संस्कार को स्थिर कर रहा है, इन संस्कारों को उपार्जन कर रहा है, और उस चित्त में मिलान कर लिया वह सर्व ज्ञानी बन गया। प्रभु को प्राप्त हो गया और जो मुनिवरों! देखो, आन्तरिक चित्त में संस्कार को स्थिर कर रहा है, इन संस्कारों को उपार्जन कर रहा है, और उस चित्त में मिलान करने का प्रयास नहीं करता तो बेटा! वह चित्त में विद्यमान रहते हैं, और मानव जन्म जन्मान्तरों के अन्धकार कूप में चला जाता है। तो मेरे पुत्रे! जो मानव प्रभु का चिन्तन करते हैं, अथवा मनन करते हैं, इस चित्त का उस चित्त से मिलान करते हैं, वह मानव एक आभा में परिणित हो रहे हैं। वह एक अपना मानवीय जो विशाल दर्शन है, उस दर्शन के ऊपर उनका जीवन निर्धारित हो रहा है। तो मेरे पुत्र! विचार विनिमय क्या? महर्षि वैशम्पायन ऋषि कहते हैं हे मानव! तू एकान्त स्थली में विद्यमान होकर के चिन्तन कर, मनन कर प्राण और मन के द्वारा एकाग्रता से तू चिन्तन कर। क्योंकि वह चिन्तन ही तेरी मानवता में परिणित हो जाएगा। मानो तेरी वही आभा और युक्ति कहलाती है। आओ मेरे पुत्रे! विचार विनिमय क्या? हमारे ऋषि मुनियों ने, आचार्यों ने बाह्य विज्ञान को जानने के लिए बहुत प्रयास किया। ऋषि मुनियों ने कहा है कि हम जब आत्मीयता में प्रवेश करते हैं, तो बाह्य जगत् का जितना भी विज्ञान है अथवा ज्ञान है चाहे वह भौथ्तक विज्ञान है, चाहे तरंगित विज्ञान है, अग्नि विज्ञान है, जल विज्ञान है, पार्थिव विज्ञान है यह जितना भी विज्ञान है इस विज्ञान के मार्ग से होकर के हमें आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश करना है। जब तक हम इस बाह्य जगत् को नहीं जान सकेंगे तो प्रथम आध्यात्मिकवाद में प्रवेश नहीं कर सकेंगे।

इसीलिए आज का हमारा विचार क्या? महर्षि वैशम्पायन ऋषि महाराज यह कहा करते थे कि मेरे जो पितर थे उनके यहाँ सदैव नाना प्रकार की विज्ञान की तरंगें, जिनके द्वारा यन्त्रें का निर्माण हमारे आचार्य किया करते थे। श्वास की गति से चित्र आते थे।

श्वास के साथ में चित्र गति करते हैं। मेरे प्यारे! चित्रवलियां मानव के समीप होनी चाहिए। मैंने बहुत पुरातनकाल में तुम्हें कई कालों में निर्णीत किया है, वर्णन किया है। मेरे प्यारे! तुम्हें प्रतीत होगा, उद्दालक गोत्र में ऐसे ऐसे ऋषि हुए हैं जो बेटा! पति पत्नी एकान्त स्थली में विद्यमान होकर के वे याग करते वे और याग में जो साकल्य के परमाणु उत्पन्न होते उन परमाणुओं को एकत्रित करते रहते और एकत्रित करके मानो देखो, ध्रुव यन्त्रें का निर्माण किया।

एक समय बेटा! उद्दालक गोत्र में उत्पन्न हुए एक ऋषि पति पत्नी यन्त्रवली में कुछ चित्रें का दर्शन कर रहे थे। एक समय बेटा! ऋषि मुद्गल गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषि उनके द्वार पर पहुंचे, और वे बोले कि हे ऋषिवर! आप क्या कर रहे हो! उन्होंने कहा यह हमारा चित्रण है हमने याग के द्वारा एक यन्त्र निर्मित किया है। हम इस यन्त्र में अपने 100वें महापिता के दर्शन कर रहे हैं। तो ऋषि कहने लगा कि प्रभु यह आपने क्याक हा कि 100वें महापिता के दर्शन उन्होंने कहा कि हां हमारे 100वें महापिता समान जो हो गए थे उनके चित्र जो अन्तरिक्ष में गतिकर रहे हैं। अन्तरिक्ष रूपी गर्भाशय में चले गए हैं वे चित्र हमारे यन्त्र में दृष्टिपात हो रहे हैं और हम अपने 100वें महापिता के दर्शनकर रहे हैं। तो मेरे पुत्रे विचार आता है कि ऐसे ऐसे यन्त्र वायु मण्डल में गति कर रहे हैं। श्वास के साथ में मानो क्रिया कलापों के साथ में। एक समय ऋषिवर जब 99वें महापिता के दर्शन करने लगे, तो उनकी पत्नी और वह स्वतः याज्ञ कर रहे थे। और यज्ञशाला का चित्र भी उस यन्त्र में दृष्टिपात आता था। तो मुनिवरों! वह अपने महापिता और महामाता के जो 99वें महापितर कहलाते थे दर्शन कर रहे थे। तो मुनिवरों! यह विचार आता है कि यह वायु मण्डल क्या है। परमात्मा का एक ऐसा विज्ञानमय जगत् है। कैसी विज्ञानमयी शाला है? प्रत्येक मानव अपनी आभा के अनुसार 80वें महापिता के दर्शन किए, तो उनका क्रियाकलाप और ही प्रकार का उन्हें दृष्टिपात आने लगा। बेटा! एक नहीं नाना ऋषिवर! अपने पितरों से लेकरके श्वास से लेकर के अपने महापिताओं के दर्शन करते रहे।

योगाभ्यासी योगी अपने चित्त मण्डल में जन्म जन्मांतरों के चित्र उसके समीप आ जाते

हैं। तो परिणाम क्या मुनिवरों! जब हम बहुत गम्भीर अध्ययन में प्रवेश करते हैं तो ऐसा दृष्टिपात होता है यह ब्रह्माण्ड कैसा विचित्र है? यह प्रभु का जगत् कितना महान् है? उसके ऊपर हमें कितना अनुसन्धान करना है? हम अनुसन्धान न करके केवल भोग विलास के क्षेत्रें में प्रवेश कर जाते हैं। हम ममता में आ जाते हैं। हम मोह में चले जाते हैं। हम क्रोध के क्षेत्र में जा करके अपनी मानवता को नष्ट करते चले जा रहे हैं। तो विचार आता है कि क्या हम इसलिए आएं हैं? परमात्मा ने हमें इसलिए जन्म दिया है मानव का कि हम एक एक वस्तु के ऊपर चिन्तन करते चले जाएं। अपनी प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर अनुसन्धान करते हुए बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् को दृष्टिपात करते चले जाएं तो बेटा! प्रभु ने हमें मानव जन्म तो इसलिए दिया है कि हम अनुसन्धान करें। पुत्रयाग भी हम करते रहें इसमें कोई मानो द्वितीयता नहीं। उसको पुत्रयागों की दृष्टि से करें। भोग और विलासता की दृष्टि से न करते चले जाएं। वह पुत्रयाग करने वाले सब पितर कहलाते हैं। ये सब ऋषि जो मैं वर्णन कर रहा हूँ जिन्होंने इतना अनुसन्धान किया। उन माता पिता ने पुत्रयाग जो किए हैं। परन्तु उनका अध्ययन इतना गम्भीर रहा है कि उन्होंनें अपने पितरां के दर्शन भी किए हैं।

तो विचार क्या मुनिवरों! हमारा जो जीवन है वह पुत्र की ममता के लिए नहीं है। हमारा जीवन ममता और मोह के लिए नहीं है। हमारा जीवन है कर्तव्य पालन करने के लिए। माता पालन करती है। पालन करना ही उसको दार्शनिक बनाना हमारा कर्तव्य है। हम उसी को कर्तव्य स्वीकार करते हैं। एक माता पुत्र को पालन कर रही है, परन्तु उसको शिक्षा दे रही है। उससे ममता कर रही है। ममता में उसकी मानवता को नष्ट कर रही है तो वह कर्त्तव्य नहीं कहलाता। मानो देखो, मोह तो होना चाहिए, परन्तु अपना कर्त्तव्य भी होना चाहिए। उसकी दार्शनिकता उसकी आत्मीयता का भी ज्ञान होना चाहिए। इसी प्रकार बेटा! माता को अध्ययन करना चाहिए। पिता को अध्ययन करना चाहिए। गम्भीर अध्ययन करना चाहिए। हमारे ऋषि मुनियों ने मानव दर्शन के ऊपर बहुत गम्भीर अध्ययन किया है। ज्ञान और विज्ञान दे करके वह संसार से चले गए हैं। मुनिवरों! ज्ञान और विज्ञान दे करके वह संसार से चले गए। मुनिवरों! उन वाक्यों पर हमें विचार

विनिमय करना है। उन वाक्यों को विचारते हुए इस संसार सागर से पार होना है। यह जो संसार मान अपमान वाला संसार सागर है इस से पार होना ह। ै मानवता ऊँची बनाते हुए इस सागर से पार होते हुए, हम अपनी मानवता को ऊँचा बनाए। हम दार्शनिक यौगिक और वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रवेश करते चले जाएं। क्योंकि यह जो विज्ञान है, चाहे आध्यात्मिक विज्ञान हो चाहे भौतिक विज्ञान हो वह सब आत्मा का भोज्य है। यदि तूने इस संसार में आ करके अपने उदर की ही पूर्ति कर ली, आत्मा के भोजन का विचार नहीं किया तो यह तेरी धृष्टता हो जाएगी। हे मानव! यह तेरी धृष्टता है। जो अन्तरात्मा तेरे हृदय में विद्यमान है, तू संसार को जानता है गृह को जानता है, परन्तु जिसमें अन्तरात्मा रहता है, तू उसको नहीं जानता। मानो देखो, संसार का शब्द ग्रहण कर रहा है, यह ध्वनि कहाँ से आ रही है? गान हो रहा है। गान की ध्वनि आ रही है। असंख्य शब्दों की ध्वनि आ रही है। मानो तेरे शरीर में जो नाना प्रकार के मन्त्रलय हैं, उनमें जो ध्वनि आ रही है तू ध्वनि को नहीं जान रहा। यदि तू ध्वनि को नहीं जानता तो यह तो तेरी अमानवता है। तो यह है बेटा! आज का वाक् आज का वाक् हमारा क्या कहता है कि हम परमपिता परमात्मा का चिन्तन करते हुए, मनन करते हुए, हमारा गम्भीर अध्ययन होना चाहिए। और अध्ययन के साथ हमारा क्रिया कलाप भी उसके अनुसार हो। यह है बेटा! हमारा आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। अच्छा भगवन्! आज्ञा, आनन्द मंगलम

१८ 21 05 1978 पुष्प 33 भैतिक विज्ञान व आध्यात्मिक विज्ञान

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रें का गुणगान गाते चले जा रहे थे, जहाँ परम्परा से परमात्मा की आभा का वर्णन हमारा वैदिक साहित्य पुकारता चला जाता है। वहाँ एक प्रकाश की घोषणा है, और यह कहा गया है कि मानव को प्रकाशक बनकर अपने जीवन को तपस्या के आँगन में ले जाना है। बिना तप के यह संसार ऊँचा नहीं बनता। संसार में प्रत्येक मानव को तपस्वीबनना है। इन्द्रियों को तपाना है, इन्द्रियों में दोषरोपण नहीं होना चाहिये। इन्द्रियां दोषों से रहित रहें तो मानव का जीवन पवित्रता को धारण कर सकता है। पवित्र को ले करके

जब वह अपनी पवित्रता की सुगन्धि का प्रसारण करता है तो उसी सुगन्धि को पान करके यह मानव मात्र इस संसार सागर से पार हो जाता है।

वैशम्पायन ऋषि ब्रह्म की चरी के ऊपर चिन्तन करने लगे और उन्होंने यह विचारा कि वेद में ब्रह्म की चरी का वर्णन आता है। ब्रह्म ः चरी क्या वस्तु है? इसके ऊपर मानव को अनुसन्धान और मानव को मानवता की दृष्टि से दृष्टिपात करना चाहिए। तो बेटा! उन्होंने ब्रह्म और चरी दो प्रकार से वर्णन किया। उन्होंने कहा कि ब्रह्म और चरी दो शब्द हैं। ब्रह्म कहते हैं, परमपिता परमात्मा को और चरी कहते हैं, उसकी आभा को। जो उसकी आभा की सुरक्षा करता है अथवा रक्षा करता है और वह अपने को ब्रह्म में संलग्न करा लेता है, वह ब्रह्मचरी की रक्षा कर रहा है। एक ब्रह्मचरी का अर्थ यह है। द्वितीय ब्रह्मचरी का अर्थ यह है कि ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को और चरी कहते हैं विद्या को। जो ब्रह्मचारी रह करके विद्या का अध्ययन करता है अथवा उस विद्या अर्थात् चरी पर अनुसन्धान करके नाना प्रकार की आभाओं में, नाना प्रकार की विद्याओं का वह अध्ययन करता है तो वह भी चरी का एक स्वरूप माना गया है।

परन्तु ऋषि कहता है कि चरी एक वैज्ञानिक को भी कहते हैं जो ब्रह्म और चरी मानो संयम में रह करके मस्तिष्क का संतुलना बना करके रक्षा करता है और वह खनिज पदार्थों को जानता है, पृथ्वी के गर्भ को अन्तरिक्ष में जो मानव के मस्तिष्क में जो पिंड बन जाता है रचना के पूर्व, बाह्य जगत् में आने से पूर्व पिंड की रचना होती है, उस पिंड की रचना को जानने वाला वह भी एक ब्रह्मचारी कहलाता है। वह ब्रह्मचारी है और वह ब्रह्म की चरी को जान रहा है।

वेद का ऋषि वैशम्पायन यह विचार रहा है कि इतने प्रकार के जो अर्थ एक ही शब्द के रूप में आते हैं उन रूपों के ऊपर हमें प्रायः अनुसन्धान करना चाहिए। अनुसन्धान की दृष्टि से हमें प्रत्येक वस्तु को दृष्टिपात करना है। क्योंकि वैदिक साहित्य में इसका वर्णन आता है। ब्रह्मचारी वह है जो देवता बन रहा है। प्राणायाम के द्वारा देववत् को प्राप्त हो रहा है वह भी मानो ब्रह्म और चरी के स्वरूप हैं।

एक मेरी प्यारी माता है वह अपने बाल्य को अपनी लोरियों का पान कराती हुई और

अपने बाल्य को शिक्षार्थी बना रही है। मानो लोरियों का पान कराती हुई और ब्रह्मचर्य का एक उपदेश दे रही है। ब्रह्म का वर्णन कर रही है और वह ब्रह्म विद्या में पारायण होती हुई ब्रह्म विद्या का उसके श्रोत्रें में श्रवण करा रही है, तो वह मेरी प्यारी माता बालक को ऊर्ध्वगति की शिक्षा दे रही है। वह कितना सौभाग्य है उस माता का जो जो पालन कर रही है। अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही है। कर्त्तव्य के पालन करने का नाम मानो ब्रह्म और चरी दोनों के स्वरूप उसके सन्मुख आते हैं। बेटा! प्रत्येक मानव को कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

प्रत्येक मानव यह कहता है, दर्शनों की भाषा में, दर्शनों की मीमांसा करने वाला प्राणी यह कहता है कि प्रत्येक शब्द में दर्शनों में ऋषि मुनियों ने यह वर्णन किया है कि मानव का उद्देश्य कि निष्काम कर्म के योग्य अपना कार्य करना चाहिए। हम जिस कार्य को करते चले जाएं, उसमें निष्कामता होनी चाहिए। उसमें लिपायमानता नहीं होना चाहिए। उसमें निष्कामता होनी चाहिए। निष्कामता वाला प्राणी कर्त्तव्यवादी बनता है, और वह जो कर्त्तव्यवादी है, वह मानव समाज को ऊँचा बनाता है। वह मानवीय समाज को एक आभा में ले जाता है, विचित्रता में ले जाता है। संसार में एक बाल्य, एक ब्रह्मचारी गृह में गृह आवतय व्री रह लोकाः एक मानव ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है। ब्रह्मचर्य के पालन का अभिप्राय क्या मानो ब्रह्म विद्या को अध्ययन कर रहा है। वह विद्याके गर्भ में प्रवेश कर रहा है। सरस्वती के द्वार पर जा रहा है। जब वह विद्या में पारायण बन जाता है, नाना प्रकार की विद्याएं उसके समीप होजाती हैं। अपने ब्रह्मचर्य को, अपनी आभा को ऊर्ध्व बनाने के लिए, अपने को विस्तार वाला बनाने के लिए बेटा! वह गृह में प्रवेश करता है। वही ब्रह्मचारी है जो गृह में प्रवेश करता है। गृह में प्रवेश करके वह अपनी महान् देवी से कहता है हे देवी! आध्याम् गत्क सभी लोकाः आओ! हम संसार में तपस्वी बनें। क्योंकि बिना तप के हमारा जीवन व्यर्थ है। हमें जीवन को तपाना है और अपने को तपा करके उसके पश्चात् हमें याग करना है।

मेरे पुत्रो! हमारे आचार्यों ने दर्शन शास्त्रें की मीमांसा करने वालों ने पुत्र उत्पन्न करने को एक याग माना है। याग का अभिप्राय क्या है? मानो हुत देना है, देवताओं को प्रसन्न

करना है। ऋषि मुनियों एवं आचार्यों का बहुत अनुसन्धान और वेदमन्त्र पर चिन्तन और मनन होता रहा है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज माता अरून्धति का जीवन मुझे स्मरण आता है। माता अरुणधती और महर्षि वशिष्ठ ने जब अपने गृह में प्रवेश किया तो उन्होंने बारह बारह वर्षों तक मां गायत्री की गोद में चले गए। तप किया। क्योंकि तप से ही यह संसार की उत्पत्ति हुई है। जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तो एक वर्णन बहुधा आता है। महान् परमात्मा ने तप किया, और तप करने के पश्चात् एक से बहुधा का वर्णन वैदिक साहित्य में आता है। बेटा! एक के बहुत बन गए। इसी प्रकार यह बहुधा का वर्णन आता है।

बेटा! मैं तप की मीमांसा में नहीं जा रहा हूँ। केवल परिचय देने आया हूँ। प्रत्येक मानव को यहाँ तपस्वी बनना है। तपने के पश्चात् जब माता वसुन्धरा, यह पृथ्वी तपा करती है, तपती रहती है और ग्रीष्म ऋतु में तपती है और तपने के पश्चात् सूर्य की किरणें बनती हैं, तो समुद्रों से जलों का उत्थान हो करके धीमी धीमी वृष्टि हो जाती है और उसी वृष्टि का परिणाम यह होता है कि नाना प्रकार की वनस्पतियां, कहीं खनिज पदार्थों की उत्पत्ति इस माता वसुन्धरा के गर्भ से उत्पन्न हो जाती है। यह माता वसुन्धरा पृथ्वी कहलाती है। तो वह कैसी पवित्रता से तप कर रही है। इसी प्रकार महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज माता अरुणधती को यह कहा करते कि हे अरून्धति! हे देवी! आओ हम तप करें। तो उन्होंने तप किया। तपने के पश्चात् ही ममतामयी बनती है।

मेरे प्यारे! मेरी प्यारी पुत्री जब बाल्यकाल में तपती रहती है तो तपने के पश्चात् वह ममतामयी बनती है। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। महर्षि वशिष्ठ जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे, वहाँ वह वैज्ञानिक भी थे, वहाँ ब्रह्म निष्ठ भी थे, राष्ट्र पुरोहित भी थे। तो परिणाम क्या कि बारह बारह वर्षों तक तपने के पश्चात् उन्होंने एक सन्तान को जन्म दिया। एक याग किया। क्योंकि सन्तान उत्पन्न करने का नाम एक याग है। दोनों ने याग किया। याग करने के पश्चात् एक सन्तान का जन्म हुआ। हमारे यहाँ जब नियमाधार अस्ति। मानो ऊर्ध्व में वैदिक साहित्य के अनुसार जब मानव का जीवन प्रारम्भ होता है और उसके आधार पर वह उज्ज्वल बनता है, तो माता माता रहती है। मानो पिता पिता

रहता है। वहाँ उनके जीवन में शोक नहीं होता। वे शोकों से रहित होते हैं पति पत्नी प्रातः काल में याग कर रहे हैं, और जब याग करते हैं तो वह अग्नि की पूजा कहालाती है। वह कैसा याग कर रहे हैं वह गार्हपत्य नाम की अग्नि कहा जाता है। गार्हपत्य नाम की अग्नि की कौन पूजा करता है? माता पिता प्रातःकाल में बेटा! अपने गृह में याग करते हैं। जब वह याग करते रहते हैं तो उसके पश्चात् उनकी वाणी से उद्गार उत्पन्न होते हैं। हम अपने गृह को कैसा बनाना चाहते हैं। प्रत्येक मानव यह चाहता है कि हमारे गृह में स्वर्ग होना चाहिए। संसार का प्रत्येक प्राणी स्वर्ग चाहता है और यह स्वर्ग कैसे आएगा?

मेरे प्यारे! स्वर्ग उन प्राणियों के गृह में होता है जो माता पिता सुसज्जित होते हैं। माता पिता अपने सुन्दर विचार बनाते हैं और उन्हीं विचारों का अनुसरण आगे आने वाली सन्तान होती है। मानो पुत्र पुत्रियां होती हैं, वह माता पिता के विचारों का श्रवण करके अपने गृह को स्वर्ग बना लेते हैं। वह गृह स्वतः स्वर्ग बनता है। जैसा भी हम बनाना चाहते हैं। उसके लिए हमारा क्रिया कलाप वैसा होना चाहिए, और वह जो क्रिया कलाप है वह इतना विचित्र, इतना महान् और पवित्र होना चाहिए जिससे हमारे व्यवहार से, हमारी प्रतिक्रियाओं से हमारे यहाँ सन्तान और भी प्राणी हमसे प्रभावित हो जाए। तो परिणाम क्या? हमारे आचार्यों ने उस गृह आश्रम को याग माना है। हे मानव! तू अपने गृह को याज्ञिक बना। याज्ञिक का अभिप्राय यह है कि हमारे विचारों में महत्ता होनी चाहिए।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है महाराजा अश्वपति का राष्ट्र। भगवान् राम का राष्ट्र भी मुझे स्मरण आता रहता है। जब लंका विजय करने के पश्चात् उन्होंने अपने राष्ट्र में यह घोषणा की थी कि मेरा यह अयोध्याराष्ट्र उस काल में पवित्र बनेगा जब प्रत्येक मानव के द्वारा आत्मीयता हो। जहाँ उदर की पूर्ति करने का प्रसंग प्रत्येक मानव के समीप आता रहता है, वहाँ एक आत्मीयता का भी प्रसंग आता हैं जहाँ मानव वैज्ञानिक बनता है, जहाँ मानव परमाणु त्रसरेणु को एकत्रित करता रहता है, नाना प्रकार की उड़ान उड़ता रहता है। लोक लोकान्तरों में गति करता है वहाँ आत्मीयता भी अनिवार्य कहलाती

है।

बेटा! एक वैज्ञानिक राष्ट्र का कल्याण करना चाहता है। वह राष्ट्र में एक अनुसन्धान कर रहा है कि मैं परमाणुओं को, खनिज विद्या को जानना चाहता हूँ। और नाना प्रकार के यन्त्रें को निर्धारित करता है, वह नाना प्रकार के यन्त्रें को निर्माण करता रहता है और निर्माण करके राष्ट्र को शक्तिशाली बना रहा है। मानो उससे द्वितीय राष्ट्र भयभीत हो जाते हैं। परिणाम यह होता है उस मानव की जो विचार धारा, वही वैज्ञानिक मानो यन्त्रें को, परमाणुओं का निदान करता रहता है। उस मानव के द्वारा आत्मीयता भी होनी चाहिए।

आत्मीयता किसे कहते हैं? बेटा! जो भौतिक मार्ग से हो करके और आध्यात्मिक मार्ग में मानवीय दर्शन में प्रवेश करता है। मानवीय दर्शन क्या है? मानवीय दर्शन यह कि हमारे शरीरों में रहने वाला जो आत्मा है वह आत्मा चेतना है उस चेतना को हम जानते रहें। उस चेतना को जानना बहुत अनिवार्य है। क्योंकि प्रत्येक मानव बहिर जगत् को दृष्टिपात करता है। जब वह अपनी अन्तरात्मा को दृष्टिपात करता है तो वह अपने अन्तरात्मा में सर्वत्र को दृष्टिपात करके अपनी आत्मीयता को ऊँचा बनाता है। उससे मानव का आत्मिक बल बलिष्ठ होता है। आत्मा को जानने वाला प्राणी का आत्मिक बल बलिष्ठ होता है। उनका जीवन एक महान् रहता है। हमारे यहाँ यह अभिप्राय नहीं है कि प्रत्येक मानव गृह में प्रवेश हो करके वैज्ञानिक नहीं बनता। परन्तु वह आत्मीयता वाला नहीं बनता। मुझे स्मरण है बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय दिया था विज्ञान के सम्बन्ध में भी आज भी मैं उस आभा को प्रकट करता रहता हूँ। पति पत्नी दोनों का कर्त्तव्य होता है कि हम संसार में अपनी आत्मीयता को ऊँचा बनाए। यह मानव जीवन एक रथी के तुल्य है ऐसा ऋषियों ने सिद्ध किया है और उसका उपार्जन भी किया है।

मुझे स्मरण आता रहता है पुत्रे। महर्षि मुद्गल गौत्र में एक शेष रेणु नाम के ऋषि हुए। वे अपने आसन पर विद्यमान हैं। उनकी पत्नी का नाम सोमलता था। वे दोनों जब गृह में प्रवेश करते थे तो उन्होंने दो सन्तानों को जन्म दिया और उन्होंने दो सन्तानों को

जन्म देकरके दोनों पति पत्नी ने उन्हें ब्रह्मवेत्ता बनाया। आत्मीयता वादी बना करके उन्हें आध्यात्मिक वादी ही नहीं उन्हें भौतिक विज्ञानवेत्ता भी बनाया।

दोनों भयंकर वनों में चले गए। तप करने लगे। विचारने लगे कि तप क्या है? क्योंकि दोनों वैदिक थे। वेद की मीमांसा को जानते थे। वेद के एक एक मन्त्र को लेकरके वे तप करने लगे। तप करने के पश्चात् उन्होंने याग किया। उन्होंने अग्नि होत्र की समिधाएं एकत्रित करना और उसका संकल्प के साथ में स्वाहा करने लगे। स्वाहा करते करते जितना साकल्य अग्नि में रूपान्तर होता तो उन परमाणुओं को एकत्रित करते और परमाणुओं को एकत्रित करके उनके परमाणुओं का मिलान करते रहे। जब परमाणुओं का मिलान करते रहे तो दोनों वैज्ञानिक बन गए। भौतिकवादी बन गए। भौतिक विज्ञान में प्रवेश कर गए। उन परमाणुओं का मिलान करते करते उन्होंने यन्त्रें का निर्माण किया और जब यन्त्रें का निर्माण किया तो उन यन्त्रें में क्या दृष्टिपात करते थे कि उनके मुखारविन्दु से जो शब्द उत्पन्न होता था उस शब्द के साथ में जो शब्द अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके मानो उनका जो मानवीय चित्र था वह उन्हें उस यन्त्र में दृष्टिपात आने लगा। उसमें जब दृष्टिपात आने लगा तो दोनों पति पत्नी याग करते और अपने स्वरूप को उन यन्त्रें में दृष्टिपात करते।

उन दोनों ने यह विचारा। एक समय सोमलता बोली कि हे ऋषिवर! हम यह जानना चाहते हैं कि जैसे हमारा यह चित्र इसमें आता है क्या और भी कुछ विज्ञान इसमें आ सकता है। वह विज्ञान में प्रवेश कर गए, और प्रवेश करके जो उनके सातवें महा पिता थे जो समाप्त हो गए थे, मानों शरीर में नहीं थे उनके शब्द वायुमण्डल में भ्रमण कर रहे थे। उनके चित्र आने लगे, मानो उनके चित्र उन्हें उस यन्त्र में दृष्टिपात आने लगे। उन्होंने कहा कि धन्य है हे, प्रभु! विचार आया बेटा! उन्होंने अनुसन्धान करते करते इस प्रकार उस विज्ञान में गति की अपने सातवें महा पिता के दर्शन करने लगे और उन्होंने सौंवें महा पिता के दर्शन किए। आगे विज्ञान में पहुंचे तो सहस्रों पूर्व प्रणाली जो समाप्त हो गई बेटा! उनके चित्र उन्हें दृष्टिपात आने लगे।

परिणाम क्या कि विज्ञान इतना विशाल है। एक एक वेदमन्त्र के ऊपर तुम अनुसन्धान

करने लगोगे तो जैसे मानव के शरीर में रचना करने के पूर्व पिंड का निर्माण होता है। मेरे प्यारे! एक माता पिता यह चाहते हैं कि हमारे सुशोभित सन्तान का जन्म हो। तो माता पिताओं के मस्तिष्क में, उनके विचारों में पुत्र का पिंड बन जाता है। क्रियाओं से पूर्व पिंड बन जाता है। उसके पश्चात् जैसे एक मानव गृह का निर्माण कर रहा है निर्माण करने से पूर्व गृह का पिंड, गृह का चित्र उस मानव के मस्तिष्क में ओत प्रोत होता है। तो पहिले पिंड बन गया उसके पश्चात् वह बहिर जगत् में आता है।

तो मुनिवरों! आज हमारा यह विचार क्या कह रहा है। मैं व्याख्याता नहीं हूँ केवल परिचय देने के लिए आया हूँ वह परिचय क्या है कि प्रत्येक मानव अपने जीवन में मानवता को चाहता है। मानवता कैसे आती है? ज्ञान और विज्ञान के द्वारा। ज्ञान भी दो प्रकार का है एक लौकिक ज्ञान है एक पारलौकि है। विज्ञान भी दो प्रकार का है एक भौतिक है और एक आत्मीयता का जिसको आध्यात्मिक वाद कहते हैं। आत्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान दोनों विज्ञान हैं आज हमें इनको विचारते हुए अपनी प्रस्तावना को ऊँचा बनाने पर इस संसार को राष्ट्र भी यह चाहता है कि मेरा जीवन ऊँचा हो और मैं अपनी प्रजा का सुख के मार्ग पर ले चलूं। माता पिता भी यही चाहते हैं कि मेरे गृह में स्वर्ग हो तो मेरे प्यार! यह स्वर्ग कैसे प्राप्त होगा? राजा अपने राष्ट्र को स्वर्ग में ले जाना चाहता है तो स्वयं चरित्रवान् बनकर के, सुचरित्रता ला करके और अपनी प्रजा में धर्म और मानवता का प्रसार करने वाला बने। धर्म और मानवता ही एक राष्ट्र की सुख और शान्ति की स्थापना कर सकते हैं। परन्तु रूढ़ियां नहीं कर सकतीं। इसलिए रूढ़ियों को समाप्त करके धर्म की स्थापना करना राष्ट्र का कर्त्तव्य है।

माता पिता अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहता है तो स्वयं अपने में सुसज्जित बनें। स्वयं मानवता को लेकर के वह अग्रणी बनते चले जाएं। उनका गृह स्वर्ग बन जाएगा, आनन्द युक्त होता चला जाएगा। इसके पश्चात् मैं बहुत पुरातन काल में विचार धारा प्रकट कर रहा था ऋषि वशिष्ठ मुनि महाराज की। महर्षि वशिष्ठ मुनि और माता अरुणधती दोनों तप करते थे। दोनों ब्रह्मवेत्ता थे, ब्रह्मवेत्ता थे, ब्रह्मानिष्ठ थे, ह्म को जानते थे, विज्ञान की उड़ान उड़ते रहते थे, रात्रि समाप्ति हो जाती थी। विज्ञान में इतने रत्त रहते थे कि दोनों

इतना चिन्तन और मनन करते थे कि संसार की विलासिता का उन्हें मन में विचार भी नहीं आता था। देखो, सन्तान को जन्म देना एक वाक्य है, और विलासिता में प्रवेश करना यह द्वितीय वाक्य हैं एक कर्त्तव्यवादी पति पत्नी सन्तान को जन्म देते हैं। एक विलासिता की आभा आती है। परन्तु विलासिता नहीं, तुम उन परमाणुओं से ऊर्ध्व गति में जाने हमारे समीप विद्यमान हो जाए। आत्मीयता हमारे समीप, आत्म विज्ञान का परमात्मा के विज्ञान से इसका समन्वय होना चाहिए।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। इस प्रकार के जो माता पिता चिन्तन करने वाले होते हैं, उनकी सन्तान का पिता से प्रथम निधन नहीं होता पिता की आयु दीर्घ हो तो पुत्र की आयु भी दीर्घ। स्वर्ग बन रहा है, आनन्द बन रहा है। राम के काल में पिता से पहिले पुत्र समाप्त नहीं होता था। मुझे स्मरण है जब रावण के पुत्र मेघनाथ का निधन हो गया, मानो जब उनके सर्व पुत्रें का निधन हो गया तो महारानी मन्दोदरी ने रावण से एक प्रश्न किया कि हे प्रभु! हमारा यह वंश समाप्त हो गया है। परन्तु मैं यह नहीं जान पाई हूँ कि हम वेद के मर्म को जानने वाले हैं, हमारी परम्परा रही है कि वेद की व्याख्या प्रारम्भ रहें। परन्तु यह क्या कारण हुआ भगवन! जो हम ही से पहिले ये सब पुत्र चले गए। उस समय रावण और मन्दोदरी दोनों विचार विनिमय करने लगे, चिन्तन और मनन करने लगे। मन्दोदरी कहती है कि हे प्रभु! क्या कारण है? रावण ने कहा देवी! तुम ही इसका कुछ कारण बताओ मैं नहीं जान पाया हूँ। मुझे अज्ञान छा रहा हैं महारानी मन्दोदरी उनकी पत्नी ने कहा प्रभु! मेरे विचार में तो यह आता है कि दूसरों की कन्या को अथवा पत्नी को जो छलकर लाता है उसका यह दुष्ट परिणाम होता है। रावण ने कहा कि यह भी विचार नहीं आता। कोई और ही कारण है। चरित्रवान नहीं बना सके, हम स्वयं वैदिकता को नहीं अपना सके हैं। वैज्ञानिकता को भी सात्विक रूपों से नहीं अपना सके इसका मूल कारण यह भी हो सकता है। महारानी मन्दोदरी ने जब यह कहा तो रावण ने कहा यह भी हो सकता है। परन्तु मैंने अपने जीवन में कुछ ऐसे कर्म किए हैं जिन कर्मों का यह दुष्ट परिणाम है। उन्होंने कहा प्रभु! यह कैसे? वह इसलिए कि मैंने संसार में बहुत सी विद्याओं को

अध्ययन किया था। मैं परमाणु विद्या भी जानता हूँ, अग्नि विद्या भी मेरे समीप रही है। मैं वाणी विद्या को भी जानता हूँ। हे देवी! मैं गृह पथ अग्नि को भी जानता हूँ। परन्तु जानते हुए आज मुझे इतना अज्ञान छा गया है कि मैं समाज को अपने अनुकूल नहीं बना सका।

मेरे प्यारे! इसका मूल कारण यह भी है कि चरित्र की स्थापना मैं राष्ट्र में नहीं कर सका। विचार विनिमय क्या कि हमारे यहाँ यह विचार आता है कि जो संसार में मन की प्रवृत्तियों से चंचल रहता है, मन की आभा जिसकी समाप्त हो जाती है मानो जिसका संयम नष्ट हो जाता है उस मानव की मानवता समाप्त हो जाती है और वह स्वर्ग और आभा को उत्पन्न नहीं कर सकता।

तो मुनिवरों! आओ। राम के काल में राम को यह शिक्षा थी वशिष्ठ की कि हमारे यहाँ राष्ट्र का इस प्रकार निर्माण होना चाहिए जिससे राष्ट्र के निर्माण में, राष्ट्र की करता है, राष्ट्र की प्रणाली बनाता है, वह राष्ट्र पवित्र होता है।

तो परिणाम क्या? मैं परम्परा की वार्त्ता प्रकट करने लगा हूँ। मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ, विचार यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव परम्परा से आत्मीयता और विज्ञान दोनों चाहता है आनन्द को चाहता है अतः हमारा चिन्तन और मनन पवित्र होना चाहिए। हमारा जो भी मनन चिन्तन होगा, उसी के आधार पर हम जीवन को ऊँचा बना सकते हैं।

बेटा! यह आज का वाक् है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क कि वेद मन्त्रें में नाना प्रकार की विद्याओं का वर्णन आ रहा था। कहीं माता वसुन्धरा का वर्णन आ रहा था कि तू हमें अपने में बसाने वाली है, तो अपने में धारण करती है। वसुन्धरा के पर्यायवाची नाना शब्द हैं। मैं उन विचारों में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या कि महर्षि वैशम्पायन यह विचार रहे हैं कि यह क्या है। वह नाना प्रकार के यन्त्रें में, नाना विज्ञान में प्रवेश होना आत्मियता को ऊँचा बनाना। बेटा! यह प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है।

यह है बेटा! आज का वाक् आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि परमपिता

परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हमें इस संसार सागर से पार होना चाहिए। यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल सर्वत्र अपनी मानवता और आत्मीयता और वैज्ञानिकता को लेकर के हमें अपने जीवन, राष्ट्र और समाज और गृह को ऊँचा बनाते चले जाएं। गाहर्पथ नाम की अग्नि की पूजा करें। माता पिता के ऊँचे विचार हों। तो उसी के अनुकूल सन्तानों का जन्म होता है। सन्तानों की क्रिया कलाप उसी प्रकार का होता है। यह आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पाठ होगा। स्थानः मुजफ्फरनगर।

१९ अतिथि 010 पुष्प 31 वार्णावत का कुछ पुराना इतिहास

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रां का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परस्पर से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि परमात्मा इस ज्ञान और विज्ञान का प्रतिनिधित्व करने वाला है। हम सदैव उसकी महिमा का गुणगान गाते रहते हैं।

हमारे यहाँ जब एक एक वेदमन्त्र को विचार विनिमय करने लगते हैं तो एक एक वेद के मन्त्र में सर्व ब्रह्माण्ड की प्रतिभा निहित रहती है। हमने बहुत पुरातन काल में प्राणों के सम्बन्ध में अपनी विवेचनाएँ प्रकट कीं। प्राणों के ऊपर यदि हम व्याख्या करने लगते हैं तो एक एक प्राण की व्याख्या करने के लिए समय की आवश्यकता रहती है। जब हम प्राण और अपान को ले करके चलते हैं तो हमारा जीवन और भी महान बनने लगता है। जब हम व्यान और समान को लेकर के चलते हैं तो जीवन और भी महत्ता में परणित होने लगता है। जब हम उदान और चित्त को ले करके चलते हैं जिसमें आत्मा की कृति वृत्तियाँ होती हैं तो हम सर्वत्र विज्ञान और आनन्द के भूषण को धारण

करने लगते हैं।

आज का विचार विनिमय तो यह कि मेरे प्यारे! महानन्दजी अपने दो शब्द उच्चारण करें। परन्तु उससे पूर्व शब्दों में आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा है? यज्ञं ब्रह्म गच्छो व्रतज्ञ प्रभे यज्ञः हे यज्ञमान! तेरा संकल्प महान और ऊँचा होना चाहिए। यज्ञमानों के सम्बन्ध यह कहा जाता है, हम नहीं कहते, वेद का ऋषि कहता है कि हे यज्ञमान! तेरा संकल्प विचित्र होना चाहिए और तेरे संकल्प में निष्ठा होनी चाहिए। तेरा संकल्प और जो निष्ठा है वही तेरे जीवन को ऊँचा बना सकती है। यदि यज्ञशाला में देवताओं को आहुति देने के पश्चात यज्ञमान के आहार और व्यवहार में अथवा उसके चरित्र और मानवता में हानिप्रद होता है, तो उसका सुकृत हनन होने लगता है। पुण्य समाप्त होने लगता है, पापमय संस्कार उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि यहाँ यज्ञशाला में हम देवताओं के समीप पहुँचे हैं। देवता कौन होता है? जो देवताओं को हवि प्रदान करता है। वह बाह्य हवि देता है। तो ये जड़ देवता, चेतना देवता दोनों प्रसन्न होते हैं और जब यह आन्तरिक देवताओं के समीप जाता है जो अन्तरात्मा में विराजमान है। वे देवता प्रसन्न होते हैं और उन देवताओं के प्रसन्न होने पर मानव के पुण्य का उदय होने लगता है। मानव के जीवन में एक महत्ता प्रवेश करने लगती है।

हे मेरे पुत्रो! आज मैं कोई विशेष चर्चा तो प्रकट नहीं करने आया हूँ आज का वेद का ऋषि कहता है कि हे यज्ञमान! तू अपनी यज्ञशाला में विराजमान हो करके अपने बाह्य और आंतरिक जगत् दोनों का शोधन करने का प्रयास कर। यदि तू अपने मन में एक पितरयान को चाहता है तो पितरयाग भी होगा। पुत्र की उत्पत्ति होना ही पितर याग कहलाता है। इस सम्बन्ध में मैं आज विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूँगा। आज मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ विचार प्रकट करेंगे। उससे पूर्व हम दो शब्दों की विवेचना करना चाहते हैं और वह विवेचना यह है कि मानव को संसार में साधक बनाना चाहिए। कैसा साधक हो? परमात्मा के द्वार तक अपनी शृंखला बनाने वाला हो और विचित्रता उसके जीवन में प्रवेश करने वाली हो। ऐसा हमारा सदैव विचार विनिमय रहता है। जहाँ मानव ऊँचे ऊँचे संस्कार बनाता है, महत्ता में परणित करता है वहाँ मानवता सदैव उच्चता को

प्राप्त होती है। संसार में महापुरुषों का कर्त्तव्य है। सहापुरुष किसी कार्य को स्वतः ही नहीं करते। परन्तु वह किसी महापुरुष की प्रेरणा दे देते हैं। और प्रेरणा दे करके किसी को जैसे भगवान् राम और वशिष्ठ विश्वामित्र इत्यादियों की चर्चाएँ आती हैं। अथवा उनका साहित्य आता है। उनका विचार आता है कि भगवान राम को निर्माण करने वाले ये महान ऋषि थे। उन्होंने उनका निर्माण किया। उज्ज्वल बनाया और उसी प्रसे महत्ता की स्थापना होती रही तो अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने विचारों को व्यक्त कर सकेगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् ब्रह्मणः यज्ञस्तं ब्रह्मे व्यापकम् यज्ञस्तनपनाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत समय के पश्चात यह समय प्रदान किया है। नाना प्रकारकी शंकाएँ गलती रहती हैं, नाना प्रकार की वार्त्ताएँ प्रारंभ होती रहती हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने योग के सम्बन्ध में (1) प्राण (2) अपान, (3) उदान, (4) व्यान और (5) समान के सम्बन्ध नाना प्रकार की अपनी विवेचनाएँ प्रकट की हैं। उन्होंने जो अपना वाक्य लिया है वह बहुत ऊँची गति का है। वह बहुत ऊँचे महान ऋषियों का और वह उन महापुरुषों का था जो एकांत स्थली में विराज मान हो करके हिमालय की कन्दराओं में चिन्तन करने वाले आत्मा का विवेचन करने वाले, आत्मवत् में अपने को समर्पित करने वाले, ऐसे महापुरुषों का एक एक महान आदेश और विचार विनिमय होता रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की सदैव बहुत ऊँची उड़ान रही है। परन्तु इस उड़ान के सम्बन्ध में आज मैं अपनी कोई चर्चा प्रकट नहीं करूँगा। आज मैं केवल यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि हमारी जो यह आकाशवाणी है जिस स्थली पर जा रही है वहाँ चतुर्वेद पारायण याग का कर्म प्रारम्भ हो रहा है। मेरा अंतर्रात्मा सदैव गद् गद् रहता है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को सदैव प्रेरणा देता रहता हूँ और ब्रेरित करता रहता हूँ। कि हे मेरे पूज्यपाद! आज मैं यह क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ। आज के संसार को, आज के इस शिक्षित समाज को दृष्टिपात करके मेरा अन्तरात्मा किसी काल में तो गद् गद् होने लगता है और किसी काल में दुखित होने लगता है। क्योंकि आज का समाज यह कहता है कि अपने स्वार्थ में वशीभूत हो करके कि

महाभारत का साहित्य नहीं हुआ। महाभारत काल कोई नहीं हुआ। उन दोनों भ्राताओं में विवाद अपने कुटुम्ब में इतना विवाद आ गया तो यह केवल काल्पनिक है। ऐसा आज का कुछ शिक्षक समाज घोषणा कर रहा है।

जब उन विचारों को मैं अपने में श्रवण करता हूँ, आज का वैज्ञानिक यह कहता है। कुछ वैज्ञानिक यह कहते हैं कि जो विज्ञान हमने जाना है वह विज्ञान इससे पूर्व काल में नहीं था। आज का समाज जब यह कहता है तो मेरा अन्तरात्मा दुखितः होता है कि यह समाज कहाँ चला गया। मैं यह जानना चाहता हूँ कि हमारे दर्शनों में जब हम प्रवेश करते हैं तो दर्शनों में आज का विज्ञान जो उड़ान उड़ रहा है वह दर्शनों की उड़ान है वह दर्शनों में इससे पूर्व कालों में ऋषि मुनियों ने नियुक्त किया। आज का मानव समाज यह कहता है कि हमारा जो विज्ञान है वह चन्द्रमा पर चला गया। जब वैज्ञानिकों की किसी काल में विचार विनिमय होता है, उनकी नाना गोष्ठियाँ होती हैं, नाना विचार धाराएँ प्रारम्भ होती है तो उनका विचार विनिमय यही कहता है कि मैंने जो भी कुछ जाना है, जो गम्भीर वैज्ञानिक होता है वह कहता है कि जो मैंने जाना है बहुत ही सूक्ष्म सा है। जब मैं यह विचार विनिमय करता हूँ कि हे भोले प्राणी! आज तू यह क्या उच्चारण कर रहा है जो देश समाज और काल की प्रसंस्कृति का ह्रास करता चला जा रहा है। यह इस प्रकार ह्रासता में तो नहीं आता। क्योंकि आज मानव कहता है कि महाभारत काल काल्पनिक है, यह काल्पनिक कैसे दृष्टिपात आता है। वह नाना उदाहरण देने के लिए तत्पर होते हैं। प्रमाण देते हैं परन्तु जब मैं यह कहता हूँ कि हे भेले प्राणियों! तुम्हारे वंश का क्या निकास है? कहाँ से निकास है? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ? तुम्हारे शरीर का सबसे पिता निर्माता कौन था? कौन माता निर्माता थी? परन्तु मानव के द्वारा कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। उन शिक्षक प्राणियों से भी प्राप्त नहीं होता। इन शिक्षकों के विचारों में अज्ञान रमण कर रहा है। क्योंकि स्वार्थ है और स्वार्थ से अज्ञानता की उत्पत्ति आती है।

मैंने कई काल में तुम्हारे वर्णन करते हुए कहा कि जब इस राष्ट्र में, साहित्य में किसी प्रकार की उनके पात्रों पर आक्रमण करना होता है तो वह आक्रमण उस काल में होता

है जबकि स्वार्थी प्राणी विशेषकर हो जाते हैं और वह स्वार्थी प्राणी उनके पात्रों को भ्रष्ट करके वह साहित्य कुछ काल में समाप्त हो जाता है, उसकी परम्परा समाप्त हो जाती है। आज हे भोले प्राणियों! आज मैं इस वाक्य को भी लेकर नहीं जा रहा हूँ। आज मैं उसका मण्डन कर रहा हूँ। महाभारत का काल हुआ है। महाभारत के काल के और आज के वैज्ञानिकों की चर्चा प्रकट करना चाहता हूँ। आज से लगभग साढे पाँच हजार वर्ष पूर्व उससे पूर्व भीम और घटोत्कच जिनके चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में यन्त्र गमन कर रहे हैं। जब आज का भौतिक विज्ञानवेत्ता यन्त्रों को ले करके जाता है तो उसे वहाँ वे यन्त्र प्राप्त होंगे। हे भोले वैज्ञानिकों! हे शिक्षक समाज! यदि तुम इस महाभारत काल को स्वीकार नहीं करते हो तो चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष पोथी के प्रमाण को यथार्थ स्वीकार करते हो तो तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि यदि निर्णय करना है तो यान को ले करके चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में पहुँचे। वहाँ उन्हें वे यन्त्र प्राप्त होंगे। वहाँ उन यन्त्रों का एक लेखनी होगी। उस लेखनी पर घटोत्कच और भीम का नामकरण प्राप्त होगा।

मैं शिक्षक प्राणियों से यह प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि महाभारत काल में या लगभग साढ़े पाँच हजार वर्षों पूर्व तुम्हारा पड़ पिता था या नहीं। तो उत्तर प्राप्त नहीं होगा। परन्तु आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराना चाहता हूँ? परन्तु रहा यह वाक्य कि मैं क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ? इस भूमि पर विराजमान हो करके भीम और घटोत्कच दोनों ने कुछ वैज्ञानिक यन्त्रों को जाना था। परन्तु वह भूमि, वह काल मोहम्मद के मानने वालों के आँगन में चला गया। वह समय आया उससे पूर्व काल में साहित्य अग्नि के मुखारविंद में परणित हो गया। आज पुनः से मैं क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ। इसलिए हम कहा करते हैं कि परमपिता परमात्मा की ऐसी तरंगें चलती हैं प्रकाश की कि जहाँ अन्धकार है वहाँ प्रकाश हो जाता है और जहाँ प्रकाश है वहाँ अधकार आ जाता है। यह मैं अन्धकार और प्रकाश की चर्चाएँ कर रहा हूँ।

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन करते हुए कहा था कि महाभारत काल में ऐसा सुंदर लाक्षागृह का निर्माण किया गया था। जब उस लाक्षागृह

का निर्माण किया गया पाण्डवों को भस्म करने के लिए, अग्नि में परणित करने के लिए। आज का वैज्ञानिक ऐसे गृहों का निर्माण नहीं कर सका है। जिसमें सूर्य की तीखी किरणों से भी अग्नि प्रदीप्त हो जाए। ऐसे गृह का निर्माण उस काल में हुआ। परन्तु वहाँ के देवव्रत उनका जहाँ से प्रवेश उनका वहाँ से निकास हो गया और चन्द्रायण बन में उन्होंने प्रवेश किया। यह वह स्थली है, यह वह पुण्य भूमि है। परन्तु उसके पश्चात् यहाँ न्यायालय भी रहा है। मानस क्षेत्र कहलाती थी। पूज्यपाद गुरुदेव का तो दृष्टिपात किया हुआ है। वाईस लाख प्राणी इस वारणावतपुरी में वास करते थे। उतना क्षेत्र रहा है। कुछ अग्नि के पुख में चला गया। अग्नि भी इस स्थली से लगभग एक वृत्तियों की दूरी से रमण करती थी। जहाँ भूमि प्राचीन काल में लगभग पाँच वृत्तियों (कौसों) में वह प्रवेश किया जाता था। पाँच कोसों की दूरी से यह निदयाँ अपनी गतियाँ करती रहती थीं। आज जब मैं इस के वाक्य प्रकार में जाता हूँ, इस प्रकार की वार्त्ता प्रकट करता हूँ। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! इसी स्थली पर जब महाराजा द्रोण ने शिक्षा दी थी। वह अग्नि के मुखारबिंद में चला गया। अग्नि उसको निगलती चली गई। यहाँ एक शिक्षालय रहा था। कौरव और पाँडव पुत्रों! में दोनों में यहाँ विचार विनिमय होता रहा। जब मैं इस वाक्य को स्मरण करता कि यहाँ न्यायालय रहा है, विचित्रता रही है। तो मेरा अन्तरात्मा गदगद होने लगता है।

हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने कई काल में आपसे वर्णन किया है कि यही भूमि है, यही वह लाक्षागृह कहलाया है जहाँ पाण्डव पुत्रों! के लिए गृह का निर्माण हुआ था। परन्तु यवन काल में श्मशान भूमि बन गई। उससे पूर्व यहाँ शिवालय थे। यहाँ पूजा होती थीं। यज्ञ इत्यादियों की विधि का पठन पाठन होता रहा था। परन्तु उसके पश्चात् यवन काल में यह यवनों के मुखारबिंद में परणित हो गया। यह श्मशान भूमि बन गया। यही शमशान को गृह बनने लगा। जब यह शमशान भूमि बन गया, यहाँ नाना प्रकार के बलात्कार भी होते रहे हैं। मेरी नाना पुत्रियों के श्रृंगारों का हनन भी होता रहा है। मैं उसके ऊपर कोई चर्चा नहीं करूँगा।

अहा! पुनः से मेरे पूज्यपाद गुरुदेव न जाने कौन सा संस्कार उदय हो गया और उदय

होने के पश्चात् पुनः से यह उन्नत होने जा रहा है। जहाँ वेदों का पारायण याग हो रहा हो, चतुर्वेदों के पारायण याग होते हों। यहाँ देखों हर समय याग होता रहता था। वह भी काल था, वह पुण्य भूमि रही है। जहाँ द्रोण याग करते थे। जहाँ महाराजा जन्मेजय और जैमिनि विराजमान हो करके याग करते थे। महाराजा जैमिनि मुनि महाराज ने इस स्थली पर ही दर्शनों की मीमांसा करते हुए अपनी लेखनियों का उपराम दिया। जब मैं इन वाक्यों को ले करके चलता हूँ चन्द्रायण बन में जैमिनि मुनि महाराज ने अपनी लेखनियाँ बद्ध कीं। उन लेखनियों को ले करके आज मैं चलता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि कैसा विचित्र दर्शन है परन्तु आज उस सम्बन्ध में कुछ चर्चा प्रकट नहीं करूँगा।

हे मेरे पुत्रो! मैं आधुनिक प्राणियों को इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि पुनः से इस संसार का उत्थान करना है। पुनः से इस स्थली को ऊँचा बनाना है। क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहा करते हैं कि हे मेरे पुत्रो! यह समाज ऊँचा बने, यह राष्ट्र ऊँचा बने। राष्ट्र भी ऊँचा बनेगा। अग्नियाँ शान्त करके राष्ट्र ऊँचा बन सकता है। उससे पूर्व ऊँचा बनने की विचारधारा मानव के मस्तिष्क में नहीं आ सकती। जब मैं इस वाक्य को ले करके चलता हूँ, मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह कहा है कि आज का जो राष्ट्रीय क्षेत्र है, आधुनिक काल की जो राष्ट्रीय विचारधारा है वह बड़ी विचित्र है। उस राष्ट्रीयता में मानवता का निर्माण होना बहुत अनिवार्य है। हे राष्ट्र के नायकों! आज यदि तुम्हें राष्ट्र को उँःचा बनाना है तो तुम्हारे राष्ट्र में जो यह गो नाम का पशु है, इसका जो हनन होता चला जा रहा है, तुम्हारे राष्ट्र से जो दुग्ध नष्ट होता जा रहा है तो यदि दुग्ध नहीं रहेगा तो तुम्हारे राष्ट्र का प्राण चला जाएगा। इसलिए प्राण नहीं जाना चाहिए। जैसे मानव के शरीर से वीर्यत्व जाने के पश्चात उसकी मृत्यु हो जाती है इसी प्रकार हे राष्ट्र के नायको! यदि तुम्हारे राष्ट्र में चरित्र चला गया जैसे मानवता चली जा रही है यदि ऐसे यह चरित्र नष्ट होता रहा तो एक भी स्थली तुम्हें ऐसी प्राप्त नहीं होगी जहाँ अग्नि प्रदीप्त न हो रही हो।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा था कि चरित्र की आभा को ऊँचा बनाना

चाहिए। यह मायावादी संसार नहीं बनना चाहिए। मायावादी बनने वाला प्राणी संसार में पापी होता है और धर्म और याग को लेने वाला प्राणी संसार में पुण्यवादी होता है। यह वह भूमि है जहाँ वह पवित्रकाल रहा है। इस संसार में कुछ काल से यह मानव, यह समाज रूढ़ियों की स्थली में परणित हो गया है। परन्तु वह काल मुझे स्मरण आता चला जा रहा है जिस काल में राष्ट्र के राष्ट्र में यज्ञों में लगा देते थे। जैसे महाराजा दिलीप की गाथा आती है। महाराजा दिलीप ने अपनी आत्मिक प्रेरणा के सर्वत्र द्रव्य का याग किया। वह द्रव्य का सदुपयोग था। समाज उसके अनुकूल बरतता है। आज जब मैं राष्ट्र के नायकों के समीप जा करके यह उच्चारण करने लगूँ कि तुम संसार में याग करो, महान से महान कर्म करो, तुम्हारा चरित्र ऊँचा रहना चाहिए। जब यह समाज ऊँचा बन सकता है, समाज में महान क्रान्ति आ जाएगी। अश्वमेध याग करने वाला राजा होना चाहिए, अश्व नाम राजा का है और मेघ नाम पूजा का है। जब दोनों मिल करके चरित्र को लाते हैं और चरित्र रूपी याग की स्थापना करते हैं तो उसके अनुकूल यह समाज बनने लगता है। ऐसा बन करके यह समाज क्यों न ऊँचा बने। यह राष्ट्र, यह समाज स्वार्थता से ऊँचा नहीं बनेगा, यह त्याग और तपस्या से ऊँचा बनेगा।

जब मेरी प्यारी माता यहाँ तपस्वी बन जाती हैं, कैसी तपस्विनी होती हैं? जब महात्मा दधीचि के आश्रम में हम पहुँचते हैं और भी अन्य आदि ऋषियों के समीप जाते हैं, तो माता अरुणागति की, माता अनुसूया की और भी नाना चर्चाएँ जब स्मरण आने लगती हैं। उनका कार्य स्मरण आता है तो हृदय गदगद हो जाता है। मैं यह कहा करता हूँ कि हे माता! तू अनुसूया बन। तू अरुणागति बन, तू मन्दालसा बन करके तू अपने पुत्रों! को ऊँचा बना। हे माता! तेरा गर्भाशय यह विद्यालय है, यह शिक्षालय है। यह कैसा शिक्षालय है, तेरी भावना से यह ऊँचा बनता है और यही संसार का उद्धारक बनता है। हे माता! तुझे तो प्रभु! ने आज्ञा दी है कि तू अपने कर्त्तव्य का पालन करके पुत्र को ऊँची शिक्षा दे करके तू समाज को दे। तू परमात्मा के राष्ट्र को त्याग दे, राष्ट्र को ऊँचा बनाना उसका कर्त्तव्य है। माँ तेरे शिक्षालय में जो पुत्र ऊँचा बनता है वही तेरे चरित्र की रक्षा करता है। हे माता! यदि तू अपने गर्भाशय में पुत्र को ऊँचा नहीं बना सकती

तो हो सकता है कि वही तेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक अपने काल में आ करके नाना सुन्दरियों के श्रृङ्गार को हनन न कर जाए। यदि वह नाना श्रृंगारों को हनन करने वाला तेरे गर्भ से पुत्र उत्पन्न हो गया तो माँ इसकी दोषी कौन बनेगी? मानो तू अपने गृह को दूषित बनाती है। राष्ट्र की दोषी बनेगी, अपने गर्भाशय को दूषित बनाती रहती है।

हे मेरे प्यार भद्र मण्डल! आज मैं यह उच्चारण करने आया हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कई काल में प्रकट कराते रहते हैं। जब मैं यह विचार देने के लिए आया हूँ मुझे महाभारत का काल स्मरण आता है। महाभारत के काल में माता कुन्ती अपने पुत्रों का निर्माण कर रही है। माता गान्धरी अपने में विवेक की स्थापना कराती है। परिणाम यह हुआ कि संग्राम की स्थापना बन गई। परन्तु जब मैं त्रेता के काल में जाता हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव के शब्दों की पुनरुक्ति करने लगता हूँ माता कैकेई के समीप उनके वाक्यों पर जाता हूँ तो माता कैकेई के समीप भारद्वाज का आगमन हुआ और भारद्वाज मुनि ने यह कहा था कि इस राष्ट्र की और चरित्र की रक्षा करनी और विज्ञान की रक्षा करनी है और वेद की रक्षा करनी है, समाज को पवित्रता में लाना है तो राम को यहाँ राष्ट्रीय परंपरा की स्थापना (राजा के रूप में) नहीं होनी चाहिए, माता कैकई चारों वेदों को अध्ययन करने वाली विदूषी थी। कौशल्या भी चारों वेदों का अध्ययन करने वाली विदूषी थी। ऋषि मुनियों ने शिक्षा दे करके राम जैसे महापुरुषों का निर्माण किया। जैसा पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट कराया है यह जो शबरी थी यह भारद्वाज मुनि आश्रम में विज्ञान की शिक्षा लेती थी और यही शबरी कुरतुक ऋषि महाराज की कन्या कहलाती थी और यह कुरतुक ऋषि की कन्या भारद्वाज मुनि आश्रम में भयंकर वनों में, उनके द्वारा जितना विज्ञान का कोष था वह उसको ऋषि ने प्रदान किया और यह कहा कि जब राम तेरे समीप आएँगे तो यह कोष राम को प्रदान कर देना। यह जो शबरी थी जिसे हम भीलनी कहते हैं क्यों कहते हैं? क्योंकि वह भारद्वाज मुनि आश्रम से गमन करती है, राम के राष्ट्र में प्रवेश करके शूद्र का कार्य करती रहती है। मानो देखो, वह प्रत्येक वस्तु में गुप्त चरों का कार्य करके राम को अपनी प्रतिभा और अपनी कार्य

कुशलता की सूचक बनी हुई थी। इसी प्रकार जब मैं इन वाक्यों पर आता हूँ कि वह शबरी कैसी थी? वह राम की प्रिय भक्त थी। कैसी भक्त? वह अपने स्पर्श किए फलों को राम को प्रदान करती थी। राम उसको पान करते थे। क्योंकि राम श्रद्धा में ओत प्रोत थे।

मुझे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी मुझे वर्णन कराते हुए कई काल में कहा था। आज मैं राम के काल में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार यह देने आया हूँ कि माता कैकेई ने अपने राम पुत्र को जान करके भयंकर वनों को जाने की आज्ञा दी और यह कहा कि तुम भयंकर वनों में चले जाओ। पिता की मृत्यु तो हानी ही है, आज नहीं तो कल होनी है। परन्तु यह जो अयोध्या के लाखों प्राणी त्राही त्राही करेंगे इनकी सुरक्षा होनी चाहिए। इनके प्राणों की रक्षा होनी चाहिए, ऐसा उन्होंने कहा।

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करने आया हूँ कि आज का जो समाज है, आज का जो राष्ट्र है वह व्यक्तिवाद से दूर होता हुआ कहाँ जा रहा है? अरे, तुम साहित्य की ही घोषणा करते हो, साहित्य को तो यह कहते हो कि राम और महाभारत का काल नहीं हुआ है। परन्तु जब हम यह घोषणा करते हैं कि एक हजारवें जो तुम्हारे पड़ पिता थे वह संसार में नहीं, तुम भूमि पर कैसे आ गए? उस समय का कोई उत्तर प्राप्त नहीं होगा, यह कैवल नवीन कल्पना करता रहता है। रहा यह कि आज कामानव यह कहता है कि विज्ञान नहीं था। यह कैवल कल्पना कही जाती है। तुम अपने वेद और शास्त्रों की एक धर्म की चर्चा करते हो, एक विडम्बना रचते रहते हो। जब मैं इन वाक्यों पर जाता हूँ तो मैं यह कहा करता हूँ कि हे भोले प्राणियो! मैं क्या उच्चारण करूँ! जैन काल शनैः शनैः आ रहा है। अपनी पद्धति पर वैदिक पद्धति पर तो आ जाएगा। परन्तु जब साहित्य ही अग्नि के मुखारबिंद में कर दिया तो आने से बनता क्या है? आज मैं इस वाक्य को कष्ट में ही उच्चारण कर रहा हूँ। कोई बात नहीं। इस मुहम्मद के मानने वाले प्राणियों ने वैदिक साहित्य को इतिहास को अग्नि के मुखारविंद में परणित कर दिया। अरे, अब वह साहित्य चला गया तो मैं तुम्हें क्या प्रमाण दूँ।

यहाँ अग्नि विद्या पर नाना प्रकार की पोथियाँ थीं। जब अग्नि विद्या पर लेखनी बद्ध करने

लगे तो उनके नाना याग से अग्नि विद्या के ऊपर नाना पोथियाँ थीं। परन्तु वे पोथियाँ अग्नि के मुखारविंद में चली गईं। उन पोथियों में अग्नि विद्या पर क्या, हम वैज्ञानिक यन्त्रों में विराजमान हो करके सूर्य की किरणों के साथ में यान गमन करता है। और वह यान सूर्य मण्डल में चला जाता है। ऐसा यान उनके द्वारा (समीप) था। वे उस विद्या को जानते थे। वह सूर्य विद्या को अपने मुखारविंद में स्थापित किए हुए थे। उस विद्या को अपने मुख में धारण करते थे। आज जब उन वाक्यों को मैं विचार विनिमय करने लगता हूँ कि हमारा जो मानवीय जीवन है वह कैसा बनता जा रहा है। आज जब मैं यह विचारता हूँ कि यहाँ जैमिनी हुए हैं, कणांद हुए हैं और व्यास हुए हैं और भी ऋषि हुए हैं अरे, उन दर्शकों को तुम अध्ययन करो, चिन्तन करो जिससे तुम्हें विज्ञान की आभा प्राप्त होगी। एक एक वेदमन्त्र को विचारने वाले बनो। अरे, एक एक वेदमन्त्र को विचार कर तुम्हें विज्ञान उसके गर्भ में प्राप्त होगा।

आज मैं इन वाक्यों की पुनरुक्ति देने नहीं आया हूँ। आज हम इस मानवीय जीवन को ऊँचा बनाना चाहते हैं। हे राष्ट्र के नायको! यदि तुम इस समाज को ऊँचा नहीं बना सकते तो तुम्हारा जो कर्त्तव्य है कि तुम्हें राष्ट्र की प्रणाली को और ऊर्ध्व में बनानी चाहिए। यह समाज स्वार्थवाद से ऊँचा नहीं बनेगा। अरे, राष्ट्र का तो कर्त्तव्य है कि राष्ट्र में रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। यौगिकता रहनी चाहिए अथवा धर्म और मानवता रहनी चाहिए। मानवता की घोषणा करने वाला प्राणी यह विचारता है कि मैं मानवता की घोषणा करूँ! अरे, मानवता है क्या? जो मननशील हो वही मानव है। मानव वही है जो दूसरां के ऊपर दया करने वाला हो। मानव वही कहलाता है जो अपनी मानवता को ऊँचा और अपने कर्त्तव्य का पालन करता चला जाए। कर्त्तव्यता का नाम धर्म है। वही धर्म है जो धर्म मानवीय इन्द्रियों में समाहित रहता है। उस धर्म की पद्धति को धारण करना चाहिए।

आज जब मैं इन वाक्यों को ले करके और भी गम्भीरता में जाता हूँ समाज के गर्भ में परणित होता हूँ तो वह काल दूर नहीं है जब समाज में अग्नि का प्रवेश हो जाएगा और यह समाज अग्नि के मुख में परणित होता चला जाएगा। आज अब मैं धर्म और

मानवता के ऊपर विचारने लगता हूँ, रूढ़ियों में प्रवेश करता हूँ तो यह कहा करता हूँ कि हे सर्व धर्म के जानने वालो! आज तुम्हारा कर्त्तव्य है कि विचारो कि धर्म क्या है? धर्म के आचार्य प्रत्येक रूढ़ियों के आचार्य धर्म के क्षेत्र में आ करके धर्म की चर्चा करने वाले बनो और मानवीय धर्म क्या है! जो मानव मानवत्व को ऊँचा बनाने वाला हो। जिसमें यौगिकता हो। मानवत्व हो, महत्ता हो, पवित्रता हो, ओजस्विता हो, प्राणतत्व हो जो अग्नि के काण्ड से मानव को दूर कर सके।

हे मेरे पूज्यपाद! आज मैं यह क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ। मैं यज्ञों के आयोजनों को दृष्टिपात कर रहा था। कर्म काण्ड से युक्त होते हुए। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते हैं कि न करने से कुछ करना प्रियतम है। परन्तु यज्ञों की पद्धतियाँ विचित्र हैं। महान हैं। याग से वातावरण सुगन्धित हो रहा है। वायु मण्डल में तरंगें ओत प्रोत हो रही हैं। द्यु लोक को जा रही हैं। अरे, इससे द्यु लोक ऊँचा बनता है, देवताओं के लोक में प्रवेश करता है। मैं आज यज्ञमानों पर आना चाहता हूँ। हे यज्ञमान! आज तेरी मन की प्रवृत्ति महान रहनी चाहिए। मैं नाना वैज्ञानिकों की चर्चाएँ करता रहता हूँ। यज्ञमान कौन होता है। यज्ञः सबसे ऊँचा यज्ञमान तो मेरा देव प्रभु ही है, जो संसार को इस सृष्टि रूपी मार्ग का निर्माण अथवा इसको संचालन कर रहा है। इसमें भिन्न भिन्न आहुति दी जा रही हैं। अरे, सबसे ऊँचा तो यज्ञमान चैतन्य देव है। परन्तु जो यज्ञमान होता है जो याग करता है, देव पूजा करता है, अग्नि की स्थापना करता है, अग्नि की स्थापना करने से अपने अन्तःकरण को आहार और व्यवहार से इस प्रकार का शुद्ध और पवित्र बनाना चाहिए। जैसे अग्नि का स्वरूप। जिसको तुम अग्न्याधान करना चाहते हो, ऐसे ही तुम श्रद्धा की अग्नि को जागरूक करो और पूजा करने वाले बनो। तो यह याग और तुम्हारी मानवता और जो तुम्हारी इच्छाओं का याग है वह पूर्ण होगा अन्यथा नहीं होगा।

जब मैं यह विचारने लगा हूँ कि यज्ञमान बनने के पश्चात यदि उसके चरित्र में मानवता नहीं आती है तो यज्ञमानों का सदैव अनिष्ट होता रहता है। अरे, उन यज्ञों पर विराजमान होने का कोई लाभ नहीं। अरे, देवता तो ग्रहण करते रहते हैं, वह तो शोधन अवश्य करेंगे। वेद के यज्ञमान बनने वालों! तुम अपने जीवन को ऊँचा बनाओ कि जिस समय

तुम यज्ञ पर विराजमान हो जाओ उस समय पराई देवी पत्नी ब्रह्मे वृताः परादेवी और अपने विचारों और आहारों का शोधन करने का प्रयास होना ही चाहिए मुझे वह काल स्मरण है जब एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने सुधनवा नामक वैज्ञानिक से एक याग कराया था और वह जब याग हुआ था तो गुरुदेव में उसके अंतःकरण में प्रवेश करके यह कहा कि हे यज्ञमान! तेरे अन्तःकरण में तो पवित्रता है परन्तु तेरा अहारव ब्रह्मे उस समय उन्होंने कहा कि भगवन! हे ब्रह्मणे! मैं यह निश्चय कर चुका हूँ अपने वैज्ञानिक यन्त्रों से, मैं विज्ञान से यह सिद्ध कर सकता हूँ कि मेरे आहार और व्यवहार में पवित्रता है। मैंने विज्ञान से सिद्ध किया है कि अशुद्धता से क्या क्या अनिष्ट होते हैं? परन्तु जब याग हुआ तो याग से और ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो गए। यौगिक अर्थों में चले गए। इसी प्रकार जब मैं इन वाक्यों को ले करके चलता हूँ और भी नाना वैज्ञानिकों की चर्चाएँ लेकर के चलता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय महाराज त्रीककैतु राजा से जब वृष्टि याग का आयोजन कराया, वृष्टि याग हुआ तो उस याग के पश्चात वृष्टि प्रारम्भ होने लगी। महत्ता आ गई। पवित्रता आ गई। परन्तु उनका शोधन किया। शोधन करने के पश्चात् जो याग होते हैं उन यागों में पवित्रता आती है। यागों में अश्रद्धा नहीं होती, राष्ट्र, राष्ट्र, समाज के समान ऊँचे बनते हैं।

आज देखो, यह परमात्मा का याग हो रहा है तुम भी याज्ञिक बनो। प्रत्येक मानव को याग करना चाहिए। जब यह प्रत्येक प्राणी याग करता था, न संग्राम होते थे न रक्त भरी क्रान्तियाँ आती थीं। रक्त भरी क्रान्ति उस काल में आती हैं जब प्राणी कर्त्तव्यों को नष्ट कर देता है। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह प्रार्थना करने के लिए आया हूँ कि आज यज्ञमान को ऊँचा बनना है। वैज्ञानिकों को ऊँचा बनना है। आज का वैज्ञानिक यह कहता है कि पूर्व काल में विज्ञान नहीं था। मैंने पुरातन काल में यह कहा है आज का वैज्ञानिक तो कैवल चन्द्रमा की यात्रा करसका है। परन्तु जब ध्रुव वैज्ञानिक इसको पार कर जाते हैं तो वह ध्रुव की यात्रा करता है। जब यहाँ ब्रह्मचारी सुकैता की चर्चा आती है, भार द्वाज की चर्चाएँ आती हैं। मानो वह एक मन्त्र में विराजमान हो करके एक ही यन्त्र से वह चन्द्रमा में जा रहा है, उसी यन्त्र से वह बुद्ध में जा रहा है,

उसी यन्त्र से वह मंगल में जा रहा है, उसी से वह शुक्र में जा रहा है, मानो देखो, एक यन्त्र से वह 72 लोकों का वह भ्रमण कर रहा है। इस प्रकार का विज्ञान रहा था, यह मानवीय मस्तिष्कों का विज्ञान है। परम्परा से इसको जानने का प्राणियों को अधिकार रहा है।

आज का प्राणी यह कहता है कि मानव का विकास हुआ है। अरे, मानव का विकास तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही है और वह क्यों है? क्योंकि वही तो आत्मा थी जो पूर्व काल में आत्मा थी अरे, वही तो विकास वाली आत्मा जैसा जिसका कर्म फल था उसी के अनुसार उसे योनि प्राप्त हो गई। और उसी योनी के प्राप्त होने से वह नाना प्रकार का विकासवाद से प्रारम्भ है। आज कोई मानव यह कहता है कि मानव का विकास यह है। परन्तु वह वास्तव में विचारक नहीं है। उसे विचारना चाहिए कि यदि मानव का विकास यहाँ माना गया और तो वह कहाँ से आया? उन्होंने तो पशुओं से मानव का विकास माना है। परन्तु यह अशुद्ध है। ज्ञान के क्षेत्र में जब पहुँचोगे और गम्भीर विज्ञान में जाओगे तो यह सब वस्तु तुम्हें प्राप्त होंगी। आज का मानव समाज याग जैसे ऊँचे कर्मों का पाखण्ड कहता है। अरे, तुम्हारा आहार इतना अशुद्ध हो गया, उस (आहार) को पाखण्ड नहीं कहता प्राणी। यह कितना दुर्भाग्य है इस समाज का। आपके राष्ट्रवाद में मानवता की स्थापना है और मानवता उस काल में आती है, जब राष्ट्र की पद्धति ऊँची बनेगी। आज का हमारा जो मन्तव्य है कि हे यज्ञमान! तेरा जीवन ऊँचा बने। जीवन का सौभाग्य अखण्ड रहे। मानवता ऊँची आए और ऐसे ऐसे याग होते रहें महान से महान कर्म होते रहें। जिससे समाज का विकास हो जाए। अब मैं अपने पूज्यपाद से आज्ञा पा ऊँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः धन्य हो! मेरे महानन्द जी ने अपने कुछ संक्षिप्त विचार प्रकट किए। इन संक्षिप्त विचारों में इनके महान से महान उद्गार रहे। आज विचार इनका प्रिय लग रहा था, समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा।

२० अतिथि 011 पुष्प 33 महानन्द जी की प्रेरणा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रें का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने जिन वेद मन्त्रें का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परंपरा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है उस महिमावादी का गुणगान गाने के लिए सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओत प्रोत रहता है क्योंकि उसका ज्ञान और विज्ञान इतना महान् और विचित्रतव में माना जाता है, जिसका गुणगान गाने के लिए प्रत्येक प्राणी तत्पर रहता है।

आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा था और किस प्रेरणा को देता चला जा रहा था? जीवन को महान् बनाने की यह प्रेरणा देता चला जा रहा था, जिससे मानव का जीवन वर्चस्वी बनता है, तेजोमय बनता है और आग्नेय बनता है। आज के हमारे वेद पाठ में अग्नि के ऊपर भिन्न भिन्न प्रकार की तरंगों का वर्णन आ रहा था। यह अग्नि कितनी दिव्य है। वेद का ऋषि तो कह रहा था कि संसार में सर्वोपरि अग्नि ही है। इस अग्नि के ऊपर अनुसन्धान वेत्ताओं ने भिन्न भिन्न प्रकार के विचार दिए हैं। आज मैं उन विचारों में नहीं जाऊँगा।

आज का हमारा वेदमन्त्र यह कहता है कि हे मानव! तू ओजस्वी बन और आग्नेय के लिए सदैव तत्पर रह। क्योंकि तेरा जीवन अग्निमय कहलाता है। यह अग्निमय जीवन है जो मानव गति करता है, वह अग्नि की आभा में ओत प्रोत हो रही है। परन्तु आज मैं अग्नि के सम्बन्ध में अपना गम्भीर विचार देने के लिए नहीं आया हूँ। केवल यह उच्चारण करने आया हूँ कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्त्तमान काल तक उस प्रभु का, जो यज्ञमय माना गया है, जिसका यह संसार यज्ञमय, तेजोमय कहलाता है, अमृत पान करने के लिए आए हैं। यह जो ब्रह्माण्ड, जो हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह उस मेरे प्यारे! प्रभु की एक यज्ञशाला है। इस यज्ञशाला में होता गण, अध्वर्यु विद्यमान हैं, यज्ञमान विद्यमान हैं।

यह कैसा ब्रह्माण्ड है पुत्रें! इस ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञशाला का जो होता है, वे पञ्च महाभूत कहलाते है। वे आहुति दे रहे हैं। किसके लिए? यज्ञमान के लिए, आत्मा के लिए। तो यह संसार एक प्रकार की बेटा! आत्महवि कहलाता है। जिस हवि को पान करके मानव

की अन्तरात्मा तृप्त होती है। देवता जनों को यह पवित्र बनाता है। यह मौन हमें निर्णय दे रहा है, प्रेरणा दे रहा है, कि आत्मा के भोजन को पान करें? बेटा! वह वेद साहित्य है। वेद का एक एक मन्त्र यज्ञगाथा गाता ही चला जा रहा है। मानव जब उसके ऊपर चिन्तन करता है, मनन करता है तो यज्ञ उसमें ओत प्रोत हो जाता है।

जो उद्गाता बन करके बेटा! उद्गान गा रहा है वह सूर्य कहलाता है। कैसा तेजोमय गान गा रहा है। रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार की वनस्पतियों को तपा रहा है। पृथ्वी के गर्भ स्थल में नाना खनिजों को तपा रहा है। अरे, वह कैसा उद्गान गा रहा है? आज हमें उस उद्गम उद्गातानम् ब्रह्मे लोकः। हमें उस उद्गाता के स्वरूप को जान करके हमें तेजोमय बनना है। अपने तेज को अपनाना है। अब मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं करूंगा। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ विचार व्यक्त करेंगे अपनी कटुता को त्यागते हुए। क्योंकि उनके विचारों में यह दोष रहता है, परन्तु तेजोमय रहता है। उनके हृदय में एक वेदना है, इस वेदना को कौन पूर्ण करेगा? इस को प्रभु ही जानता है। अब मैं अपने विचारों को विराम देना चाहता हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ विचार व्यक्त करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यशशचाः प्रतेषु सर्वम् मयाः होताः तनु गात्रणी विशश्चम् दिव्याम् लोकाम् ब्राह्मणाम् श्चक्रतम् देवोः उड़ा रथं यज्ञं यज्ञ गच्छम् योगी गच्छम् यज्ञां वीरेज्ञ रूपां वृथश्चम् दिव्यां होता! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे मानव समाज! हमारी जो यह आकाश वाणी जा रही है उसका उस स्थली पर प्रसारण हो रहा है जहाँ मैं यज्ञ की महिमा को दृष्टिपात कर रहा था। यज्ञमान अपनी आभा में यज्ञ में परणित हो रहा है। आज मैं उस ब्राह्मणत्व जिनका हृदय सदैव धर्म और मानवता में पिरोया हुआ रहता है उसको दृष्टिपात कर रहा हूँ। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, यह मेरी कामना है। जीवन के सौभाग्य की अखण्डता का अभिप्राय केवल यह है कि मेरे हृदय में सदैव द्रव्य के सदुपयोग की प्रेरणा जागरूक रहे, और यह तेरे हृदय में छवि बन करके अग्नि प्रदीप्त बन करके रहे। क्योंकि उस अखण्डता की अमूल्या देवी हैं, वह यह ब्रह्माण्ड प्रभु का जगत् माना जाता है। रहा यह वाक्य कि हे यज्ञमान!

तेरे जीवन में सदैव अग्निमयी महिमा का उदय होता रहे।

इसके पश्चात् हे ब्राह्मण! तेरी वाणी में सदैव वेदमन्त्र नृत्य करते रहें।जैसे सूर्य के समीप नाना किरणें होती हैं और सायंकाल में वे किरणें सूर्य के गर्भ में सिमिट जाती हैं इसी प्रकार तेरे वेदमन्त्र की जो रश्मियां हैं, वे तेरे में सिमिटने वाली रहें। जब तू उद्गान गाना चाहे तो सूर्य की भांति प्रकाश देने वाली हों। ऐसा मेरा सदैव विचार रहता है। मुझे ऐसी सदैव प्रेरणा प्राप्त होती रहती है कि तेरी मनोकामना इस संसार के लिए धर्म के मर्म को जानने वाले प्राणियों के लिए सदैव तत्पर रहनी चाहिए। हे उद्गाताओं तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। नम्रता और द्रव्य का सदुपयोग तुम्हारे गृह में होता रहे। धर्म की रक्षा करने वाले की धर्म रक्षा करता है। धर्म किसे कहते हैं? जहाँ व्यापकवाद हो। यज्ञ से व्यापक कोई शब्द नहीं है। परन्तु वास्तविक कर्म काण्ड की आभा गम्भीरता में नहीं रह पाती। मैं यह कहा करता हूँ कि न करने से कुछ करना बहुत प्रिय माना जाता है। मैं इस कर्म काण्ड के सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। होताजनों के कैसे विचार हों, कैसे उद्गाता हो, ब्रह्मा कैसा हो इस सम्बन्ध में मैं अपने कोई विचार नहीं देना चाहता हूँ।

विचार यह देने के लिए आया हूँ कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा था कि कटुता को प्रायः समाप्त कर देना चाहिए। मैं सदैव यह कहा करता हूँ कि जितनी भी मानव सत्यवादी होता है और सत्य उच्चारण करता है, रूढ़ियों को समाप्त करने की चर्चा करता है तो उसका सत्य कठोरता में दृष्टिपात आता है। यह परम्परा का वाक्य है, कोई नवीन वाक्य नहीं है। जब मैं आधुनिक काल के सत्य वाक्यों की चर्चा करता हूँ तो वे प्राणियों को कठोरता में दृष्टिपात आते हैं। कठोर शब्द उस काल में भी बनता है जब विद्या का अभाव हो जाता है। विद्या के अभाव होने से भी मानव को सत्य में कठोरता प्रतीत होता है। एक वह प्राणी कठोरता अनुभव करता है जिस मानव की कथनी और करनी में अन्तर्द्वन्द्व होता है। और भी कई प्रकार के कठोर होते हैं। इस सम्बन्ध में मैं कोई चर्चा देना नहीं चाहता हूँ।

आज मैं पूज्यपाद गुरु देव की आज्ञानुसार अपने वाक्य प्रकट करना चाहता हूँ। आधुनिक

काल के विज्ञान की चर्चा प्रकट करना चाहता हूँ। अभी कुछ समय समाप्त हुआ है जब आधुनिक काल में वैज्ञानिकों का एक समूह विद्यमान हुआ। आधुनिक काल का वैज्ञानिक एक यन्त्र का निर्माण कर रहा है जिस यन्त्र में उन्होंने जितने भी विषैले परमाणु है उन विषैले परमाणुओं को एकत्र करने का प्रयास कर रहे हैं। उसका कुछ परीक्षण भी हो गया है। उनका कथन है कि प्रायः उसमें इतनी शक्ति है कि जिस समय उस यन्त्र का प्रहार किया जाएगा तो इस आधी पृथ्वी के गृह तो ज्यों के त्यों रहेंगे, परन्तु प्राणी एक भी नहीं रहेगा। ऐसे यन्त्रें का निर्माण हो रहा है। इस सम्बन्ध में मैं केवल यह उच्चारण करने जा रहा हूँ कि आधुनिक काल का प्राणी कहता है कि इस प्रकार का यन्त्र आज तक किसी ने नहीं जाना। आज का वैज्ञानिक मानव के इस विकासवाद को स्वीकार कर रहा है। परन्तु जब इसमें यह विचार विनिमय करते हैं कि यह विज्ञान आया कहाँ से। सबसे प्रथम तो यह वाक्य उच्चारण करना है।

महाराजा जन्मेजय ने एक राष्ट्र का निर्माण किया था। उसमें वेदों की विद्या चली गई। आधुनिक काल में उस राष्ट्र को जर्मनी कहा जाता है। उस राष्ट्र में सबसे प्रथम विज्ञान था। आधुनिक जगत् में वैज्ञानिक तत्त्वों को जानने की मानव को उत्सुकता उत्पन्न हुई। वह विज्ञान प्रत्येक राष्ट्र में चला गया। वह विज्ञान ही नृत्य कर रहा है। इससे सिद्ध होता है कि वेद का एक एक जो मन्त्र है वह विज्ञान की गाथा गा रहा है, वह विज्ञान में ही रमण कर रहा है। परन्तु मैं तुम्हें साहित्यिक विचारों में भी नहीं ले जाऊँगा।

आधुनिक काल का वैज्ञानिक नाना प्रकार के यन्त्रें का आविष्कार कर रहा है और कहता है कि आधुनिक जो विकास है वो नाना प्रकार की चित्रवलियां हैं, जिसमें मानव कहीं उच्चारण कर रहा है और उसका चित्र भी आ रहा है, शब्द कहीं से कहीं आभासित हो रहा है। मैंने पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि यह कोई नवीन वाक्य नहीं है, आश्चर्य का वाक्य नहीं है। आधुनिक काल का वैज्ञानिक कहता है कि हम निरोध करके, एक माता पिता के रजसत्व वीर्यत्व को ले करके यन्त्र में एक बालक का निर्माण हो रहा है, वह जीवित क्रीड़ा कर रहा है। वायु मण्डल की तरंगें आते ही उसका समापन भी हो गया। परिणाम क्या कि यह कहता है कि हम इस विकासवाद और प्रत्यक्षवाद

में ही रमण कर रहे हैं। मैंने इससे पूर्वकाल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराया था कि यह कोई वाक्य नहीं। पृथ्वी के नाना प्रकार के खनिजों को वैज्ञानिकों ने जाना है, नाना प्रकार की धातुओं का विकास किया, चन्द्र मण्डलों में नाना प्रकार की तरंगों में गति कर रहा है, आधुनिक काल का मानव चन्द्रमा की यात्र कर रहा है। उनका यान जब प्रथम चन्द्रमा के आँगन में पहुंचा तो वह वहाँ से पार्थिव तत्त्व ले करके आए। परन्तु और आगे जाने का साहस नहीं बन पाया। जब अन्य यान अथवा वैज्ञानिक वहाँ पहुंचेंगे तो इन्हें वहाँ जलाशय प्रतीत होंगे और जहाँ जलाशय होते हैं वहाँ वायु होती है, वहाँ प्राणी अवश्य होता है यह निश्चित वाक्य है। आधुनिक काल का चन्द्र यात्री कहता है किचन्द्रमा में प्राणी नहीं है। चन्द्रमा में मानव नहीं है। मैं यह कहता हूँ कि जहाँ पार्थिव तत्त्व है, जहाँ जलाशय प्रतीत होते होंगे वहाँ प्राणी अवश्य होगा। यह निश्चित वाक्य है। कोई द्वितीय वाक्य नहीं। क्योंकि पार्थिव तत्त्व और जल दोनों का समावेश इस प्रकार का है कि प्राणी की उत्पत्ति हो जाती है और जहाँ वायु हो वहाँ मानव की उत्पत्ति होती है। यह द्वितीय वाक्य है कि वहाँ किसी भी तत्त्व वाला प्राणी रहता हो। जैसे सूर्य मण्डल में अग्नि तत्त्व प्रधान प्राणी रहता है, ध्रुव मण्डल में वायु और जल वाला प्राणी रहता है। बृहस्पति मण्डल में अप्रताप और पृथ्वी तत्त्व वाला प्राणी रहता है। मंगल में पार्थिव तत्त्व प्राणी रहता है।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में वर्णन कराया। आज मैं इन विचारों में विशेषता देना नहीं चाहता। यह तो मैंने आधुनिक काल के वैज्ञानिकों की चर्चा की है कि पृथ्वी के गर्भ में कितना धातु है, कितनी दूरी पर है, यह पूर्ण रूप से नहीं जान पाया आज का वैज्ञानिक। एक खनिज को जाना है, उसके द्वितीय खनिज को नहीं जाना कि निचले विभाग में कौन सा खनिज है। उसको नहीं जाना और न ही दृष्टिपात हुआ परन्तु प्रयास हो रहा है, निर्धारित किया जा रहा है। अब मैं तुम्हें नाना प्रकार के यन्त्रों की चर्चाएं प्रकट कर रहा हूँ जिससे राष्ट्र के राष्ट्र भस्म हो जाएं। अनुसन्धान में युक्त रहने वाले जो विज्ञानमयी तरंगें हैं वे तरंगें शब्दों तक सीमित रहती हैं। यह वैज्ञानिक जानता है कि शब्द अन्तरिक्ष में गति करता है। शब्दों का जो वाहन है वह

अग्नि है। कहाँ वेद के मन्त्रों में आता है शब्दोमयी शब्दोमयीवहान रथि अग्निः। मानो शब्द का जो वाहन माना जाता है वह अग्नि है। प्रभु का वाहन भी अग्नि ही माना जाता है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन कराया कि आधुनिक काल के विज्ञान के गम्भीरता के तथ्यों में नहीं जाऊँगा यह तो मुझे पूज्यपाद आज्ञा देंगे तो यह वाक्य किसी काल में उच्चारण करूंगा। यह तो केवल स्थूलता में ले करके वर्णन करा रहा हूँ। आज वैज्ञानिक ने अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के निचले कक्ष में कुछ यानों का प्रादुर्भाव किया है, जो गति कर रहा है, परिक्रमा कर रहा है। आधुनिक काल के विज्ञान की यह मैंने भूमिका बनाई है, जो हमें दृष्टिपात आ रहा है। परन्तु यह विज्ञान गोपनीय रहना चाहिए। गोपनीय क्यों रहना चाहिए क्योंकि बाह्य जगत् होते ही मानव विज्ञान का दुरूपयोग करना प्रारम्भ कर देता है। जब विज्ञान का दुरूपयोग होता है तो रक्त भरी क्रान्ति आती है। सर्वत्र ऋषि मुनियों ने विज्ञान को गोपनीय धाराओं में तरंगित किया है। यही अन्तर है आधुनिक काल के विज्ञान में और पूर्व के विज्ञान में। पूर्व का विज्ञान प्रत्येक ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में रहा है और आधुनिक काल का जो विज्ञान है यह विद्यार्थियों के मस्तिष्कों में रह करके उस विज्ञान का दुरूपयोग होता रहता है। जिससे मानव का चरित्र भ्रष्ट हो रहा है। उससे मानव में ब्रह्मचर्य नहीं रहा है, कर्त्तव्यवाद की विहीनता हो रही है, कर्त्तव्यवाद नहीं रहा है। यह उस विज्ञान और इस विज्ञान में अंतर्द्वन्द्व माना गया है। पूर्व का विज्ञान गोपनीय विषय रहकर मस्तिष्कों में रहा है। उसको ऊर्ध्व बनाने के लिए कुछ ऋषियों ने इसकी व्याख्याएं की हैं। वैज्ञानिक दर्शन के रचयिताओं ने उन्हें पोथियों में नियुक्त कर दिया है परमात्मा के विषय को पोथियों में नियुक्त कर दिया है। जब मैं यह विचारने लगता हूँ कि वास्तव में इस प्रकार का विज्ञान परम्परा में रहा है। आओ मैं तुम्हें त्रेता के काल के भौतिकवाद विज्ञान में ले जाना चाहता हूँ। त्रेता के काल में जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है वहाँ से लगभग पचास योजन की दूरी पर एक आश्रम था। जिस आश्रम में घटोत्कच और भीम दोनों अपनी विज्ञानशाला में विद्यमान रहते थे। एक विज्ञानशाला उनकी उस स्थली पर थी, एक विज्ञानशाला वारणावत क्षेत्र में कहलाती थी। परन्तु एक विज्ञानशाला समुद्र तट पर रहती थी। जहाँ

प्रायः अनुसन्धान करते थे। अनुसन्धानशालाओं में विद्यमान हो करके अपने यानों का प्रादुर्भाव करते थे। उनके नाना यन्त्र, चन्द्रमा के उपरले कक्ष में गति कर रहे हैं। आज के वैज्ञानिकों के वायु मण्डल में जो यान गति कर रहा है उसकी तीन हजार वर्षों की आयु है और घटोत्कच के यान की आयु एक लाख पच्चीस हजार है, जो गति कर रहा है। चन्द्रमा की परिक्रमा करता रहेगा। वह विज्ञान इतना शक्तिशाली है कि आज के विज्ञान से मिलान किया जाता है तो यह विज्ञान नष्ट होने के तुल्य माना जाता है, और उस यन्त्र का आज का वैज्ञानिक यन्त्र कुछ नहीं कर पाता इस प्रकार की शक्तिशाली उनकी धातु है।

मैंने अभी अभी पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण किया था कि आधुनिक जगत् के पृथ्वी मण्डल के वैज्ञानिकों का यान जब चन्द्रमा के कक्ष में गति कर रहा था और जब मानव कक्ष में जाने वाला था तो वह जो घटोत्कच का यान था, दोनों का समन्वय हो गया तो उस यान को नीचे लाना पड़ा और घटोत्कच का यान चन्द्रमा के कक्ष में गति करता रहा। इस प्रकार का विज्ञान परंपरा का माना जाता है।

देव ऋषि नारद मुनि महाराज का नामकरण इस संसार में कौन नहीं जानता। उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव उनकी विज्ञानशाला में यानों का निर्माण करता रहता था। वह अपने यान में विद्यमान हो करके ध्रुव की यात्र करता था। जबकि आज का वैज्ञानिक चन्द्रमा और मंगल की यात्र कर पाया है। सहस्रों चन्द्रमा ध्रुव की परिक्रमा करते हैं। इतना बड़ा ध्रुव मण्डल है। उसमें महात्मा ध्रुव अपने यान से यातायात किया करता था। ऐसा वैज्ञानिक आज कहा से तुम्हें प्राप्त कराऊँ केवल इतना उच्चारण करूंगा कि कितना ऊर्ध्व वाला विज्ञान रहा है।

भारद्वाज की विज्ञानशाला में भगवान् राम विद्यमान हैं, लक्ष्मण विद्यमान हैं। और ब्रह्मचारी सुकेता, देव ऋषि नारद मुनि महाराज विद्यमान हैं। चारों ने भारद्वाज की अध्यक्षता में एक गोष्ठी की और विचारा कि अन्तरिक्ष में ऊर्ध्व गति वाले यान का निर्माण कर सकते हैं, तो ब्रह्मचारी सुकेता एक यान में विद्यमान हो गए, ब्रह्मचारी कजली वेश और ब्रह्मचारी रोहणी केतु तीनों यान में विद्यमान हो करके पृथ्वी से उड़ान उड़ी और लगभग ढाई

घड़ी में चन्द्रमा में चला गया। और ढाई घड़ी चन्द्रमा में जाने के पश्चात् वही यान ढाई घड़ी में बृहस्पति मण्डल में पहुंच गया और ढाई घड़ी के पश्चात् वह मंगल में चला गया और मंगल की उड़ान उड़कर अंडज में चला गया। परिणाम यह कि वह यान 72 लोकों का भ्रमण करके भारद्वाज की विज्ञानशाला में आ गया। यह विज्ञान हमारे ऋषि मुनियों के मस्तिष्क में ही नहीं, परन्तु क्रिया में रहता था। यह राष्ट्र की सम्पदा बन करके रहता था। क्योंकि विज्ञान राष्ट्र की एक सम्पदा है। राष्ट्र विज्ञान के ऊपर स्थिर रहता है। इस प्रकार का विज्ञान परम्परा से मानवीय मस्तिष्कों में रहा है, ऋषि मुनियों की आभा में रहा है। आज का वैज्ञानिक यन्त्र पृथ्वी के गर्भ में जाने के लिए तत्पर है, पृथ्वी के कुछ गर्भ को जाना है। परन्तु जब भगवान् राम भारद्वाज की विज्ञानशाला में विद्यमान थे, उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था जिसको अहल्या प्रीति कृतिमा यन्त्र कहते थे। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि पृथ्वी के निचले गर्भ में दस दस योजना को उस यन्त्र में दृष्टिपात कर लेते थे कि कितनी दूरी पर कौन कौन धातु है।

परिणाम क्या कि विज्ञान परम्परा से इस आभा में ऋषि मुनियों और वैदिक साहित्य में वेद मन्त्रें में नृथ्वी करता रहा है। आज इस विषय में मैं विशेष चर्चा करना नहीं चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ यह विज्ञान आभा ही बन करके रहता है। विज्ञान परंपरा से मस्तिष्कों में ओत प्रोत रहा है। ऋषि मुनियों के जीवन में रहा है माताओं के गर्भ स्थलों में रहा है। आधुनिक काल में उस विज्ञान ने अधिकारीको अनाधिकारी बना दिया है। आज के विज्ञान ने क्या कियाहै? नाना प्रकार की चित्रवलियों का निर्माण किया है। इन चित्रवलियों में करते क्या है? इनमें नाना प्रकार की नृत्यावलियों के नृत्य होते रहते हैं। जिस रजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियां नृत्य करके अपने उदर की पूर्ति करती हैं ऐसे राष्ट्र को नष्ट क्यों नहीं कर देता है। इन चित्रवलियों में मैं जब दृष्टिपात करता हूँ तो नाना प्रकार के नृत्य होते हैं। आज का ब्रह्मचारी जब विद्यालय को जाता है तो नृत्यों के क्षेत्र में चला जाता है। वहाँ उसका ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है, शक्ति समाप्त हो जाती है। विज्ञान कहाँ रह गया मस्तिष्कों में। आज के मानव के

चरित्र में चरित्र की आभा एवं गम्भीरता नहीं है।
आज इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं देना चाहता हूँ। विचार तुम्हें यह देना है कि पुरातन का ब्रह्मचारी सुकेता विद्यालय से आते थे, तो विज्ञानशाला में ओत प्रोत हो जाते थे। वैज्ञानिक यन्त्रें को अपने में रमण करने लगते थे। जितना भी विद्यार्थी वर्ग था, छात्र था वह छात्र अपने छात्रलयों में अपने मानवीय जीवन को, ब्रह्मचर्य को जिससे ओज उत्पन्न होता है उसे ऊँचा बना रहा है, सात्विक पदार्थों का पान कर रहा है। परन्तु आज का ब्रह्मचारी क्या कर रहा है? तामसिक पदार्थों का पान कर रहा है और पान करके नर्तकियें का नृत्य दृष्टिपात कर रहा है। दृष्टिपात करके अपने जीवन को व्यर्थ समाप्त कर रहा है। यज्ञ जैसे कार्यों को कहता है कि यह सब पाखण्ड हो रहा है। जिस यज्ञ जैसी मानवीय धारा से वायु मण्डल पवित्र बनता है, वज्ञिन की तरंगें उत्पन्न होती हैं ऐसे क्रिया कलापों को वह पाखण्ड कह रहा है क्योंकि उसे ज्ञान नहीं है उसमें ओज नहीं है।
जब आचार्य नहीं हैं तो ब्रह्मचारी कहाँ से बनेंगे। महर्षि यज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बारह वर्ष तक शिल का अन्न पान करके ब्रह्मचारियों को शिक्षा दी। वे ब्रह्मचारी ऊँचे बनेंगे या आज का ब्रह्मचारी ऊँचा बनेगा। महर्षि उद्दालक, महर्षि यज्ञवल्क्य मुनि महाराज एक समय अपने विद्यालय में ब्रह्मचारी कदम्बी को यह निर्णय कराने लगे कि इस आकाश गंगा में दृष्टिपात करो। आधुनिक काल का वैज्ञानिक लगभग 72 अश्वहीन लोकों की गणना कर पाया है परन्तु महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारी कदम्बी को वाक्य प्रकट करा रहे है और वह आकाश गंगा के सूर्यों की गणना करने लगा। जब एक ही आकाश गंगा में तीन खरब पचास अरब पचास करोड़ पचपन लाख बावन हजार सूर्यों की गणना कर ली तो वह मौन हो गए। आज का वैज्ञानिक लोकों की गणना में लगा हुआ है, सूर्यों की गणना क्या है इसकी गणना नहीं की। अरे, वे वैज्ञानिक कौन थे? वे शिला का अन्न ग्रहण करने वाले थे, वे सात्विक अन्न को पान करने वाले थे।
महर्षि भारद्वाज ने अपनी विज्ञानशाला में एक यन्त्र का निर्माण किया था, जो पृथ्वी की परिक्रमा करने वाली रेखा है। उस रेखा में जो प्राणवर्धक परमाणु थे वह उस यन्त्र में

आ गए और वह रेखा नग्न रह गई और नग्न रहने के पश्चात् राष्ट्र के राष्ट्र अग्नि के मुखारबिन्द में परणित हो गए। आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव को यह उच्चारण करने आया हूँ कि आधुनिक काल का विज्ञान तो प्रारम्भ हो रहा है। परन्तु पुरातन काल का विज्ञान कितनी महत्ता में परणित रहा है। महर्षि नारद मुनि की विज्ञानशाला में कुरुमेह यान का निर्माण किया गया था, जो ध्रुव की परिक्रमा कर रहा है। उस यान की साठ लाख पैंसठ हजार पांच सौ वर्ष की अवधि मानी है। आधुनिक काल का वैज्ञानिक यदि इस प्रकार गति करता रहा तो लगभग दो सौ वर्षों में उस गति कोप्राप्त कर सकता है।
नारद मुनि महाराज के द्वारा एक चरण खड़ाऊ थी, वह पादुका कहलाती थी। चरण पादुका एक यन्त्र कहलाता था। चरण पादुका में ओत प्रोत हो करके वह यहाँ से चन्द्रमा में जा रहे हैं। चन्द्रमा से उड़ान उड़ी तो मंगल में गति कर रहे हैं। मंगल से उड़ान उड़ी तो बुद्ध में जा रहे हैं, बुद्ध से उड़ान उड़ी तो शनि मण्डल में जा रहे हैं। शनि मण्डल इतना विशाल मण्डल माना जाता है कि जैसा हमारा पृथ्वी मण्डल है एक शनि में ऐसे ऐसे पांच सूर्य प्रकाश देते हैं। एक समय देव ऋषि नारद मुनि अपने यान के द्वारा जेठाय नक्षत्र में पहुंच गए। जेठाय नक्षत्र कितना विशाल है? जैसा हमारा यह पृथ्वी मण्डल है ऐसे तीस लाख पृथ्वियां सूर्य मण्डल में समाहित हो जाती हैं और जैसा सूर्य मण्डल है ऐसे एक सहस्र सूर्य बृहस्पति में समाहित हो जाते हैं और एक सहस्र बृहस्पति आरुणि मण्डल में समाहित हो जाते है और एक सहस्र आरुणि ध्रुव मण्डल में समाहित हो जाते हैं और एक सहस्र ध्रुव मण्डल जेठाय नक्षत्र में समाहित हो जाते हैं। इतना विशाल प्रभु का जगत् है। आधुनिक काल का वैज्ञानिक तो यह कहता है कि तेरह लाख पृथ्वी हैं जो सूर्य में समाहित होती हैं। अभी पृथ्वियों का अनुमान प्राप्त नहीं कर सका है कि कितनी पृथ्वियां हैं, जो सूर्य की परिक्रमा कर रही हैं। जब मानव ज्ञान युक्त विचारता है तो प्रतीत होता है कि कितना प्रभु का मण्डल है, कितना अमूल्य विज्ञानमय जगत् है।
आज मैं बहुत भयंकर वन में चला गया हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव इसकी पूर्व व्याख्या कर चुके हैं। यह इतना विशाल वन है। आज तो मैं केवल तुलनात्मक चर्चाएं कर रहा हूँ।

मानव में विज्ञान होना चाहिए परन्तु विज्ञान के साथ में चरित्र होना चाहिए। राजा को अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो जितने भी चित्रवली यन्त्र हैं इनमें ऋषि मुनियों के चरित्र आने चाहिए। जब इनसे ऋषि मुनियों के चरित्र और मेरी प्यारी माताओं के चरित्र आयेंगे, माता मलदाल्सा और गार्गी इत्यादि के चरित्र आयेंगे तो यह समाज पुनः से चरित्र की आभा में आ सकेगा।

मैं यह उच्चारण करते जा रहा हूँ कि आधुनिक काल का मानव चित्रवली यन्त्र को लेकर कहता है कि कितना विकास किया है। परन्तु भारद्वाज की विज्ञानशाला में एक य़ा था जो पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया। आधुनिक काल का वैज्ञानिक एक यन्त्र निर्मित कर सका, जिससे जैसे एक स्थली पर मानव विद्यमान है और उसके प्रस्थान करने के पश्चात् उस मानव का चित्र लेता है। परन्तु पुरातन काल में ढाई घड़ी के पश्चात् भी उस मानव का चित्र ले लिया जाता था। भारद्वाज की विज्ञानशाला में कहीं एक रक्त का बिन्दु प्राप्त हो जाए चाहे वह प्राणी संसार में है अथवा नहीं है अथवा सहस्रों वर्ष पूर्व उसका निधन क्यों न हो गया हो। परन्तु उस एक रक्त के बिन्दु से उस यन्त्र में मानव का साक्षात् चित्र आ जाता था। इसके पश्चात् एक यन्त्र जिसमें जैसे मानव का उच्चारण कर रहा है और उस शब्द के साथ में चित्र है। आज के विज्ञान में उसके विशेष स्थान हैं परन्तु उसकाल में कहीं भी मानव शब्द उच्चारण कर रहा है और उसी शब्द को वहाँ यन्त्रें में आ जाते थे और उस मानव के चित्र आ जाते थे। वह शब्द उस यन्त्र में अन्तरिक्ष लोकों को जाते प्रतीत होते थे।

भारद्वाज के यहाँ एक यन्त्र शाला ऐसी थी जो यन्त्र वायु मण्डल में गति कर रहा है और नीचे यन्त्र में उसके चित्र आ रहे हैं। जैसे यह शब्द रजोगुणी, तपोगुणी और सतोगुणी हैं। ये वायु मण्डल में ओत प्रोत हो जाते हैं और जब ओत प्रोत हो जाते हैं तो उन शब्दों की उस यन्त्र में छाया आ रही है। वही यन्त्र स्वतः ही वायु तत्त्वों का विभाजन कर रहा है। प्राणी मात्र के शब्दों का आकार बन करके भारद्वाज की विज्ञानशाला में उस यन्त्र में आ रहा है। परन्तु आधुनिक काल के वैज्ञानिकों का इसका स्वप्न भी नहीं है कि वायु मण्डल में शब्दों का विभाजन हो रहा है। कुछ शब्द द्यु लोक को जा रहे

हैं कुछ अन्तरिक्ष में जा रहे हैं। इन्हीं के कारण वृष्टि अनावृष्टि के तत्त्व अन्तरिक्ष में उत्पन्न हो जाते हैं। यह विज्ञान की कर्त्ता है। आज मैं तुम्हें वैज्ञानिक क्षेत्र में विशेष वार्त्ता प्रकट करना नहीं चाहता हूँ।

विज्ञान केवल मैं यह देने जा रहा हूँ कि पूर्व काल का विज्ञान करोड़ों वर्षों आगे चला गया। अब जो विज्ञान है इसका प्रारम्भ हुआ है। वह विज्ञान पराकाष्ठा को चला गया था। उस विज्ञान में और इस विज्ञान में इतना अन्तर्द्वन्द्व कि उसमें चरित्र था इसमें चरित्र की आभा समाप्त होने जा रही है। कोई महापुरुष आएगा, वैज्ञानिक आएगा वह भी चरित्र के ऊपर ही विचार विनिमय करेगा। ऐसा वाक्य नहीं कि नहीं करेगा परन्तु अवश्य होगा।

कल मैंने राष्ट्रवाद की सूक्ष्म सी चर्चाएं की थीं। राष्ट्र में मानवता और विज्ञान के ऊपर चिन्तन होना चाहिए। मननशील प्राणी ही राष्ट्र, समाज और विज्ञान को ऊँचा बनाता है। अब मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं करूंगा। मैं अपने वाक्यों को यहीं विराम देने जा रहा हूँ क्योंकि मेरे गुरु देव से मुझे इतनी ही समय की सीमा उच्चारण करने को मिली थी।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ वैज्ञानिक तथ्यों का वर्णन किया। आधुनिक काल और पुरातन काल के विज्ञान को उन्होंने प्रकट किया। परन्तु पुरातन काल का विज्ञान महाभारत काल के संग्राम में समाप्त हो गया। विधाता और विज्ञान अग्नि के मुखारविन्द में समाप्त हो गए। आधुनिक काल में अथवा पिछड़े कुछ वर्षों में क्या हुआ इसका मुझे निश्चित नहीं और नहीं जानना चाहता हूँ।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने विज्ञान की चर्चाएं की, नाना प्रकार की रूढ़ियों की चर्चाएं कीं। रूढ़ियों से मुझे यह अनुमान होता है कि उन रूढ़ियों से मानव समाज का पतन हुआ है। महाभारत काल ऐसा भयंकर था जिसमें बुद्धिमान वैज्ञानिक सब अग्नि के मुख में चले गए। उसके पश्चात् स्वार्थी राजा, स्वार्थी समाज, स्वार्थी धर्म और रूढ़िवाद पनपते चले गए। उससे आज मेरे महानन्द जी व्याकुल हैं। क्योंकि समाज ने धर्म को एक खिलवाड़ स्वीकार कर लिया है। श्रद्धा, पूजा करने का जो कार्य है उसे खिलवाड़

स्व्ीकार कर लिया है। यहाँ नाना पुरुष आए अपना अपना उपदेश दे करके चले गए। अब मुझे इतना तो समय नहीं कि मैं इस सम्बन्ध में कुछ उच्चारण करूं, समय समाप्त हो जा रहा है।
विचार विनिमय क्या कि हमारे नाना वैज्ञानिक यन्त्र लोकों की परिक्रमा कर रहे हैं। कुछ यन्त्र ऐसे हैं जो ध्रुव की परिक्रमा कर रहे हैं, कुछ यन्त्र ऐसे हैं जो सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। कुछ यन्त्र ऐसे हैं जो चन्द्रमा के कक्ष के ऊपरले भाग में परिक्रमा कर रहे हैं परन्तु विज्ञान तो इतना व्यापक शब्द है। विज्ञान और धर्म दोनों का समन्वय करने वाले पूर्व वैज्ञानिक धार्मिक और महापुरुष हुए हैं। जब पुत्रें, मुझे भारद्वाज का जीवन स्मरण आता है तो वे विज्ञान में कितनो पारंगत रहते थे और ब्रह्म में, वे ब्रह्मवेत्ता भी थे और विज्ञान में भी उनकी ऊर्ध्व गति थी। इस प्रकार मेरे पुत्रों! आज कुछ ऋषि मुनियों का आधुनिक काल के विज्ञान का तुलनात्मक वर्णन किया गया।
आज का वाक् अब समाप्त। शेष चर्चाएं कल प्रकट की जाएगी। अब वेदों का पाठ और इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त। ग्राम ताजपुर, जिला बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश),